ISSN : 2455-4219

विचार → चिंतन → शोध सृजन

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष : 08 अंक : 32 अप्रैल - जून, 2023

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

आलोचन दृष्टि वर्ष-8 अंक-32 अप्रैल - जून, 2023 ISSN : 2455-4219

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 08	अंक - 32	अप्रैल-जून, 2023
Year - 08	**Volume - 32**	**April-June, 2023**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**

संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–

सृजनश्री न्यास,

आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,

उ0प्र0–212635

ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	300	1200	10,000
संस्थागत	400	1500	15,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. चितरंजन मिश्र,** पूर्व प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय (उ0प्र0)।
- **प्रो. नंदकिशोर आचार्य,** सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर, राजस्थान–252028।
- **प्रो. सदानंद गुप्त,** निदेशक, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, (उ0प्र0)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. प्रेमशंकर त्रिपाठी,** आशीर्वाद अपार्टमेन्ट, सी. ए. 5/10, देशबन्धु नगर, कलकत्ता।
- **प्रो. दिलीप सिंह,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (म.प्र.)।
- **प्रो. आर0 एस0 सर्राजू,** हैदराबाद विश्वविद्यालय, (तेलंगाना)।
- **प्रो. उमापति दीक्षित,** केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ0प्र0)।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** हरिश्चन्द्र पी. जी. कॉलेज, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ. प्र.)।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनातूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. वाराणसी।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदारी नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

साहित्य, शिक्षा और संस्कृति– भारतीय चिंतनधारा के समांतर चलने वाली वैचारिक–प्रक्रियाओं का नाम है, जो परस्पर आपसी जुड़ाव रखते हुए जन–मानस में या मनुष्य–मनुष्य में आपसी–सामंजस्य बनाये रखने की पहल करती है और निःस्वार्थ यह सन्देश देती हैं कि बिना आपसी सद्भाव, प्रेम, लगाव, भाईचारा के– सार्वभौमिक उन्नति नहीं की जा सकती। साथ ही भारतीय साहित्य और शिक्षा हमेशा 'स्व' के विसर्जन पर ही जोर देती है। इसमें त्याग है, तपस्या है, जप है, तप है, ध्यान है, योग है तथा समग्र मानवीय–भावबोध की जागृति भी है और इस जागृति के लिए समानांतर पहल–दर–पहल की भरसक कोशिश करने वाली– पारंपरिक वृत्ति भी है। इसी वृत्ति को ध्यान में रखते हुए कहा भी गया है कि–

साहित्य–संगीत–कला–विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छ–विषाण–हीनः।
तृणम् न खादन् अपि जीवमानः, तद् पशूनाम् परमम् भाग–धेयं।।

साहित्य की व्याख्या करते हुए आचार्य भामह ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में जो सूत्र दिया है कि 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।' तात्पर्य है– 'शब्द अर्थ से युक्त रचना ही काव्य होती है।' यहाँ काव्य साहित्य का द्योतक है जिसमें 'सहित' शब्द की व्यंजना ध्वनित होती है, जिसके मूलतः तीन अर्थ निकलते हैं। पहला– हित के साथ, दूसरा– सामूहिकता/सामजस्य को सूचित करता है और तीसरा– यह ध्वनित करता है कि– शब्द–अर्थ का सहित भाव– अर्थात् शब्द–अर्थ से युक्त कोई भी रचना जो समग्र संसार के हित की कामना करती है, साहित्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि 'परहित सरिस धरम नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई।' परोपकार से बड़ा कोई पुण्य नहीं है, जो व्यक्ति स्वयं की चिंता न कर परोपकार के लिए कार्य करता है, वही सच्चे अर्थों में मनुष्य होने का अधिकारी है। परोपकार का अर्थ है– दूसरे की भलाई करना। उन्होंने एक जगह यह भी लिखा है कि– 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।' अर्थात् कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गंगा जी की तरह सबका हित करने वाली हो। वेद व्यास ने जब अठारह पुराणों की सृष्टि की, तो किसी ने पूँछा कि आखिर इसका 'सार' क्या है, तब उसका उत्तर मिला–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

हमारे साहित्य की यह विशेषता है कि वह 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' की बात करता है तथा 'सत्, चित्, आनंद' की भी; और इसी आनंद की सृष्टि है– मनुष्यता। इसी आधार पर ही, साहित्य की सृष्टि करने वाले रचनाकार को, ब्रह्मा का समान–धर्मा माना जाता है, और साहित्य को 'ब्रह्मस्वाद सहोदर'–

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।

अर्थात् इस अपार काव्य संसार में कवि भी विश्व के सृष्टा ब्रह्म के समान आचरण करता है। जिस प्रकार ब्रह्म इस विश्व में अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करता रहता है, वैसे ही कवि भी अपनी मर्जी का मालिक होता है। अग्निपुराणकार ने इसी बात को लौकिक–जगत् की महत्ता से जोड़ते हुए लिखा हैं कि– इस पृथ्वी पर मनुष्य योनि दुर्लभ है, मनुष्य में भी विद्यावान होना अत्यधिक दुर्लभ है, विद्या के साथ–साथ काव्य–शक्ति का होना बहुत ही दुर्लभ है और उससे भी अधिक दुर्लभ है– इन सभी कार्यों को करने की शक्ति, जो नितांत दुर्लभ और दुष्कर हैं। अगर ये सभी एक साथ मिले तो वह ईश्वर की कृपा ही है–

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्ति स्तत्र सुदुर्लभा।।

अरस्तू ने इन्हीं संदर्भों के आधार पर लिखा होगा कि Poetry is an imitation of nature through medium of language. (अरस्तू की इस परिभाषा में अनुकरण से तात्पर्य मात्र नकल करना नहीं; बल्कि पुनर्सृजन है। इस दृष्टि से अरस्तू के अनुसार "साहित्य जीवन और जगत का कलात्मक और भावनात्मक पुनः–पुनः सृजन है, और प्रकृति में जो अपूर्णता रह जाती है, रचनाकार उसे पूरा करता है) और सैम्सैयुअयुल टेलर कॉलरिज ने भी लिखा कि– Poetry is the best word in best order. (सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम विधान ही कविता है।)– ये सभी सूत्र एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इन्हें अलग–अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए।

अंत में, मैं पं. विद्यानिवास मिश्र के एक कथन का जिक्र करना चाहता हूँ। उन्होंने लिखा है कि– ''साहित्य का सम्बोध्य कुछ तो दृश्य है, कुछ सामने है। कुछ अदृश्य है, सामने नहीं है। उस अदृश्य का ध्यान बनाए रखना रचनाकार का बहुत बड़ा कर्तव्य होता है, क्योंकि साहित्य की सबसे सटीक परिभाषा यही है कि जितनी बार वह दोहराया जाए, जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार जिया जाए, सही अर्थ में जिया जाए, उतनी बार पाठक या श्रोता द्वारा नया रचा जाए। प्रत्येक साहित्य अलग–अलग जमाने में अलग–अलग ढंग से रचा जाता है। यह बार–बार रचा जाना– उसकी सबसे सटीक पहचान है।'' निश्चित रूप से साहित्य की उपरोक्त परिभाषा, सही अर्थों में साहित्य के समझने का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है– जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी के ज्ञान अनुभूत करने–कराने की परंपरा को द्योतित करता है।

उपरोक्त अंक में कुल 19 शोध–लेख और 2 पुस्तक समीक्षाएं प्रकाशित हो रही है, जिसमें हिंदी–भाषा के 12 शोध–पत्र एवं 2 पुस्तक–समीक्षा, अंग्रेजी–भाषा के 5 शोध–पत्र और संस्कृत–भाषा के 2 शोध–पत्र शामिल किये गये हैं। इस तरह से यह अंक कुल 21 शीर्षकों में विभक्त हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं।

'सनातन 'धर्म' की केंद्रीय–विडम्बना' कमलाकांत त्रिपाठी सर का एक बेतरहीन आलेख है, जो आठ भागों में विभक्त है, इस अंक में उसके 4 भाग ही प्रकाशित हो रहे हैं, शेष 4 भाग अगले अंक में प्रकाशित होंगे। प्रो. कमलानंद झा सर का आलेख 'आलोचक का आत्मावलोकन और सादगीपूर्ण आलोचना' मूलतः गोपेश्वर सिंह की आलोचनात्मक पुस्तक 'आलोचक का आत्मावलोकन' पर केन्द्रित है, जो आलोचक एवं आलोचना की स्थिति एवं अवस्थिति को भली–भाँति रेंखांकित करता है। गोपेश्वर सिंह लिखते है– 'इधर के वर्षों में साहित्य में आत्मावलोकन की प्रवृत्ति घटी है। जब से अस्मितावादी राजनीति का वर्चस्व बढ़ा है, रचना–आलोचना में आत्मावलोकन का भाव ज़रूरी नहीं रह गया है। बाइनरी में रचना–आलोचना को देखने का चलन ज़ोरों पर है। अपने विरोधी पर प्रहार और उसकी आलोचना का भाव जितना उग्र है, उतनी ही मन्द है आत्मावलोकन की प्रक्रिया। कुल मिलाकर साहित्यालोचन राजनीतिक दलों के आरोप–प्रत्यारोप का सहोदर होता गया है।'– इस कथ्य के आधार पर समकालीन आलोचना एवं आलोचक के 'सत्य' को रेखांकित किया जा सकता है, और यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि समकालीन आलोचना की ऊर्ध्वमयी–धारा कहाँ–कहाँ होकर, किस–किस रूप–अपरूप में आगे बढ़ रही है।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका अपना यह कलेवर गृहण कर रही है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, मैं कृतज्ञ हूँ।

शेष....

30 जून, 2023।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय **iii-iv**
- विषयानुक्रमणिका **v-vi**

1. सनातन 'धर्म' की केंद्रीय-विडम्बना (भाग-1 से 4 तक) 1-21
   कमलाकांत त्रिपाठी
2. आलोचक का आत्मावलोकन और सादगीपूर्ण आलोचना 22-25
   प्रो. कमलानंद झा
3. लंबी कविताओं की पृष्ठभूमि में छायावादी-वैशिष्ट्य की पड़ताल 26-30
   डॉ. क्रांति बोध
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाओं का विकास 31-35
   डॉ. गौरी शर्मा
5. विवेकानंद की नारी-विषयक अवधारणा 36-38
   आकांक्षा अग्निहोत्री
6. बाल साहित्य की अवधारणा एवं उसका बदलता स्वरूप 39-42
   डॉ. नीतू वर्मा
7. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों के मार्गदर्शन की आवश्यकता... 43-48
   प्रियंका सिंह, डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह एवं शमीम अहमद
8. कोरोना वायरस : एक वैश्विक महामारी 49-51
   मनीषा चौहान
9. स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता 52-58
   डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय
10. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं में नैराश्य की प्रतिक्रिया का अध्ययन 59-63
    कृष्णानन्द राय
11. 'यहां राम हैं' एवं 'सिर्फ तुम' की भावमयता 64-65
    डॉ. सुनील कुमार मानस
12. किन्नर-विमर्श के परिपार्श्व में समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचय 66-69
    डॉ. बाबूलाल बैरवा
13. वर्तमान संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता 70-72
    नमन कृष्ण

14.	**महाकवि बाणभट्ट के काव्यों में सामाजिक और आर्थिक-चिंतन** *अमित कुमार महलावत*	73-75
15.	**अध्यात्मरामायणदृष्ट्या रामस्य स्वरूपविचारः** *डॉ. नीरजकुमारभार्गवः*	76-78
16.	**वेदेमन्त्रचिकित्सायाः मीमांसा** *राम नारायण शर्मा*	79-80
17.	**Need for Inclusive Education for Empowerment of Children with...** *Dr. Sudheer Kumar Tiwari*	81-83
18.	**Theme : Integration of ICT in Teacher Education (Sub theme : Role...)** *Dr. Ravinder rathi*	84-89
19.	**Relevance of Motivational literature in Everyday Life** *Itishree Barik & Rudranarayan Mohapatra*	90-94
20.	**Uncovering the Cyber-security Puzzle: Investigating the Obstacles...** *Sohom Banerjee & Dr. Sumanta Dutta*	95-106
21.	**A Survey of Tazkiratush-Shuara;A Solitary codex of "Mukhlis"** *Prof. Saulat Ali Khan*	107-110

सनातन 'धर्म' की केंद्रीय-विडम्बना

अतिशय वैचारिक उदारता और सामाजिक संकीर्णता : समाधान की तलाश

भाग-1

कमलाकांत त्रिपाठी*

मेरी अल्प समझ से हिंदू (सनातन) धर्म की दो मूल मान्यताएँ हैं। संकल्प–सत्ता और अधिकारी–भेद। संकल्प सत्ता और कुछ नहीं, दृढ़ विश्वास है। दृढ़–विश्वास चेतना की एक अवस्था है, भाव–जगत् का एक घटक। किंतु, ऐसी मान्यता है कि दृढ़ विश्वास का फल भौतिक जगत् को भी प्रभावित करता है। मनुष्य को अमूर्त सत्ता के जिस किसी भी रूप में दृढ़ विश्वास है, उसके अस्तित्व/अनस्तित्व से निरपेक्ष, विश्वास का फल मिलता है। उसका भौतिक मंतव्य भी पूरा होता है (संभवतः आत्म–उत्प्रेरण - Auto-suggestion– उसके पूर्ण होने में सहायक बनता हो)।

यह सर्वमान्य है कि वैदिक काल में मंदिर और मूर्ति–पूजा का कोई विधान नहीं था। प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक देवों की स्तुतियाँ थीं और उन्हीं के प्रसाद के लिए यज्ञादि क्रियायेँ प्रचलित थीं। प्रकृति और उसकी शक्तियाँ प्रत्यक्ष हैं। इन शक्तियों में देवत्व का आरोपण मनुष्य की संकल्प–सत्ता की देन है। प्रकृति की शक्तियाँ भिन्न–भिन्न रूप में व्यक्त होती हैं किंतु प्रकृति की मूल सत्ता एकल है– इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। (ऋग्वेद, 1.164.46) (ऋषिगण जिसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, दिव्य परोंवाले गरुड, यम, मातिरिश्वान इत्यादि नामों से अभिहित करते हैं वह (प्रकृति) वस्तुतः एक ही है।)

संकल्प सत्ता ही सगुण भक्ति और मूर्ति–पूजा का आधार है। मूर्ति उस अमूर्त सत्ता की प्रतीक है जो मनुष्य की चेतना में संकल्पित है, उसके भावलोक में उपस्थित है, जिस पर उसे दृढ़ विश्वास है। प्रतीक के रूप में मूर्ति या विग्रह या लिंग (शब्दार्थ–चिह्न) एक सहारे का काम करता है। आराधक की चेतना में जिस सत्ता की जिस रूप में संकल्पना है, उसको उसी रूप में साकार करने में सहायक होता है। मूर्ति की आराधना उस सत्ता की आराधना है जो आराधक की चेतना में सन्निहित है और वही सत्ता उसे मनोवांछित फल देती है। कोई किसी भी अमूर्त सत्ता को अपना इष्ट देव मान सकता है। इसका दार्शनिक आधार यह है कि हर मनुष्य की चेतना वरण करने के लिए स्वतंत्र है। संकल्प या विश्वास की अहम् भूमिका होने से हिंदू धर्म की आराधना–पद्धति में (सैद्धांतिक रूप से) बहुत लचीलापन, अपूर्व उदारता और अतिशय सहिष्णुता है। इसमें अनगिनत पंथ या संप्रदाय हैं। अतिशय बहुलतावाद है। जो जिस रूप में पूजे, उसे उसी रूप से मनोवांछित फल मिलेगा– "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।" गीता, 4:11 (जो जिस रूप में मुझे अपनाते हैं, मैं उनको उसी के रूप में ग्रहण करता हूँ। हे अर्जुन, सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।) इसीलिए सनातन धर्म में पंथ–परिवर्तन से विस्तार की कोई अवधारणा नहीं। सभी पूजा–पद्धतियाँ मनुष्य की संकल्प सत्ता के प्रतिफलन से उसी ईश्वर की ओर ले जाती हैं तो पंथ–परिवर्तन किस लिये?

सनातन धर्म कोई सांगठनिक धर्म नहीं है। जो सनातन (हिंदू) परिवार में पैदा हुआ, वह सनातनी रहेगा, कोई संस्था उसे बहिष्कृत नहीं कर सकती। जब तक कि वह स्वयं सनातन धारा का परित्याग न कर दे। धर्म–परिवर्तन से सनातन में किसी बाह्य व्यक्ति को प्रविष्ट कराने की प्रविधि भी नहीं है। चार या चार से अधिक शंकराचार्य अपनी–अपनी गद्दी पर विराजमान हैं, वे प्रायः निहायत दकियानूसी, वर्णाश्रमी किंतु कभी–कभी संयोग से समायानुकूल और विवेकसम्मत वक्तव्य भी देते रहते हैं। हिंदुओं के लिए वे महज़ वक्तव्य हैं। हर हिंदू अपने विवेक से चुने गये पथ पर निर्बाध चलने के लिये स्वतंत्र है।

***प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डाल्गा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।**

गीता के उपरोक्त श्लोक का उत्तरार्द्ध अधिकारी–भेद की ओर भी इंगित करता है जो सनातन का दूसरा मूल तत्व है। यह निर्विवाद सत्य है कि सभी मनुष्य एक–सी प्रवृत्ति और एक–सी क्षमता के नहीं होते। इसलिए सबका मार्ग अलग–अलग होना स्वाभाविक है। कोई ज्ञान–मार्ग का अधिकारी है तो कोई कर्ममार्ग का तो कोई भक्तिमार्ग का। जीवन के लक्ष्य– धन–ऐश्वर्य, यश–कीर्ति, स्वर्ग–नर्क, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि सभी अधिकारी–भेद के अनुरूप हैं। निर्गुण–सगुण या निराकार–साकार भी अधिकारी–भेद के विषय हैं।

हनुमन्नाटकम् किसी कुशल नाटककार द्वारा हनुमान जी के नाम से लिखा गया, रामचरित पर आधारित उत्कृष्ट नाटक है (भारतीय परंपरा में साहित्यकार नाम के लिए नहीं लिखता, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी)। हनुमन्नाटकम् सनातन की संकल्प–सत्ता और अधिकारी–भेद का बहुत समावेशी पाठ रचता है– यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः। अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।3।। (जिसकी उपासना शैव शिव के रूप में करते हैं, वेदांती ब्रह्म के रूप में करते हैं, बौद्ध बुद्ध के रूप में करते हैं, (तर्क और) प्रमाण में पटु नैयायिक कर्ता के रूप में करते हैं, जैन अनुशासन को मानने वाले नित्यविद्यमान 'स्वभाव' के रूप में करते हैं, मीमांसक (वेदविहित) कर्म के रूप में करते हैं, वही तीनों लोकों के स्वामी दुःखहर्ता हरि हमारे वाञ्छित फल को मूर्त करें)

अनीश्वरवादी जैन और ईश्वर–निरपेक्ष बौद्ध भी सनातन धारा में समाहित हैं, सावरकर द्वारा हिंदुत्व की समावेशी अवधारणा देने के बहुत पहले से।

सनातन धर्म (सांगठनिक तौर पर संघ और विहार केंद्रित) बौद्ध धर्म की तरह निवृत्तिमार्गी नहीं हैं। जीवन के चार पुरुषार्थ (लक्ष्य) हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जीवन की पूर्णता के लिये चारों का महत्व है। इनमें धर्म प्रथम है, फिर अर्थोपार्जन है, फिर दैहिक–सांसारिक कामनाओं की पूर्ति; अंत में मोक्ष।

ध्यान देने की बात यह है कि सनातन धर्म का तात्पर्य किसी पूजापद्धति से नहीं है। संस्कृत में धर्म शब्द धृ धातु में मन् प्रत्यय लगाकर बनता ह– ध्रियते लोकोनेन, धरति लोकं वा इति धर्मः। जो लोकों को, ब्रह्माण्ड को धारण करता है, संसक्त रखता है वही धर्म है। ऋग्वेद में धर्म के पूर्ववर्ती और समानार्थक शब्द ऋत का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद के ऋत सूक्त में सृष्टि के संदर्भ में ऋत और सत्य शब्द साथ–साथ प्रयुक्त हुए हैं– ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत (ऋग्वेद 10.190.1)। इस सूक्त के अनुसार तप (उर्जा या ऊष्मा) से सम्पन्न हुई सृष्टि में सबसे पहले ऋत और सत्य प्रकट हुए। ऋत का अर्थ है उचित, स्थिर और निश्चित नियम। यूनानी परम्परा का Natural Law. ऋत का स्थानापन्न होने से धर्म का भी वही सार्वभौम और सार्वकालिक अर्थ अभिप्रेत है।

मनुष्य के संदर्भ में यही धर्म उसका आद्य गुण– मनुष्यता, सार्वभौम नैतिकता– बन जाता है। लोकों का धारण तभी हो सकता है, उनकी संशक्ति तभी क़ायम रह सकती है, जब लोक के सभी घटक अपने–अपने गुणों मे रहें। मनुष्य में मनुष्यता रहे, सार्वभौम नैतिकता रहे। धर्म के दस लक्षण हैं– धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यणमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृमति, 6.92) (धैर्य, क्षमा, आत्मनियंत्रण, अस्तेय (किसी चीज़ की चोरी न करना), शौच (भीतर–बाहर से पवित्र रहना), इन्द्रिय–निग्रह (इन्द्रियों को भटकने से रोकना), बुद्धिमत्ता (विवेकशीलता), विद्या (ज्ञानार्जन करना), सत्य, और क्रोध पर क़ाबू रखना, धर्म के यही दस लक्षण है।)

धर्म के ये दसों लक्षण सार्वभौम नैतिकता के हैं, पूजा–अर्चना के नहीं। धर्म माने वह जो मनुष्य को पशुओं से पृथक करता है, उसे 'मनुष्य' बनाता है– आहारनिद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। / धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।। (महाभारत, शांति पर्व, 264.26) (आहार, निद्रा, भय और संभोग पशुओं और मनुष्यों में सामान्य है। धर्म ही मनुष्य में एकमात्र अतिरिक्त विशेषता है। धर्म से वंचित मनुष्य पशु के समान है।)

यहां धर्म माने नैतिक–बोध, विवेक, परिस्थिति विशेष में ग़लत–सही का निर्णय करने की और तद्नुरूप व्यवहार करने की क्षमता। नैतिकता का सम्बंध मनुष्य के उस आचरण से है जो वह अन्य के संदर्भ में करता है। इसका स्वर्णिम नियम है– श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्। आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।। (पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, 19.357) (धर्म का सर्वस्व सुनो और सुनकर उसे अमल में लाओ। जो अपने को प्रतिकूल लगता है, वैसा दूसरों के साथ न करो।)

इस तरह पुरुषार्थों में धर्म, अर्थ और काम का तात्पर्य हुआ धर्मानुरूप (नैतिकता की सीमा में) अर्थ (जीविकोपर्जन) और धर्मानुरूप काम (दैहिक सांसारिक एषणाओं की पूर्ति)। वस्तुतः धर्म कोई स्वतंत्र पुरुषार्थ है ही नहीं, यह तो अर्थ और काम का नियामक है, इसलिए प्रथम है। इसका फलित है अनैतिकता का, अति का पूर्ण निषेध।

संयोग से यही बौद्ध धर्म का मध्यम मार्ग भी है। सनातन में धर्म की यह नैतिकता–मूलक अवधारणा महात्मा बुद्ध के चार आर्य सत्य और उनके संदर्भ में प्रतिपादित अष्टांग मार्ग– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि के समांतर है। यही निर्वाण/मोक्ष के अंतिम लक्ष्य की ओर ले जाता है। तत्वतः सनातन धर्म और बौद्ध धर्म में कोई अंतर्विरोध नहीं।

वेदों के कर्मकाण्ड की व्याख्या ब्राह्मण ग्रंथों में मिलती है और ज्ञानकाण्ड की आरण्यकों और उपनिषदों में। वेदों की संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद् सब परस्पर घुलेमिले हैं। कई उपनिषद्, आरण्यक और ब्राह्मण ग्रंथ संहिताओं के अंश हैं।

ज्ञानमार्ग :– वैदिक षड्दर्शन में केवल जैमिनि का (पूर्व) मीमांसा कर्मकाण्ड पर आधारित है (दिलचस्प है कि मीमांसा दर्शन में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं), शेष पांच ज्ञानकाण्ड पर। इनमें से कपिल का सांख्य, पतंजलि का योग, गौतम का न्याय और कणाद का वैशेषिक वैदिक ज्ञानकाण्ड के साथ–साथ लौकिक विचारों को भी समाहित करता है, जब कि बादरायण का वेदांत शुद्ध रूप से वैदिक ज्ञानकाण्ड पर आधारित है। वेदांत वैदिक षड्दर्शन का निकष भी है, उसका शिखर भी। उसकी अप्रतिम व्याख्या शंकर (788–820 ई, शंकराचार्य पीठों के दस्तावेज़ के अनुसार 509–477 ई,पू– अतिशय विवादित है) के अद्वैत वेदांत में मिलती है। उसमें परम सत्य (Ultimate Reality जिसे ब्रह्म की संज्ञा दी गई है) को मनुष्य की उन्नत चेतना से स्वतंत्र नहीं माना गया है। वह मनुष्य की चेतना में ही नहीं, समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है, मनुष्य की उन्नत चेतना उसकी अनुभूति करने पर उससे एकाकार हो जाती है, ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान का एकत्व स्थापित हो जाता है। वही जीवनमुक्ति की अवस्था है जिसका स्वरूप सच्चिदानंद का है। ब्रह्म को मानव–चेतना से स्वतंत्र सत्ता न मानने के कारण ही शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहा गया।

जहाँ तक सनातन के नाम पर प्रचलित (तथाकथित) धार्मिक कृत्यों का संदर्भ है, ज्ञानमार्ग में उनकी कोई प्रासंगिकता, कोई अर्थ ही नहीं। इस सम्बंध में अवधूत दत्तात्रेय (चौबीस अवतारों में शुमार) द्वारा रचित अवधूत गीता का एक श्लोक बहुत प्रासंगिक है– त्वद्यात्रया व्यापकता हता ते ध्यानेन चेतःपरता हता ते। स्तुत्या मया वाक्परता हता ते क्षमस्व नित्यं त्रिविधापराधान्।। (अवधूत गीता, 8.1) (तुम्हारी तीर्थयात्रा करके मैंने तुम्हारी व्यापकता खंडित कर दी, तुम्हारा ध्यान लगाकर चित्त (चेतना का सामान्य स्तर) से तुम्हारे परे होने को खंडित कर दिया। तुम्हारी स्तुति करके वाणी से तुम्हारे परे होने को खंडित कर दिया। इन तीनों अपराधों के लिये मुझे नित्य क्षमा करो।)

सनातन के दार्शनिक आधार यही वेदाधारित षड्दर्शन हैं जिनमें वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा का कोई संदर्भ नहीं। वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा मुख्यतः स्मृतियों, धर्मसूत्रों और पुराणों की करतूत है। एक विचलन जिसे निहित स्वार्थों ने पाल–पोस कर बड़ा किया। कैसी विडंबना है कि आधुनिकता, विवेकवाद और संविधानवाद की रोशनी में जब इनके अवसान का समय आया, अतीत में इनसे पीड़ित रहे समुदाय ने इनके लालन–पालन का दायित्व संभाल लिया। एक निहित स्वार्थ के पूरी तरह क्षरित होने के पूर्व ही दूसरे निहित

स्वार्थ ने उसका ज़िम्मा संभाल लिया। ऐसी वैचारिक उदारता के साथ ऐसी सामाजिक संकीर्णता का उदाहरण अन्यत्र शायद ही मिले। इसे क्या कहा जाय? सामूहिक चरित्र का छद्म, पाखंड, दोहरापन...आप ही तय कीजिए।

अधिकांश विद्वान मानते हैं कि वैदिक कर्मकाण्ड के अतिवाद की प्रतिक्रिया में, एक ऐतिहासिक ज़रूरत के तौर पर, बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ था। उसकी महायान शाखा की मुख्यधारा सनातन से काफ़ी प्रभावित हुई और उसने सनातन पर जबर्दस्त प्रभाव भी डाला। इस क़दर कि महात्मा बुद्ध को दस मुख्य अवतारों में सम्मिलित कर लिया गया। किंतु दुःख़द है कि राजाश्रय के बावजूद बौद्ध धर्म सनातन की सामाजिक संकीर्णता की मूर्त रूप वर्ण व्यवस्था और जाति–प्रथा के ऊँच–नीच को दूर करने में असमर्थ रहा। जहाँ तक नवबौद्धों का सवाल है, उनमें से अधिकांश बौद्ध धर्म के उदात्त सिद्धांतों के सहारे बेहतर मनुष्य बनकर अन्य के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने के बजाय, मानो अतीत के प्रतिशोध में, सनातन के क्षुद्रीकरण और उसके कलंक–तुल्य जातिगत विखंडन को धार देने में, उसके लिए अपनी बौद्धिक प्रतिभा ज़ाया करने में मशरूफ़ हो गये हैं। यह उदात्त बौद्ध धर्म की अद्यतन भारतीय विडंबना है।

भक्तिमार्ग और सनातन के भीतर से जातिव्यवस्था का प्रतिरोध :– वैदिक काल में भक्ति का कोई संदर्भ नहीं मिलता, तब केवल 'तप' का महत्व था। किंतु बाद के दुर्वासा (अतिक्रोधी) और पराशर (मत्सकन्या सत्यवती पर आसक्त) जैसे 'तपस्वियों' ने तप–साधना की सम्माननीयता को गहरी खँरोच लगाई। तपभंग के लिए इंद्र द्वारा भेजी गई देवांगनाओं के पौराणिक आख्यानों ने भी इस पथ को धूमिल किया। तपस्वी आज भी मिलते हैं किंतु उनमें से जो प्रकाश में आते हैं, अधिकांश अपनी 'सिद्धियों' और चमत्कारों द्वारा सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने में मशगूल लगते हैं।

भक्तिमार्ग के अग्रदूत थे दक्षिण के आलवार (तमिल शब्द, अर्थ– निमग्न) संत (5वीं से 9वीं शताब्दी)। भक्तिमार्ग का सूत्रपात हुआ आलवार संतों के अंतस से निकले सीधे–सच्चे उद्‌गारों की काव्यमय अभिव्यक्ति से। इनमें 12 संत प्रमुख हैं जिनमें एकमात्र महिला संत अण्डाल (अंदाल) का भी उल्लेख मिलता है। ये मुख्यतः निचली कही जानेवाली जातियों से आये थे, इन्हें अपने प्रताड़ित जीवन का निस्तार ईश्वर के रक्षक रूप विष्णु और उनके अवतारों की भक्ति और उनके प्रति पूर्ण समर्पण में नज़र आया। उनकी वाणी की सरलता और सच्ची संवेदना ने मानव–मात्र को प्रभावित किया और कालांतर में वैष्णव सम्प्रदाय को जन्म दिया। भक्तिमार्ग का एक महत्वपूर्ण योगदान जाति–पाँति के ऊँच–नीच से परे ईश्वर की सर्वसुलभता पर ज़ोर देने के रूप में फलित हुआ।

आलवार संतो के वचनों को दार्शनिक जामा पहनाने, उदार वैष्णव भक्ति को एक एक संगठित सम्प्रदाय का रूप देने और उसका प्रचार करने का कार्य किया। एक सहृदय ब्राह्मण विद्वान रामानुज (1017–1137) ने जो शंकर की अद्वैत परंपरा में दीक्षित हुये थे। अपने अद्वैतवादी गुरु यादव प्रकाश से मतभेद होने पर वे आलवार संतों के पदचिह्नों पर चल पड़े जिसके लिये उन्हें आलवार परम्परा के विद्वानों नाथमुनि तथा यमुनाचार्य से प्रेरणा मिली। इस पृष्ठभूमि में उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद का खंडन कर विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना दी। वेदांत दर्शन के मूलग्रंथ ब्रह्मसूत्र और गीता पर अपना श्रीभाष्य लिखा और शांकर भाष्य की व्याख्याओं को त्रुटिपूर्ण बताते हुए भक्तिमार्गी व्याख्या प्रस्तुत की।

रामानुज के अनुसार सर्वव्यापी ब्रह्म में चित् (चेतन) और अचित् (जड़) दोनों तत्व विद्यमान हैं। अचित् प्रकृति तत्व है जिससे समस्त भौतिक जगत निर्मित होता है। चित् से चेतन या आत्म तत्व निर्मित होता है। रामानुज प्रकृति को भी ब्रह्म की तरह शाश्वत सत्ता मानते हैं जो ब्रह्म का अंश और उसी से संचालित है। इसलिए सृष्टि माया नहीं, वास्तविक है। प्रलय की अवस्था में भी ब्रह्म के दोनों गुण, चित् और अचित्, बीज रूप में विद्यमान रहते हैं और उन्हीं से पुनः सृष्टि होती है। जैसे सोने से कई तरह के आभूषण बन सकते हैं, वैसे ही ब्रह्म के अचित् स्वरूप से प्रकृति में नानात्व आता है। ब्रह्म अनंत गुणों का भंडार है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और कृपालु है। इसलिये वह निर्गुण नहीं, सगुण है। रामानुज ने शंकर का यह प्रमेय तो स्वीकार कर लिया कि सभी आत्माओं में एकत्व है और हर व्यक्ति की आत्मा में ब्रह्म (आध्यात्मिक सत्य)

से एकत्व की अनुभूति की संभावना निहित है किंतु उन्होंने इसे प्राप्त करने का मार्ग ब्रह्म–ज्ञान नहीं, ब्रह्म के सगुण रूप की भक्ति बताया। इस संदर्भ में रामानुज ने दर्शन की ज्ञानमीमांसा में एक क्रांतिकारी योगदान दिया। इंद्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान के अलावा भक्ति भी ज्ञान का एक स्रोत है। जब भक्तिभाव व्यक्ति में अभिनिविष्ट हो जाता है, गहरी जड़ें जमा लेता है, वह पराभक्ति का रूप ले लेता है और तब ज्ञान के विषय का इंद्रियों से स्वतन्त्र और सीधा अवबोध हो जाता है। इस तरह भक्ति स्वयं में ज्ञान का एक साधन बन जाती है। आध्यात्मिक मुक्ति ब्रह्म के सैद्धांतिक ज्ञान से सम्भव नहीं। मुक्ति परमानंद की वह अवस्था है जो ब्रह्म के प्रति समर्पण, उसके यशोगान, उसकी पूर्णता के मनन में निहित है, आवागमन से मुक्ति में नहीं। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की भक्ति केवल सीमित आनंद दे सकती है क्योंकि वह स्वयं सीमित और अपूर्ण है। पूर्ण ब्रह्म की भक्ति ही पूर्ण और निर्ब्याज परमानंद की स्रोत है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म स्वयं में परमानंद है (तै. 2.6)। इसकी अनुभूति ही भक्तियोग है। और इसका प्रसाद है ब्रह्म का लालित्यपूर्ण अनुग्रह जो वास्तविक मुक्ति है।

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद और परवर्ती मध्वाचार्य (1238–1317) के द्वैतवाद में भी स्पष्ट भेद है। मध्व ब्रह्म और जीव को पृथक् मानते हैं, किंतु रामानुज के विशिष्टाद्वैत में जीव और ब्रह्म के पार्थक्य के बावजूद मनुष्य की आत्मा और ब्रह्म की मूल प्रकृति एवं गुणों में एकरूपता है और सभी मानव आत्माओं में परमानंद के गुण की संभावना समान है, इसलिए यह एक विशिष्ट क़िस्म का अद्वैत (विशिष्टाद्वैत-Qulified Advait) है, न कि द्वैत।

रामानुज विद्वान और दार्शनिक बाद में थे, समाज सुधारक पहले थे। उन्होंने अपने श्रीवैष्णव सम्प्रदाय में सभी जाति के लोगों को दीक्षित किया और अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों को विशेष प्रोत्साहन दिया। 'श्री आलवार दिव्यप्रबन्धम्' के उपदेशों द्वारा उनमें आध्यात्मिक ज्ञानोदय लाने का निष्ठावान प्रयास किया। आलवार संत–मत के अनुरूप उन्होंने व्यक्ति–व्यक्ति में भेद को अस्वीकार कर अस्पृश्यों को तिरुकुलत्तर (उच्चकुलोत्पन्न) की संज्ञा प्रदान की। रामानुज ने श्रीवैष्णव आंदोलन में अपनी सारी ऊर्जा लगा दी। उस युग में मेलूकोटे मंदिर में अस्पृश्यों के प्रवेश के लिये किया गया उनका सफल प्रयास उल्लेखनीय है। उन्होंने वैष्णव मंदिरों में पूजा और अन्य कृत्यों के लिये ग़ैर–ब्राह्मणों को सम्मिलित किया–कराया जिससे उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा मिली। उन्होंने अपने श्रीवैष्णव मत के प्रचार के लिये पूरे देश की यात्रा की। निहित स्वार्थों द्वारा उनका विरोध भी हुआ। दो बार उनकी हत्या का षड्यंत्र तक हुआ किंतु समय से सूचना मिल जाने से उनके प्राण बच गये।

दुर्भाग्य है कि स्व. मुक्तिबोध ने 'जनविकल्प', सितम्बर 2007 (http:janvikalp.blogspot.in/2007/09/blog.post.6380.html) में प्रकाशित अपने बहुचर्चित आलेख 'मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन' में आलवार संतों के योगदान को रेखांकित करने के बावजूद इस सम्बंध में रामानुज के ठोस, समाजोन्मुख प्रयासों का उल्लेख तक नहीं किया।

उत्तर भारत, विशेषकर गंगाघाटी में रामानुज के भक्ति आंदोलन का प्रचार करने और उसे प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय स्वामी रामानंद (14वीं शतब्दी के मध्य से 15वीं शताब्दी के मध्य तक) को जाता है। उनके जीवन का अधिकांश बनारस में बीता। नाभादास के भक्तमाल के अनुसार, स्वामी रामानंद स्वामी राघवानंद के शिष्य थे जो दक्षिण से वैष्णव भक्ति परम्परा लेकर बनारस आये थे और यहाँ के परिवेश के अनुरूप उसे विष्णु के अवतार राम–भक्ति में अंतरित कर दिये थे। रामानंद में सगुण और निर्गुण दोनों भक्तिधाराओं का संगम मिलता है। उन्होंने समतामूलक रामानंदी संप्रदाय की स्थापना की जिसने समाज के दलित–वंचित समुदाय को एक मंच, एक आधार दिया। रामानंद के 12 प्रमुख शिष्यों में कबीर, रविदास (रैदास), सेन, धन्ना, भगत पीपा उसी समुदाय से आते थे। उनकी दो शिष्याओं– सुरसुरी और पद्मावती का भी उल्लेख मिलता है। रामानंद ने सर्वसुलभ रामभक्ति के प्रचार के लिये हिंदी में पद लिखे जिनमें से कुछ का समावेश गुरुग्रंथसाहब में मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिंदी में ज्ञानलीला और योग–चिंतामणि शीर्षक से दो व्याख्यात्मक ग्रंथ भी लिखे। वे अद्वैत और विशिष्टाद्वैत दोनों दर्शनों के सम्यक् ज्ञाता और संस्कृत के प्रकांड

विद्वान थे, उनके द्वारा प्रणीत संस्कृत के दो ग्रंथ– 'वैष्णव मत भजभास्कर' तथा 'रामार्चन पद्धति' उनके विद्वत्तापूर्ण ज्ञान के दर्पण हैं। रामानंद की प्रेरणा से ही भक्ति आंदोलन में निर्गुण संत परंपरा का सूत्रपात हुआ जिसने कबीर और रैदास जैसे संत कवियों को जन्म दिया।

रामानंद एक क्रांतिकारी और उदारवादी समाज सुधारक थे जिन्होंने जाति, लिंग और सम्प्रदाय के ऊपर आध्यात्मिक प्रतिबद्धता तथा भक्ति की निर्मलता को वरीयता दी।

शैव परम्परा से निःसृत समाज सुधार की एक स्वतंत्र और सशक्त धारा कर्नाटक क्षेत्र तक सीमित होने के कारण उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन–विमर्श में प्रायः अनुपस्थित रही है। वेद–शास्त्रों की परंपरा में दीक्षित एक ब्राह्मण संत बसव या बसवन्ना (1114–1196 ई.) ने इस दिशा में स्थायी और ठोस महत्व का कार्य किया। उनके आंदोलन से लिंगायत सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसमें जाति–पांति का कोई भेद नहीं है। लिंगायत बसवन्ना के वचनों को ही अपने सम्प्रदाय का एकमात्र आधार मानते हैं, छोटे आकार के शिवलिंग को आत्मा के प्रतीक के रूप में गले में पहनते हैं और मृतकों को जलाने के बजाय पद्मासन की मुद्रा में समाधि देते हैं।

बाद में लिंगायतों का एक उप सम्प्रदाय वीरशैव अस्तित्व में आ गया जो मंदिर में शिव के विग्रह की भी पूजा करने लगा, बसवन्ना के वचनों के साथ वेदों और आगमों को भी प्रमाण मानने लगा और उसमें जातिप्रथा भी घुस आई। लिहाज़ा, लिंगायतों ने वीरशैवों से अपने को पृथक् कर लिया। हाल में जब हिंदू धर्म से स्वतंत्र एक पृथक् धर्म के दावे के साथ लिंगायतों में अल्पसंख्यक का दर्जा पाने की मुहिम चली, वीरशैवों ने भी अपने को लिंगायतों का ही एक उपसमूह होने का दावा किया और कर्नाटक की सिद्धारमैया सरकार ने दोनों को अल्पसंख्यक मानने की संस्तुति केंद्र सरकार को भेज दी, जहाँ वह लम्बित है।

आंध्र से बनारस आये एक तैलंग ब्राह्मण परिवार में जन्मे बल्लभ (1470–1531) ने शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रणयन किया। उन्होंने कृष्ण को ही परब्रह्म का सगुण रूप घोषित कर दिया और समस्त सृष्टि को लीला के लिये परब्रह्म की आत्मकृति बताया। उन्होंने पूरे देश की पदयात्रा की, अपने मत की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रार्थ किये और देश की जनता को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। ब्रह्मसूत्र का अपना स्वतंत्र अणुभाष्य लिखा और कृष्ण के पूर्वार्द्ध जीवन पर आधारित श्रीमद्भागवत महापुराण की सुबोधिनी टीका लिखी। कृष्ण भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने पुष्टिमार्ग की नींव डाली जिसका प्रभाव व्रज के अलावा पूरे उत्तरप्रदेश, बिहार, गुजरात और राजस्थान में अभी तक क़ायम है। अवध में श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण हर व्यक्ति के जीवन का एक आवश्यक धार्मिक कृत्य बन गया और रामकेंद्रित दशाक्षर मंत्र '(ॐ) ह्रां ह्रीं रां रामाय नमः' के स्थान पर कृष्ण–केंद्रित द्वादशाक्षर मंत्र '(ॐ) नमो भगवते वासुदेवाय' अधिक प्रचलित हो गया। वल्लभ के पुत्र बिट्ठल ने 8 कृष्ण भक्त कवियों को चुनकर अष्टछाप की स्थापना की; सूरदास अष्टछाप के प्रमुख स्तम्भ थे।

उत्तर भारत की वैष्णव भक्ति परम्परा गंगा से सरयू के बीच अब भी फल–फूल रही है। मेरे बचपन तक सभी जातियों में वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी पाये जाते थे। उनकी ख़ास पहचान यह थी कि वे मांसाहार से ही नहीं, लहसुन–प्याज से भी परहेज़ करते थे। गले में एक कंठी पहनते थे जिसे रामनामी कंठी कहा जाता था। सदाचार के प्रति आग्रह के कारण वे अन्य से प्रायः अलग दिखते थे और तदनुरूप उन्हें सम्मान भी मिलता था।

ब्राह्मणों में वैष्णव सम्प्रदाय के साथ शालिग्राम शिला की पूजा, नवधा भक्ति और षोडशोपचार के तमाम विधि–विधान जुड़ गये जो बाह्य अधिक, आंतरिक कम प्रतीत होते हैं।

कर्ममार्ग **:–** कर्ममार्ग तो बिल्कुल सीधा मार्ग है जिसमें फल से निरपेक्ष विहित कर्म को पूरी तन्मयता और कुशलता से करना ही एकमात्र कृत्य है। तब कर्म किसी अन्य साध्य का साधन न होकर स्वयं में साध्य हो जाता है। गीता में निष्काम कर्म पर विस्तृत विमर्श उपलब्ध है। तन्मयता से ही कुशलता आती है और वही योग है, कर्ममार्गी के लिये वही स्वर्ग है, वही मुक्ति है। कर्ममार्ग की बहुत उदात्त अभिव्यक्ति निम्न श्लोक में

मिलती हैं– "न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।।"(महाभारत से)। (न मैं राज्य की कामना करता हूँ, न स्वर्ग की, न ही आवागमन से मुक्ति अर्थात् मोक्ष की। मैं तो बस दुःख़ से परितप्त प्राणियों की पीड़ा दूर करना चाहता हूँ।)

लेकिन व्यवहार में यह तन्मयता तभी आ सकती है जब व्यक्ति को उसकी प्रवृत्ति, उसकी रुचि, उसकी पसंद और उसकी क्षमता के अनुरूप कार्य मिले, जब क्षमतानुरूप कार्य या व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता रहे। व्यक्ति–व्यक्ति की प्रवृत्ति और क्षमता का भिन्न होना अकाट्य तथ्य है। जन्म से इसका कोई सम्बंध नहीं। वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा यहीं आड़े आ जाती है।

बौद्ध धर्म के प्रभाव तथा सनातन के उपरोक्त भक्ति आंदोलन में जाति–भेद समाप्त करने के जो प्रयास हुए, उनके अलावा आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज के सुधार आंदोलन ज़्यादा व्यापक स्तर पर मनुष्य–मनुष्य में बराबरी लाने की ओर उन्मुख थे। किंतु कमज़ोर और वंचित तबक़े के आर्थिक सशक्तीकरण के बिना आध्यात्मिक और सामाजिक बराबरी का कोई मूल्य नहीं। पहली बार भारतीय संविधान में व्यापक स्तर पर आर्थिक सशक्तीकरण के लिये विशेष सुविधाओं का प्रावधान किया गया। पहले केवल अस्पृश्यों (दलितों) के लिये, फिर मंडल कमीशन की संस्तुतियों की स्वीकृति के बाद अन्य पिछड़ों के लिये। वयस्क मताधिकार से राजनीतिक बराबरी के साथ आर्थिक सशक्तीकरण के विशेष प्रावधानों का फलित आने में भी समय लगना था और लगा। फिर जैसे–जैसे फलित सामने आने लगा, अतीत के प्रतिशोध की भावना कुलबुलाने लगी। और उसकी प्रतिक्रिया भी। इस तरह विषाक्त हुए माहौल में जातिव्यवस्था का दूसरा फलित सामने आया– वर्चस्व का संघर्ष। प्रतिभा, क्षमता, चारित्रिक शुचिता कहीं भी हो, किसी भी समूह में हो, उसका कुण्ठित होना उसके लिये ही नहीं, समष्टि के लिये भी हानिकारक है। अतीत का प्रतिशोध नहीं हो सकता, वह न्याय नहीं बर्बरता को जन्म देता है।

फिर भी इस पर विचार करना प्रासंगिक होगा कि वर्णव्यवस्था और उसकी अनुवर्ती जाति–प्रथा का प्रादुर्भाव कैसे और किन परिस्थितियों में हुआ और उसके लिए (किस तबक़े की नहीं) किस प्रवृत्ति की ज़िम्मेदारी बनती है कि कम से कम अब तो उससे बचने का प्रयास किया जाय। इतना तो निश्चित है कि जातिभेद के समूल उच्छेद के बिना हिंदू समुदाय का कोई भविष्य नहीं, और हिंदू समुदाय का कोई भविष्य नहीं तो इस देश का भी कोई भविष्य नहीं।

अतिशय वैचारिक उदारता और अतिशय सामाजिक संकीर्णताः समाधान की तलाश

भाग-2

प्रथम भाग में हमने देखा कि सनातन के सिद्धांत किसी बाध्यकारी इलहाम के बजाय वेदों के ज्ञानकांड, उपनिषदों और वैदिक षड्दर्शन पर आधारित होने के कारण अतिशय उदार, बहुलतावादी और समावेशी हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् और सर्वे भवन्तु सुखिनः की अवधारणा इसी मिट्टी की उपज है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 164वें सूक्त की 46 वीं ऋचा का पूर्वार्द्ध है– आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरितासउद्भिदः। (कल्याणकारी, अदम्य, अपराजेय और उत्कर्षकारी शुभ विचार सब ओर से हमारे पास आयें।) यह वैचारिक उदारता वेदों को आप्त वाक्य मानने के बजाय सनातन परम्परा के आधार षड्दर्शन के मुक्त विमर्श की उपज है। सनातन में शास्त्रार्थ की परम्परा बहुत प्राचीन है और मेरे बचपन तक क़ायम थी। शास्त्रार्थ का विषय व्याकरण के अतिरिक्त दर्शन भी होता था जिसमें षड्दर्शन के ज्ञाता संवाद के माध्यम से अपने–अपने मत की प्रतिष्ठा करते थे। शास्त्रार्थ की शुरुआत की एक पद्धति रूढ़ हो गई थी जो किसी विवादास्पद विषय पर इस तरह प्रश्न करने से होती थी– 'अस्यां सभायां ये केचित् वावदूकाः विद्वांसः वैयाकरणाः मीमांसकाः...प्रवर्तन्ते तांसतान् प्रति मया प्रश्नः कृयते।'

इस पृष्ठभूमि में विचारणीय यह है कि सामाजिक जीवन में वर्णाश्रम की विभाजक और सोपानबद्ध व्यवस्था का बीजारोपण कैसे हो गया। इस सम्बंध में पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित और (संभवतः द्वंद्वात्मक वर्गसंघर्ष के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के अनुरूप होने से) वाम इतिहासकारों द्वारा पुष्टीकृत वर्ण और

जाति के उदय के सम्बंध में 'आर्यों' को एक भिन्न नस्ल का मानने और बाहर से आकर आक्रमण करने का सिद्धांत अद्यतन शोधों से अमान्य सिद्ध हो चुका है। रोमिला थापर जैसी शीर्षस्थ वाम इतिहासकर ने नई शोधों के आलोक में स्वीकार किया है कि आर्य कोई नस्ल नहीं थी, एक भाषायी समूह मात्र था और वर्ण एवं जाति–विभाजन बाहर से आक्रमणकारी के रूप में आये आर्यों के कारण नहीं हुआ। रोमिला थापर ने लिखा है– "यह (आर्य आक्रमण का) दृष्टिकोण भारतीय इतिहास की उपनिवेशवादी व्याख्याओं के लिये उपयोगी था, क्योंकि आर्य–विजय और अंग्रेजों की विजय के बीच सादृश्य दिखाया गया...कुछ लोगों ने, जो इतिहासकार नहीं थे, आर्यों को मूल निवासी मानना इसलिये पसंद किया कि श्रेष्ठतर मानी जानेवाली सभ्यता के लिये भारतीय मूल का दावा किया जा सके। दिलचस्प बात यह है कि इसके ठीक विपरीत आक्रमण का सिद्धांत निचली जातियों के दावे की एक बड़ी दलील बन गया। उनका मानना था कि ब्राह्मण लोग बाहरी आक्रमणकारी और अत्याचारी थे और उन्होंने देश के मूल निवासी निचली जातियों और क़बीलाई लोगों के अधिकार हड़प लिये। इस दृष्टिकोण से देश के मूल निवासियों ने आर्य–पूर्व सभ्यता के रूप में सिंधु सभ्यता से समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की। इसलिये आर्य–सिद्धांत पिछली दो शताब्दियों के दौरान भारतीय राष्ट्र–राज्य के विकास में पहचान और दर्जे से सम्बंधित अनेक विवादों के केंद्र में रहा है...

"अब आक्रमण के सिद्धांत को त्याग दिया गया है। यह सिद्धांत मूलतः ऋग्वेद में उल्लिखित आर्य–दास शत्रुता पर आधारित था। इन उल्लेखों को स्थानीय दासों पर नवागंतुक आर्यों की विजय के रूप में देखा गया। अब इस सिद्धांत का स्थान छोटे पैमाने के देशांतरण के सिद्धांत ने ले लिया है। हिंद–आर्य भाषा को प्रतिष्ठित करने के लिये संघर्ष की स्थिति की दरकार नहीं थी।" (रोमिला थापर, आर्यः संरचना का पुनर्गठन (अंग्रेजी से अनुवाद) हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सितम्बर, 2011, पृ. 83–84)

इस प्रस्तावना के बाद रोमिला जी की अपनी संशोधित स्थापनाएँ हैं जिनके पुरातात्विक और अन्य साक्ष्यों पर आधारित होने का दावा किया गया है। मेरा प्रयास मुद्दे के गुणावगुण के विवेचन से स्वतंत्र रूप से समुचित निष्कर्ष पर पहुँचने का है।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'Who were the Shudras' (1946) में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति की विवेचना ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की इस कुख्यात ऋचा से शुरू की है– ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोजायत (10.90.12) (ब्राह्मण उसका मुख था, बाँहों से क्षत्रिय की रचना की गई, वैश्य उसकी जंघा थी, शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुआ।)

पुरुष सूक्त की सोलह ऋचाएँ सृष्टि का काव्यात्मक रूपक रचती है जिसमें यज्ञ पुरुष (या विराट पुरुष) के भिन्न–भिन्न अंगों से सृष्टि के भिन्न–भिन्न उपादानों की रचना का आख्यान है। इसी सदर्भ में ऊपर उद्धृत ऋचा में मनुष्य की सृष्टि के बजाय सीधे चार वर्णों की सृष्टि का रूपक खड़ा कर दिया गया है। दैवी उत्पत्ति के इस रूपक से इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता कि ज़मीनी स्तर पर क्या और क्यों और कब घटित हुआ। इतना अवश्य है कि यह रूपक उस काल में ही रचा जा सकता था जिसमें चार मुख्य पेशे न केवल आनुवंशिक हो चुके थे, उनका सोपानीकरण भी हो गया था।

ऋग्वेद काल में यह असंभाव्य लगता है। ऋग्वेद की कई ऋचाएँ मनुष्यमात्र की उत्पत्ति मनु से प्रतिपादित करती हैं (1.80.16; 1.114.2; 2.33.13; 3.3.6; 4.14.2; 4.37.1; 6.14.2 and 8.52.1) मनु के आदिपुरुष होने की यह धारणा इतनी बद्धमूल है कि सनातन परम्परा में आद्यंत अनुस्यूत है। यदि पुरुषसूक्त के उपरोक्त रूपक को यथार्थ घटित माना जाय तो अंतर्विरोध स्पष्ट है। या तो मानव मात्र के पूर्वज एक ही (मनु) थे या वे यज्ञ पुरुष के चार भिन्न अंगों से उद्भूत चार भिन्न पुरुष थे।

ऋग्वेद की एक ऋचा (9.112.3) का ऋषि (कवि) घोषित करता है– कारुरहं ततो भिषग उपलप्रक्षिणी नना। नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव।। (मैं बढ़ई (शिल्पकार) हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं और माँ उपले बनाती हैं। इस तरह हम इंद्रिय–वृत्तियों के अनुरूप (गा इव) ऊपर–नीचे के नाना

काम करते हुए, ऐश्वर्य की कामना करते हैं। इसलिये हे प्रकाशस्वरूप (इंद्र), हमारी वृत्तियों को उच्चैश्वर्य के लिये (इंद्राय) प्रवाहित करें (परि स्रव)। (अनुमानित अनुवाद))

इस ऋचा से स्पष्ट है कि ऋग्वेदकाल में केवल पेशे थे जो आनुवंशिक नहीं हुये थे, पिता और पुत्र का पेशा भिन्न हो सकता था और सूक्तों की रचना किसी भी पेशे में संलग्न कवि (ऋषि) कर सकता था।

ऋग्वेद के उसी दशम् मंडल में, जिसमें पुरुष सूक्त है, नासदीय सूक्त भी मिलता है जिसमें सूक्तकार सृष्टि के सम्बंध में अपनी जिज्ञासा को पूरी निष्ठा के साथ और खुले दिमाग़ से काव्यमय अभिव्यक्ति देता है। वह मात्र कुछ अनुमान लगाता है जिनके बारे में उसके पास निश्चित उत्तर नहीं हैं। यदि ऋग्वेद दुनिया का पहला ज्ञात काव्य–ग्रंथ है तो नासदीय सूक्त सृष्टि के सम्बंध में मनुष्य की आदिम जिज्ञासा की पहली काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जिसका समुचित उत्तर आज तक नहीं मिला है। नासदीय सूक्त (मंडल–10, सूक्त–129, कुल सात मंत्र या ऋचाएँ)– नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीयः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।।1।। (तब न अनस्तित्व था, न अस्तित्व. न वायुमंडल था, न उसके परे आकाश. इसे कौन आच्छादित करता था और कहाँ? कहाँ था इसका आश्रय? क्या तब केवल जल था– अतल गहराईवाली गहन, गंभीर जल?)

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः। अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास।2।। (मृत्यु नहीं थी तब, न ही थी अमरता। रात्रि और दिन के विभाजन का कोई संकेतक नहीं था। बस एक ही तत्व था– प्रश्वास–रहित, स्वयं की प्रकृति से प्रश्वसित। उसके अतिरिक्त कुछ भी तो नहीं था।)

तम आसीत्तमसा गूहमग्रेप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।3।। (अंधकार था तब– अंधकार से ही आच्छादित अंधकार। अभेद्य जल–सा परस्पर मिला हुआ, अस्तव्यस्त–सा कुछ. वह जो रिक्त, निराकार, अरूप ऊष्मा (तप) थी, वही अपनी महिमा से एक इकाई बनकर उत्पन्न हुई।)

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बंधुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।4।।

(प्रारम्भ में संकल्प उठा, संकल्प जो आदिम बीज और चेतना का अंकुर था। तब मनीषी कवियों ने, अपनी हृदयस्थ विवक्षा से अस्तित्व का रिश्ता अनस्तित्व में खोज निकाला।)

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा मधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्। रेतोधा आसन् महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्।5।। (तब वह (अस्तित्व से अनस्तित्व की) विभाजन–रेखा वितान की तरह तन गई। उस वितान के ऊपर क्या था, उसके नीचे क्या था? बस यहाँ सर्जक थे, विराट शक्तियाँ थीं, स्वायत्त क्रियाशीलता थी, तो वहाँ थी ऊर्जा।)

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनौथा को वेद यत आवभूव।6।। (कौन जानता है, कौन कह सकता है, यह (सृष्टि) ठीक कहाँ से उत्पन्न हुई, कहाँ से आई? देव तो सृष्टि के बाद की उपज हैं। तो कौन जानता है, यह सर्वप्रथम कहाँ से प्रकट हुई!)

इयंविसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।7।। (वह जो सृष्टि का आदि मूल है, यह उसकी निर्मिति है या उसकी निर्मिति नहीं है? किसके नेत्र हैं जो उच्चतम् व्योम से इसका नियंत्रण करते हैं? और वह इसे जानता भी है या नहीं जानता?)

नासदीय सूक्त में ऋषि (कवि) के इस मानवोचित, सहज उद्गार तथा मनु को मनुष्यमात्र का आदिपुरुष बताने वाली उपरोक्त अनेक ऋचाओं को परवर्ती काल में हुये विचलन के आधार पर गढ़े गये पुरुष सूक्त के काव्य रूपक से समंजित करना असंभव है। वैदिक साहित्य में पुरुष सूक्त की एकमात्र उपरोक्त ऋचा है जिसमें चारों वर्णों का एक साथ उल्लेख हुआ है।

प्राच्यविद्या (प्दकवसवहल) के प्रसिद्ध विद्वान हेनरी टॉमस कोलब्रुक (Henry Thomas Colebrooke : 1765–1833) के अनुसार पुरुष सूक्त अपनी भाषा और अपने छंद व शिल्प की दृष्टि से सृष्टि–सम्बंधी ऋग्वेद के अन्य सूक्तों से सर्वथा भिन्न है। उसी दसवें मंडल में होने के बावजूद पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त में प्रयुक्त भाषा, छंद और शिल्प सर्वथा भिन्न हैं। कोलब्रुक का मत है कि पुरुष सूक्त की रचना तब हुई जब वैदिक संस्कृत अपने व्याकरण और लयात्मकता में काफ़ी परिष्कृत हो चुकी थी। प्रो. मैक्स मूलर (1823–1900) के अनुसार भी पुरुष सूक्त की भाषा की संरचना और शब्दयोजना से स्पष्ट है कि यह ऋग्वेद के बहुत बाद की रचना है। उदाहरण के लिए इसमें वसंत, ग्रीष्म और शरद ऋतुओं का इसी क्रम में उल्लेख हुआ है जब कि ग्रीष्म शब्द ऋग्वेद के किसी अन्य सूक्त में नहीं मिलता और वसंत शब्द तो आरम्भिक वैदिक साहित्य (त्रयी) के शब्दभंडार में कहीं नहीं मिलता। त्रयी युग के सामाजिक व्यवहार में वर्ण–व्यवस्था की उपस्थिति का कोई साक्ष्य नहीं। अतिशय लालित्यपूर्ण भाषा में लिखा गया पुरुष सूक्त निश्चय ही बाद का प्रक्षिप्त है और नासदीय सूक्तकार की सृष्टि–विषयक ईमानदार जिज्ञासा के विपरीत, सामी धर्मों के ईश्वर द्वारा छः दिन में सृष्टि–रचना की तर्ज़ पर, यज्ञ या विराट पुरुष के अंग–प्रत्यंग से सृष्टि के सारे उपादानों की (एक साथ?) निर्मिति का रूपक खड़ा कर देता है। इसकी रचना तब हुई होगी जब ऋग्वेद–कालीन पेशे धीरे–धीरे आनुवंशिक हो गए होंगे और उनके आधार पर बने चार वर्णों का सोपानीकरण भी हो गया होगा। व्यवहार की इस परिणति को दैवी आधार देने के लिए पुरुष सूक्त को ऋग्वेद के उसी दसवें मंडल में घुसा दिया गया जिसमें सृष्टि–विषयक मानवीय जिज्ञासा की पहली काव्यात्मक अभिव्यक्ति नासदीय सूक्त के रूप में विद्यमान थी।

ऐसा नहीं कि डॉ. अम्बेडकर को ऋग्वेद के सृष्टिविषयक अन्य सूक्तों का तथा पुरुष सूक्त की भाषाई भिन्नता का इल्म नहीं था। दरअसल ब्राह्मणों में इस सूक्त की अतिशय लोकप्रियता थी जो दैनिक पूजा में इसके नियमित पाठ तथा हर मांगलिक अवसर पर इस लालित्यपूर्ण सूक्त के सस्वर गायन की परम्परा (जो अब तक चली आई है) में व्यक्त होती थी। इसमें निहित विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति का रूपक उनकी आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति का पोषण करता था। ब्राह्मणों में इसकी असाधारण लोकप्रियता के चलते जाति–व्यवस्था की उत्पत्ति की खोज में इसकी अवहेलना नहीं की जा सकती थी। बावजूद इसके इस सूक्त की उपरोक्त ऋचा में वर्णित वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति ऋग्वेदकालीन समाज का आईना नहीं कही जा सकती। उसमें केवल पेशों का अस्तित्व था जो तब तक आनुवंशिक नहीं हुए थे, न ही ऊँच–नीच की भावना का उदय हुआ था।

दरअसल आर्य शब्द किसी नस्ल या नस्ली समूह के अर्थ में न तो वैदिक संस्कृत में कहीं प्रयुक्त हुआ है, न लौकिक संस्कृत में। इसका सबसे अधिक प्रयोग श्रेष्ठ के अर्थ में हुआ है। संबोधन में ही नहीं, वार्तालाप में भी 'आप' की जगह सर्वत्र, जैसे आर्य आएँ, आर्य आसन ग्रहण करें, आर्य को ऐसा करना चाहिए, आर्य को ऐसा नहीं करना चाहिए। हर व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ को आर्य (पुल्लिंग) या आर्या (स्त्रीलिंग) कहता है। छोटा भाई बड़े भाई को आर्य कहता है तो इसका निहितार्थ यह नहीं कि वह स्वयं अनार्य है। पत्नी अपने पति को आर्यपुत्र कहती है तो इसका तत्पर्य यह नहीं कि वह अनार्य की पुत्री है। यही बात आर्या पर भी लागू होती है। मृच्छकटिकम् में वसंतसेना गणिका होने के बावजूद अपनी प्रतिष्ठा के चलते (खलनायक को छोड़कर) अन्य सभी के द्वारा आर्या कही जाती है। आर्य और आर्या का प्रयोग लगभग उसी तरह होता था जैसे आजकल सर और मैडम का होता है। तो आर्य और आर्या का जन्म से या किसी नस्ल से कोई सम्बंध नहीं है, न कभी था।

ऋग्वेद में दो शब्द मिलते हैं– अर्य और आर्य। अर्य का प्रयोग 88 स्थानों पर चार भिन्न–भिन्न अर्थों में हुआ है– श्रेष्ठ व्यक्ति, शत्रु (अरि), भारत देश और जुताई किए जानेवाले खेतों का मालिक। आर्य शब्द का प्रयोग 33 स्थानों पर हुआ है किंतु कहीं भी नस्ल या नस्ली समूह के अर्थ में नहीं। मैक्स मूलर पहले आर्य नस्ल के पैरोकार थे। बाद में सम्यक् अध्ययन के बाद उन्हें अपनी त्रुटि का एहसास हुआ और उन्होंने लिखा– "रक्त से आर्यन नस्ल जैसी कोई चीज़ नहीं। वैज्ञानिक भाषा में आर्यन किसी नस्ल का द्योतक नहीं।

इसका तात्पर्य केवल और केवल भाषा से है। यदि हम आर्यन नस्ल की बात करते ही हैं, तो हमें जानना चाहिए तो इसका अर्थ केवल आर्यन वाणी से है।" (Science of Language)

अब तक हड़प्पा सभ्यता के अवशेष सिंध के अलावा दूर–दूर तक फैली अनेक जगहों पर मिल चुके हैं। जैसे बलूचिस्तान, हरियाणा (रोहतक, फ़तेहाबाद) गुजरात (बेट–द्वारका, बाबरकोट–सौराष्ट्र, भरूच, कच्छ), राजस्थान (हनुमानगढ़), उत्तरप्रदेश (सहारनपुर, मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर) और महाराष्ट्र (अहमदनगर)। इसका निहितार्थ यही हो सकता है कि सिंधु घाटी सभ्यता और आर्य सभ्यता साथ–साथ फल–फूल रही थीं। ऋग्वेद का काल–निर्धारण असाध्य है, इसमें दस मंडल (खंड) हैं और इनकी रचना इतने लम्बे अंतराल में हुई थी कि निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता, इसमें वर्णित सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता के बाद विकसित हुई और उसके पहले या उसके समांतर इसका अस्तित्व नहीं था। हड़प्पा–मोहनजोदाड़ो की खुदाई में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला जो आक्रमणकारी द्वारा किए गए विनाश का संकेत दे, जो भी चीज़ें मिली हैं उनमें मनुष्य द्वारा कुछ भी खंडित किए जाने का साक्ष्य नहीं है, जो शव मिले हैं, उनमें किसी लड़ाई से लगे हुए घावों से मृत्यु का कोई संकेत नहीं। सारे साक्ष्य यही इंगित करते हैं कि तटवर्ती नदी के सूखने या धारा बदलने से सारा शीराजा बिखर गया। मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा में ही नहीं, उपरोक्त किसी साइट पर किसी तरह की हिंसा से सभ्यता के विनाश का कोई संकेत नहीं मिला। इस संभावना को ख़ारिज नहीं किया जा सकता कि ये उन्हीं लोगों की बस्तियाँ थीं जो शेष भारत में आबाद थे। इतने बड़े भूप्रदेश के निवासियों की सभ्यता–संस्कृति सर्वथा एकरूप नहीं हो सकती। आज यातायात और सूचना–संचार की सुविधाओं के बावजूद देश के भिन्न–भिन्न भागों के लोगों में रहन–सहन और सभ्यता–संस्कृति के विभिन्न घटकों में एकरूपता नहीं है। आज भी जंगलों में रहनेवाले वनवासी हैं, भिन्न–भिन्न इलाक़ों में रहनेवाले भिन्न–भिन्न रहन–सहन और विश्वासों की जनजातियाँ हैं, साथ ही मुख्यधारा के नगरवासी और ग्रामवासी हैं, उनमें भी सभी क्षेत्रों में परस्पर सांस्कृतिक एकरूपता नहीं है। आज भी तमिलनाडु, बंगाल, उत्तर प्रदेश–बिहार, राजस्थान और पंजाब के गाँवों के रहन–सहन, वेश–भूषा, उत्सवों, त्योहारों में स्पष्ट भिन्नता है! गाँवों का असर स्थानीय क़स्बों और छोटे शहरों में भी देखा जा सकता है।

वर्ण और जाति की उत्पत्ति के पीछे तथाकथित आर्यों के बाहर से आने के नस्ली सिद्धांत को ख़ारिज करते हुए स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने अपने आलेख 'Annihilation of Caste' (1936 में आयोजित आर्य समाज के जाति–पाँति तोड़क मंडल के अधिवेशन में प्रस्तावित भाषण का प्रारूप जो टल गया) में जो कहा था, आज तक मील का पत्थर बना हुआ है– "वस्तुतः भारत की विभिन्न नस्लों के रक्त और संस्कृति में परस्पर घुलने–मिलने के बहुत बाद जाति–व्यवस्था अस्तित्व में आई। यह मानना कि जातियों का अंतर दरअसल नस्लों का अंतर है और विभिन्न जातियाँ इतनी सारी नस्लें हैं, तथ्य की घोर विकृति होगी। पंजाब के ब्राह्मणों और मद्रास के ब्राह्मणों में कौन सी नस्ली साम्यता है? बंगाल के अछूतों और मद्रास के अछूतों में कौन सी नस्ली साम्यता है? और पंजाब के ब्राह्मणों व पंजाब के चमारों में क्या नस्ली अंतर है? मद्रास के ब्राह्मण और मद्रास के अछूत में क्या नस्ली अंतर है? पंजाब का ब्राह्मण नस्ली तौर पर उसी वंश का है जिसका पंजाब का चमार है; मद्रास का ब्राह्मण उसी नस्ल का है जिसका मद्रास का अछूत है। जाति–व्यवस्था नस्ली विभाजन को रेखांकित नहीं करती। वस्तुतः जाति–व्यवस्था एक ही नस्ल के लोगों का सामाजिक विभाजन है।" (Writings and Speeches Vol. 1:2, Annihilation of Caste, P.48, Education Deptt] Government of Maharashtra,1989)

डॉ. अम्बेडकर के इस कथन के शुरू में एक अहम् तथ्य का उल्लेख है। भारत की विभिन्न नस्लों के रक्त और संस्कृति के परस्पर घुलने–मिलने के बहुत बाद जाति–व्यवस्था अस्तित्व में आई। निश्चय ही इस उर्वर क्षेत्र में विभिन्न नस्लों का आव्रजन प्रागैतिहासिक काल में हो चुका था। अफ्रीका से शुरू होकर मानव प्रजाति की अंतर्महाद्वीपीय यात्राओं का जो अनुमान लगाया जाता है, उसके साथ या उसके बाद।

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'Who were the Shudras' में सर हर्बर्ट रिस्ले (Sir Herbert Risley) द्वारा 1901 में किए गए भारत के मानववैज्ञानिक (Anthropometrical) सर्वेक्षण के परिणामों का उल्लेख

किया है। रिस्ले के अनुसार भारत में मुख्यतः चार नस्लों के लोगों का मिश्रण पाया जाता ह–आर्य, द्रविड, मंगोल और सीथियन (Scythian)। रिस्ले ने उन इलाक़ों को भी चिह्नित किया है जहाँ इस मिश्रण में नस्ल विशेष का प्राधान्य पाया गया। डॉ. विराज संकर गुहा (1894–1961) ने 1936 में रिस्ले के सर्वेक्षण का गहन विश्लेषण करने के बाद भारत का एक मानववैज्ञानिक मानचित्र बनाया था जिसमें देश के भिन्न–भिन्न भागों का परिसीमन नस्ली मिश्रण में नस्ल–विशेष के प्राधान्य के आधार पर किया था। यह प्राधान्य भौगोलिक है, वर्णगत या जातिगत नहीं। विस्तार में न जाकर, इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मानववैज्ञानिक सर्वेक्षण भी भारतीयों की मिश्रित नस्ल के प्रमेय को पुष्ट करता है।

तो स्थिति यह है कि ऐतिहासिक काल की शुरुआत से ही तथाकथित आर्य और तथाकथित मूल निवासी रक्त और संस्कृति में परस्पर घुलमिलकर यहाँ रहते हुए पाए गए। ऐसे में प्रकृत निष्कर्ष तो यही होगा कि दोनों अज्ञात काल से यहीं के निवासी थे। ऐसे में यह सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी उन पर आ जाती है जो दावा करते हैं कि तथाकथित आर्य बाहर से आये आए और मूल निवासियों को पराजितकर, उन्हें दक्षिण की ओर भगा दिया या दास, शूद्र और अस्पृश्य बनाकर अपनी समाज–व्यवस्था में शामिल कर लिया।

इसके लिए पहले तो यह सिद्ध करना होगा कि आर्य बाहर से आए और मूल निवासियों से भिन्न नस्ल के लोग थे। पूर्व विमर्श से यह स्पष्ट हो गया होगा कि ऐतिहासिक काल आते–आते आर्य जैसी किसी नस्ल का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रह गया था। फिर उपरोक्त प्रमेय के कर्ताओं को यह सिद्ध करना होगा कि वे कहाँ से आए और जहाँ से भी आए, वहाँ कौन–सी स्थानीय परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने इतनी बड़ी संख्या में उन्हें एक साथ या रह–रहकर समूह में विस्थापित होने को मजबूर किया, विस्थापित होकर कहाँ जाना है, इसके लिए फ़िलहाल इस क्षेत्र के उपजाऊ होने का प्रेरक तत्व स्वतःसिद्ध मान लेते हैं। विस्थापन की स्थानीय परिस्थितियों के निर्धारण के लिए पहले तो यह निश्चित होना ज़रूरी है कि वे कहाँ से आए। इस बारे में विद्वान एकमत नहीं है। कई उन्हें मध्य एशिया से तो कुछ आर्कटिक क्षेत्र से तो कुछ ईरान (ज्योतिबा फुले) से आया हुआ मानते है।

जब तथाकथित आर्यों का मूल स्थान ही निश्चित नहीं है तो वे कब और क्यों वहाँ से निकले, यह तो पूरी तरह हवा में है। हुआ यह कि पहले उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने समाज को विखंडित रखने के साम्राज्यवादी लक्ष्य से एक सरलीकृत गढंत प्रस्तुत किया। फिर मार्क्सवादी इतिहासकारों ने वर्ग–संघर्ष और देश के अतीत का कालिमामय चित्र प्रस्तुत करने के अपने विचारधारात्मक लक्ष्य के लिए उसी साम्राज्यवादी लाइन को पकड़ लिया।

मनुष्य का जैसा स्वभाव है, क्या यह संभव है कि विस्थापित होने के बाद उसमें और उसकी आनेवाली पीढ़ियों में गृहदेश की स्मृतियाँ धुल–पुँछ्कर एकदम साफ़ हो जाएँ? इस क़दर कि ऋग्वेद से लेकर मध्यकाल तक के शास्त्र, साहित्य, दर्शन, पौराणिक आख़्यान जैसे अनगिनात विषयों पर वाङ्मय का जो विशाल भंडार है उसमें गृहदेश का कहीं भी, एक बार भी, उल्लेख न मिले? उनकी स्मृति का एक कतरा तक कहीं उपलब्ध न हो? ऐतिहासिक काल में अन्य विस्थापित समूहों के साथ कहीं ऐसा हुआ है? इसके लिए तो एक ऐसे अमोघ और सर्वग्रासी षड्यंत्र की भूमिका अपरिहार्य है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी अकाट्य बना रहे। ऐसे किसी षड्यंत्र का कहीं लेशमात्र भी संकेत मिलता है? और विजयी समुदाय ऐसा क्यों करेगा? उसे क्या भय रहा होगा?

विपन्नता की बेहद विषम स्थिति में भारत से लोग गिरिमिटिया मज़दूर बनाकर फ़िजी, मॉरिशस, दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनिडाड–टोबैगो, गायना, सुरीनाम, जमैका जैसे दूरस्थ इलाक़ों में 19वीं शती में गन्ने की खेती के लिए ले जाए गए थे जिनमें से अधिकांश ऐग्रीमेंट की अवधि पूरी होने पर वहीं बस गए। ये आप्रवासी भारतीय यहाँ की अपने इलाक़े की बोली, पहनावा, व्यंजन, लोकगीत, (आधा–अधूरा) वंश–वृक्ष, धार्मिक ग्रंथ (रामचरितमानस की प्रतियाँ लेकर गए थे) आज तक सँजोकर रखे हुए हैं। पहला मुग़ल बादशाह बाबर, जो मध्य एशिया के फ़रग़ाना से आया था, अपने मूल निवास की भाषा चगताई में लिखी अपनी जीवनी 'बाबरनामा' में उस प्रदेश के लोगों, वहाँ के इतिहास, भूगोल, पौधों, जानवरों, हथियारों, युद्धों, पारिवारिक

विवरणों, वहाँ के संगीत, वहाँ की कविता, वहाँ की शराब और वहाँ के ऐतिहासिक स्मारकों को बेहद शिद्दत से और बहुत भावुकता से याद करता है। ब्रिटिश अमेरिकन्स ने अतिशय साधनहीनता में, बहुत कठिन और असमान युद्ध लड़कर गृहदेश से स्वतंत्रता अर्जित की थी। किंतु उसकी स्मृति को जीवित रखने के लिए दर्जन भर से ऊपर अमेरिकन शहरों का नाम इंग्लैंड के शहरों पर 'न्यू' का विशेषण लगाकर रख छोड़ा है। उस पूरे क्षेत्र को जहाँ इंग्लैंड से आकर वे सबसे पहले बसे थे, न्यू इंग्लैंड कहते हैं। इस क्षेत्र के लोग अभी भी पुराने ब्रिटिश स्वराघात में अंग्रेजी बोलते हैं और वहाँ की आदतें नहीं छोड़ पाए हैं, जिसके चलते उन्हें (उपहासपूर्वक) 'बॉस्टन ब्राह्मण' कहा जाता है।

इसके विपरीत जिस भावप्रवणता और आत्मीयता से ऋग्वेद का ऋषि यहाँ की सात प्रमुख नदियों को संबोधित करता है––मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरी सरस्वती (ऋग्वेदः 10.75.5), किसी विदेशी आक्रांता के लिए सम्भव है? वैदिक और लौकिक दोनों संस्कृत की रचनाएँ यहाँ की प्रकृति, यहाँ के पहाड़ों, नदियों, सरोवरों, वनों, वृक्षों, फूलों, पशुओं, फ़सलों, के प्रति भावसंवलित रागात्मक उद्गार से भरी हुई हैं। ऐसा किसी अन्य बाह्य आक्रांता के साथ देखा गया है?

जहाँ तक भाषा का सवाल है, पढ़े–लिखे, सृजनशील व्यक्तियों की भाषा और सामान्य जन की भाषा (बोली) में कहीं भी, कभी भी एकरूपता नहीं होती। भारत में जनसामान्य की भाषाएँ स्थानीय प्राकृतें थीं जिनका रूप संस्कृत नाटकों के संवादों में मिलता है। बृहद्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी गई एक बड़ी रचना थी जो अब अनुपलब्ध है किंतु उसकी कथाएं इतनी लोकप्रिय हुई थीं कि संस्कृत के कथासरित्सागर और बृहत्कथामञ्जरी में संग्रहीत हैं। एक क्षेत्र विशेष में बोली जानेवाली प्राकृत को पालि कहते थे जिसमें महात्मा बुद्ध के उपदेश मिलते हैं; यह उनकी भाषिक क्रांति का परिणाम था। ये प्राकृतें पाणिनि के पहले से वजूद में थीं और पाणिनि ने देश के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में घूमकर और भिन्न–भिन्न पेशों के लोगों से मिलकर इनकी धातुओं और शब्दों का संग्रह किया था जो अष्टाध्यायी में एक परिशिष्ट के रूप में उपलब्ध है। उन्होंने धातुओं और शब्दों को व्याकरण के नियमों से बाँधकर, संस्कृत में शामिल कर, एक अपरिवर्तनीय रूप दे दिया क्योंकि जन–प्रचलित भाषाएँ समय के साथ अपना रूप बदलती रहती हैं। इसीलिए संस्कृत में ठीक उसी अर्थ में प्रयुक्त कुछ संज्ञाओं के अनेक पर्यायवाची शब्द मिलते हैं। बहुत संभव है पालि सहित विभिन्न क्षेत्रों की इन प्राकृतों के तत्कालीन रूप वैदिक युग में और उससे भी पहले विद्यमान रहे हों।

ऋग्वेद में देवताओं के दो प्रमुख समूहों का संदर्भ अवश्य मिलता है– देव और असुर। लेकिन बाद के ग्रंथों की तरह यहाँ असुरों का दानवीकरण नहीं हुआ है। देव समूह की माँ हैं अदिति जो असुर (आदित्य) समूह की भी माँ हैं। आदित्य समूह के दो प्रमुख देव मित्र और वरुण हैं जो देवों की तरह ही आदरणीय हैं।

मिथकों में कश्यप की दो पत्नियाँ हैं––दिति और अदिति। दोनों के पिता दक्ष और माँ पंचजनी हैं, इस तरह दोनों सगी बहनें हैं। सभी देव या सुर समूह और असुर या आदित्य समूह इन्हीं दिति और अदिति की संतानें हैं। सब के पिता कश्यप एक हैं और माताएँ हैं दक्ष और पंचजनी की दो पुत्रियाँ दिति और अदिति, यानी सगी बहनें। ऐसे में दोनों के भिन्न नस्ल का होने का प्रमेय मिथकीय धरातल पर पूर्णतः खंडित हो जाता है।

देवासुरसंग्राम, समुद्र–मंथन और समुद्र से निकले एक से एक विलक्षण पदार्थ शुद्ध पारलौकिक मिथकों के घटक हैं। और उन्हीं मिथकों के अनुसार दोनों समूह एक ही पिता और दो माताओं की संतानें हैं जो परस्पर बहनें हैं। मिथकों को या तो समग्रता में लेना पड़ेगा या उन्हें समग्रता में त्यागना पड़ेगा। उसके कुछ अंश को इतने प्राचीन घटित के इतिहास का आधार बनाना और कुछ की अवहेलना करना सर्वथा अनुपयुक्त है। यह किसी ग़ैर–ऐतिहासिक लक्ष्य से ही संभव हो सकता है। इस तरह देवासुरसंग्राम वगैरह को किसी ऐतिहासिक घटित से जोड़ना, अन्य साक्ष्यों के अभाव में, परियों की कहानी को इतिहास में अंतरित करना है। पी टी श्रीनिवासन ऐंगर ने अपनी गहन शोध के आधार पर सिद्ध किया है कि आर्य, दास, दस्यु किसी नस्ल के नहीं, संप्रदाय या पंथ के सूचक हैं।

पेशों पर आधारित ऋग्वेदकालीन भारतीय समाज–व्यवस्था का वंशानुगत वर्णों और जातियों में विभाजन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी और कुछ नए पेशे तो अभी भी वंशानुगत होने के क्रम में हैं। भारतीय परंपरा में काल की चक्रीय अवधारणा केंद्रीय होने, आधुनिक अर्थ में कालक्रमानुसार इतिहास–लेखन की परंपरा न होने तथा भारतीय सभ्यता के अति–प्राचीन होने के साथ–साथ इसके एक कालातीत अविच्छिन्न सूत्र में पिरोई होने के कारण वर्ण और जाति की संस्थाओं के उदय और दृढ़ीकरण का कालक्रम उपलब्ध न होना सहज–स्वाभाविक है। महात्मा बुद्ध का महापरिनिर्वाण (487/6 ई.पू.) और सिकन्दर का आक्रमण (327–326 ई.पू.)– यही वे दो वर्ष हैं जो लगभग सुनिश्चित हैं, इनके पूर्व का एक सुदीर्घ कालखंड है जो कालक्रम की दृष्टि से पूर्णतः अंधकार में है। सिर्फ़ अनुमान हैं जो इतने अनिश्चित हैं कि सैकड़ा हज़ार में और हज़ार दस हज़ार में हो सकता है।

अतिशय वैचारिक उदारता और अतिशय सामाजिक संकीर्णता : समाधान की तलाश
भाग-3

उल्लेखनीय है कि पहले तीन ही वेद (त्रयी) मान्य थे– ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद। तीनों के सूक्तों में काफ़ी घालमेल है। ऋग्वेद के कई सूक्त सामवेद और यजुर्वेद में भी मिलते हैं और तीनों के प्रतिपाद्य की धारा भी एक ही है। अथर्ववेद को वेद की मान्यता बहुत बाद में मिली। चूँकि ऋग्वेद में (प्रक्षिप्त पुरुष सूक्त को छोड़कर) चार वर्णों का उल्लेख नहीं है, निष्कर्ष यही निकलता है कि ऋग्वैदिक धारा के दौरान, यानी त्रयी के काल में, वर्ण व्यवस्था का उदय नहीं हुआ था। बहुत संभव है, वर्ण व्यवस्था का उदय त्रयी की रचना तथा अथर्व वेद की रचना के अंतराल में हो गया हो, जो काफ़ी लंबा काल–खंड है।

यह भी उल्लेखनीय है कि शुरू में तीन ही वर्ण थे– ब्राह्मण, क्षत्रिय (राजन्य) और वैश्य। तैत्तिरीय ब्राह्मण (ाा.12.9.2) में उल्लेख है–– "इस संपूर्ण ब्रह्मांड की सृष्टि ब्रह्मा के द्वारा हुई है। लोग कहते हैं कि वैश्य वर्ण की उत्पत्ति ऋक् मंत्रों (ऋग्वेद) से, क्षत्रियों की उत्पत्ति यजुर्वेद के गर्भ से और ब्राह्मणों की सामवेद से हुई। ऐसा पुराने लोग पुराने लोगों को बताते थे" ('Who were the Shudras', द्वितीय संस्करण, 1947, पृ.133 पर उद्धृत)। ध्यातव्य है कि (1) यहाँ शूद्र की उत्पत्ति का कोई उल्लेख नहीं है। (2) ब्रह्मा द्वारा ब्रह्मांड की सृष्टि तो निश्चयात्मक ढंग से बताई गई है किंतु तीनों वर्णों की उत्पत्ति के संदर्भ में 'लोग कहते हैं' और 'पुराने लोग पुराने लोगों को बताते थे' का आलम्बन लिया गया है। (3) ब्राह्मण को ऋग्वेद के बजाय सामवेद से, वैश्य को यजुर्वेद के बजाय ऋग्वेद से और क्षत्रिय को सामवेद के बजाय यजुर्वेद से उत्पन्न बताया गया है जब कि त्रयी का क्रम ऋग्वेद–सामवेद–यजुर्वेद और वर्णों का क्रम ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य निर्विवाद है। इससे स्पष्ट है कि समाज का तीन वर्णों में यह विभाजन भी तैत्तिरीय ब्राह्मण के रचनाकाल तक पुष्ट नहीं हुआ था।

शतपथ ब्राह्मण (II.1.4.11) अधिक स्पष्टता से तीन वर्णो का उल्लेख करता है। उसके अनुसार प्रजापति ने 'भूः' का उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को, 'भुवः' का उच्चारण करते हुए क्षत्रिय को और 'स्वः' का उच्चारण करते हुए वैश्य को उत्पन्न किया (संदर्भ वही)। यहाँ भी शूद्र की उत्पत्ति का कोई उल्लेख नहीं है।

तीन वर्णों में इस विभाजन में ऊँच–नीच का भेद नहीं था, यह क्षैतिज श्रमविभाजन जैसा थाकृब्राह्मण द्वारा ज्ञानार्जन, शिक्षा, कर्मकांड और नैतिक नियमन, क्षत्रिय द्वारा क्षेत्र की रक्षा और वैश्य द्वारा कृषि एवं व्यापार से उत्पादन।

अमूमन ब्राह्मण ग्रंथों को सभी वैदिक संहिताओं के बाद की रचना माना जाता है किंतु वस्तुतः ऐसा है नहीं। प्रो. बेलवल्कर, महादेव गोविंद रानाडे और डॉ. अम्बेडकर का मत है कि ब्राह्मण ग्रंथ वेदों के सहायक ग्रंथ की तरह हैं। जैसे ऊपर उद्धृत तैत्तिरीय ब्राह्मण कृष्ण यजुर्वेद का और शतपथ ब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेद का सहायक ग्रंथ है। इसलिए इन दोनों की रचना यजुर्वेद के ठीक बाद किंतु अथर्ववेद से बहुत

पहले हुई होगी। यजुर्वेद और अथर्ववेद के रचनाकाल में एक बड़ा अंतराल है जो दोनों की विषयवस्तु से स्पष्ट है। अस्तु, चातुर्वर्ण्य का जन्म त्रयी और अथर्ववेद की रचना के अंतराल में ही संभव है।

अब सबसे कठिन प्रश्न– जब शुरू में तीन ही वेद और तीन ही वर्ण थे तो शूद्र वर्ण की उत्पत्ति कब और कैसे हो गई? और बाद के शूद्र केवल तीन वर्णों के अस्तित्व के इस काल में, किस वर्ण में शामिल थे? डॉ. अम्बेडकर की स्थापना है कि वे क्षत्रिय थे। वस्तुतः 'Who were the Shudras' की केंद्रीय स्थापना यही है।

यह स्थापना प्रथमदृष्ट्या ही निर्मूल लगती है। डॉ. अम्बेडकर पुरुष सूक्त को प्रक्षिप्त स्वीकार करने और त्रयी के काल में तीन ही वर्णों का अस्तित्व मानने के बावजूद ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय राजा सुदास और उसके वंशजों को क्षत्रिय के बजाय शूद्र मान लिए जाने की घटना को ब्राह्मण ग्रंथों के काल से पहले ले जाते हैं और इसे ब्राह्मण ऋषि वसिष्ठ तथा क्षत्रिय ऋषि विश्वामित्र के परस्पर संघर्ष से जोड़ देते हैं। राजा सुदास तथा ऋषि वसिष्ठ एवं विश्वामित्र तीनों ऋग्वेदकालीन हैं। वसिष्ठ और विश्वामित्र ऋग्वेदकाल से लेकर रामायण काल तक मौजूद हैं। इसलिए तत्वतः यह इतिहास नहीं, आख्यान है और पौराणिकी (Mythology) का विषय है।

सुदास का आख्यान इस प्रकार है। वसिष्ठ इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुदास के पारिवारिक पुरोहित थे। सुदास का राजतिलक समारोह वशिष्ठ ने ही सम्पन्न कराया था। सुदास ने तीस राजाओं (शिन्यु, तुर्वश, ध्रुह्यु, कवश, पुरु, अनु, भेद, शम्बर, दो वैकर्ण, यदु, मत्स्य, पक्थ, भलनस, अलीन, विषणिन, अज, शिव, शिग्रु, यक्षु, युध्यामिधि, यद्व, देवक मन्यमन, चयमन कवि, सुतुक, उचथ, श्रुत, वृद्ध, मन्यु और पृथु) को पराजित किया था जिनमें से दस राजाओं की पराजय वसिष्ठ के सहयोग से ही संभव हुई थी। किंतु बाद में सुदास ने वसिष्ठ के बजाय विश्वामित्र को अपना पुरोहित नियुक्त कर लिया और विश्वामित्र ने ही सुदास द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराया। सद्गुरुशिष्य ने कात्यायन–कृत ऋग्वेद–अनुक्रमणिका पर एक भाष्य लिखा है। इस भाष्य में प्रसंग आता है कि उपरोक्त यज्ञ में विश्वामित्र और वसिष्ठ–पुत्र शक्ति के बीच सार्वजनिक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें शक्ति ने विश्वामित्र को बुरी तरह परास्त कर, उनकी बोलती बंद कर दी। इस पर क्रुद्ध होकर सुदास ने शक्ति को अग्नि में फेंककर जीवित जला दिया। इससे नाराज़ ब्राह्मणों ने सुदास के कुल के क्षत्रियों का उपनयन संस्कार कराना बंद कर दिया और वे द्विज से च्युत होकर शूद्र बन गए।

डॉ. अम्बेडकर क्षत्रियों के सुदास–कुल के अतिरिक्त किसी अन्य कुल के उपनयन संस्कार से वंचित होने के कारण क्षत्रिय वर्ण से शूद्र वर्ण में अंतरित होने का कोई उल्लेख नहीं करते। वे सिर्फ़ एक उदाहरण से मान लेते हैं कि सभी शूद्र ऐसे ही ब्राह्मण– द्वेष के कारण क्षत्रिय से शूद्र में अंतरित हो गये होंगे। ऐसे में शूद्रों की संख्या के विस्तार का तथ्य अम्बेडकर के प्रमेय में अव्याख्यायित रह जाता है। तथ्य के धरातल पर यह प्रमेय पूर्णतः असंगत है।

तो तैत्तिरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में इंगित तीन वर्णों से चार वर्ण बनने का प्रश्न अनुत्तरित है। इस पर नये सिरे से विचार अपेक्षित है।

वेदों का अध्ययन–अध्यापन तथा यज्ञ करना–कराना ब्राह्मणों का विहित कर्म था। स्वाभाविक है कि सभी ब्राह्मण इसकी योग्यता अर्जित नहीं कर पाते होंगे। ऐसे में यज्ञ–सम्पादन से मिलनेवाली दक्षिणा से वंचित ब्राह्मणों का जीविकोपार्जन के लिए अन्य पेशे अपनाना अपरिहार्य हो गया होगा। लिहाज़ा, वे वर्णच्युत होकर चतुर्थ वर्ण के घटक बन गए होंगे। ब्राह्मणों को दान में गाएँ बहुत मिलती थीं। उन्हें पानेवाले ब्राह्मणों के लिए सबका पालन–पोषण असंभव था। तो अपने विहित कर्म में अशक्य ब्राह्मण केवल गोपालन का कार्य करने लगे होंगे और शूद्र की श्रेणी में आ गए होंगे। इसी तरह कुछ ब्राह्मण जंगलों को साफ़कर कृषिकर्म अपना लिये होंगे और शूद्र बन गये होंगे। कालांतर में कृषिकर्म अपनाने के कारण ही ब्राह्मणों से निष्काषित भूमिहारों की अलग जाति ही बन गई। यह प्रत्यक्ष साक्ष्य का विषय है। कृषिकर्म से दूरी बनाये रखने के प्रतीक के रूप में मेरे बचपन तक ब्राह्मण अन्य सारा कृषिकर्म करने के बावजूद हल नहीं चलाते थे, इसे

अप्रतिष्ठा का कारण माना जाता था (अब तो ट्रैक्टर ने यह दुविधा दूर कर दी है)। डी डी कौशाम्बी के 'जीवंत पुरातत्व' के सिद्धांत का सहारा लेने से सब कुछ स्पष्ट हो जाता है।

क्षत्रिय का कर्म था क्षेत्र की रक्षा करना जिसके धीरे–धीरे राजकर्म में अंतरित होने से क्षत्रिय राजन्य हो गये। किंतु सभी क्षत्रियों का कर्मणा राजन्य होना संभव नहीं था। ऐसे में बहुत से क्षत्रिय भी जीविकोपार्जन के लिए नये विकसित हो रहे चौथे वर्ण में शामिल हो गए होंगे।

वैश्यों के ज़िम्मे कृषि–कर्म और वाणिज्य–कर्म दोनों थे। कृषि और व्यापार दो सर्वथा भिन्न प्रकृति के कर्म हैं। कृषि में शारीरिक श्रम की प्रधानता होती है जब कि व्यापार में पूँजी और व्यावहारिक बुद्धि की। समाज के विकास के साथ उसके सदस्यों की आवश्यकताएँ भी बढ़ी होंगी। इसके चलते हस्त–उद्योग (आगे देखें) का क्षैतिज विस्तार हुआ होगा। इससे व्यापार को गति मिली होगी और उसका महत्व भी बढ़ा होगा। व्यापार में वैश्यों की व्यस्तता बढ़ी होगी और कृषिकर्म में उनका उत्साह घटा होगा। दूसरी ओर व्यापार से होनेवाले पूँजी–निर्माण ने उन्हें नये–नये व्यापार की ओर उन्मुख किया होगा। किंतु वाणिज्य–बुद्धि से वंचित वैश्यों का व्यापार लाभप्रद नहीं हो पाया होगा, न उनमें पूँजी–निर्माण की सुविधा से नए व्यापार शुरू करने की क्षमता विकसित हुई होगी। लिहाज़ा, वे कृषिकर्म तक सीमित होकर रह गए होंगे। कालांतर में बाक़ी दोनों वर्णों से च्युत होकर कृषि–कर्म अपनानेवालों में वे भी शामिल हो गए होंगे। यही कारण कि मात्र कृषिकर्म में लगे वैश्य अब न के बराबर मिलते हैं।

समाज की ज़रूरतों के विस्तार के साथ तरह–तरह के हस्त–शिल्पों का विकास हुआ होगा। तीनों वर्णों के कर्म से जीविकोपार्जन में कठिनाई का सामना करनेवालों को हस्तशिल्प में नया अवसर दिखा होगा। वे अपने वर्ण का कार्य छोड़कर हस्त–उद्योग में आ गये होंगे। इस तरह कृषिकर्म के अतिरिक्त हस्त–उद्योग भी शूद्रों के ज़िम्मे आ गया होगा। हस्तशिल्पों का धीरे–धीरे आनुवंशिक होना ही शूद्र वर्ण में नई–नई जातियों के उद्‌भव का कारण बना।

इस तरह कृषि–कर्म और हस्तशिल्प में लगे लोगों की संख्या बढ़ती गई। एक समय आया कि उनकी संख्या अन्य तीनों वर्णों की अलग–अलग संख्या से अधिक हो गई। डॉ. अम्बेडकर के मत में संख्या–बाहुल्य की अव्याख्येयता के मद्देनज़र यही मत स्वीकार्य हो सकता है जो जीवन्त पुरातत्व के अनुरूप है।

उपरोक्त परिवर्तन से सारा उत्पादन कार्य शूद्र वर्ण का दायित्व बन गया। भिन्न–भिन्न शिल्पों में महारत के चलते वह आनुवंशिक होता गया और उनमें जातियों पर जातियाँ बनती गईं। इनमें से कुछ शिल्पकारों की प्रतिष्ठा ब्राह्मणों और क्षत्रियों से कम नहीं थी। जैसे वास्तुकला, दुर्ग–निर्माण और बाद में मंदिर–निर्माण व मूर्तिकला के विकास के साथ उनमें प्रवीणता प्रतिष्ठा का आधार बन गई। इसी तरह रथ–निर्माण कला में निष्णात शूद्रों का भी विशेष सम्मान था।

इसमें दो राय नहीं कि ऐतिहासिक काल में भी नंद और मौर्य जैसे कई शक्तिशाली राजा शूद्र हुए और महज़ शूद्र होने के आधार पर उनका किसी तरह का प्रतिरोध होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत मौर्य वंश के संस्थापक साधनहीन चंद्रगुप्त मौर्य की शक्तिशाली किंतु निरंकुश और दंभी नंदों पर विजय ब्राह्मण चाणक्य की कूटनीति से ही संभव हुई थी। विशाखदत्त का ऐतिहासिक नाटक मुद्राराक्षसम् तथा अन्य अनेक साक्ष्य इसकी पुष्टि करते हैं।

यह धारणा कि शूद्रों का कर्म केवल शेष तीनों वर्णों की सेवा करना था, शुद्ध बकवास है, यह महज़ स्मृतिकारों की दुराग्रही आकांक्षा की अभिव्यक्ति हो सकती है, जो व्यवहार में कभी नहीं उतरी। दरअसल दास और शूद्र शब्दों के अर्थ में काफ़ी भ्रम रहा है। संस्कृत में दास माने गुलाम नहीं, सेवक या नौकर। वह किसी भी वर्ण का हो सकता था। गुलामी की प्रथा भी प्रचलित थी किंतु वह वर्ण–निरपेक्ष और जाति–निरपेक्ष थी। कभी–कभी आर्थिक संकट में पड़े परिवार अपने किसी सदस्य को बेच देते थे या बंधक रख देते थे। कभी–कभी तो आदमी स्वयं को बेचने या बंधक रखने को बाध्य हो जाता था, जैसे राजा हरिश्चंद्र के स्वयं

को डोम के हाथ बेचने का प्रसंग आता है। ऐसे दास क्रीतदास कहे जाते थे और वे स्वयं के अर्जन से आवश्यक धन का भुगतान कर मुक्त हो सकते थे, या कोई अन्य भुगतान करके उन्हें मुक्त करा सकता था। कौटिल्य ने इस समस्या के बारे में समुचित विचार करने के बाद क्रीतदासों के साथ होनेवाले अन्याय को दंडित करने का विधान बनाया था (अर्थशास्त्र, खंड–3, अध्याय–13)।

शूद्र का क्रीतदास से उतना ही सम्बंध था जितना किसी अन्य वर्ण का। अन्य वर्णों की तरह वह क्रीतदास बन सकता था तो क्रीतदास ख़रीदकर रख भी सकता था– किसी भी वर्ण के व्यक्ति को।

जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शब्दों का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ उनकी स्थिति को इंगित करता है, वैसे ही शूद्र शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ भी उनकी स्थिति को इंगित करता है। (शुच्+रक्) शोचति इति शूद्रः। चूँकि कोई व्यक्ति अपने मूल वर्ण में अवसर के अभाव के चलते, मुख्यतः आर्थिक कारण से, उसे छोड़कर (प्रकीर्ण) शूद्र वर्ण में शामिल हुआ था, उस बिंदु पर वह मजबूरी, असमंजस और अस्थिरता के चलते दुःखी रहा होगा, इसलिए वह शूद्र कहा गया। कृषि और हस्त–उद्योग के विस्तार के चलते यह स्थायी स्थिति नहीं थी। किंतु एक बार नामकरण हो जाने के बाद वही चलता रहता है।

प्रकीर्ण वर्ण में आने के बावजूद शूद्र सामाजिक संगठन से बहिष्कृत नहीं हुए, जैसा प्रतिलोम शारीरिक सम्बंधों से उत्पन्न संततियों के साथ हुआ (आगे देखिए)। वेदोत्तर काल में शूद्रों का प्रतिनिधि भी राजा के राज्याभिषेक समारोह में एक 'रत्नी' की हैसियत से भाग लेता था। दरअसल रत्नी द्वारा धारण किया जानेवाला रत्न संप्रभुता का प्रतीक था। राजा को संप्रभुता तभी प्राप्त होती थी जब शूद्र सहित राज्य के सभी रत्नी उसे अपना रत्न समर्पित कर देते थे। उसके बाद शूद्र सहित हर वर्ण के प्रतिनिधि पवित्र जल से राजा का अभिषेक कराते थे। बाद में राजा हर रत्नी के घर जाकर उसे समुचित उपहार देता था (Hindu Polity, के पी जायसवाल, 1943, पृ. 200–201)। महाभारत में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक इसी विधि से हुआ था (महाभारत, सभा पर्व, अध्याय–33, श्लोक–41–42)। महाभारत के शांतिपर्व में युधिष्ठिर को मंत्रियों के चयन के बारे में उपदेश देते हुए भीष्म कहते हैं––मंत्रिपरिषद में चार वेदज्ञ ब्राह्मण, आठ शस्त्र–कुशल और बलवान क्षत्रिय, बीस सम्पन्न वैश्य, तीन शुद्ध व्यवहार वाले तथा कर्तव्यपरायण शूद्र तथा एक पुराणज्ञाता एवं गुणी सूत होना चाहिए।

शूद्र निर्धन नहीं थे। मैत्रायणी संहिता (VI.2.7.10) और पंचविंस ब्राह्मण (VI.1.11) में धनधान्य से सम्पन्न शूद्रों का उल्लेख हुआ है। मेरे बचपन तक यह पारम्परिक सम्पन्नता चली आई थी। मेरे जँवार में दो सबसे बड़े काश्तकार वर्मा (कुर्मी) थे और उनमें से एक के परिवार में पहले देशी चीनी बनाने का हस्त–उद्योग चलता था। इस नाते वह (डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर के अनुसार) ग्रामीण इलाक़े का एकमात्र आयकर–दाता था।

एक विडम्बनात्मक संयोग के तौर पर जाति–प्रथा ने हस्त–कौशल के युग में भारत को विश्वबाज़ार का विशाल हिस्सा अर्जित करने और एक उन्नत निर्यातक देश बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आनुवंशिक पेशे और व्यवसाय ने रोज़गार की अनिश्चितता से मुक्त और जीविका की सुरक्षा से लैस एक स्थिर आर्थिक परिवेश उत्पन्न किया। पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक ही कार्य करते हुए उत्तरोत्तर कुशलता हासिल करने का अवसर भी। यही कारण है कि विश्व–बाज़ार में, ख़ासकर यूरोपीय बाज़ार में, यहाँ के हस्तशिल्प के उत्पाद–मलमल और रेशमी वस्त्रों, हाथीदाँत की वस्तुओं, मोती, समुद्र से मिले रत्नों, उच्च कोटि के लोहे के औज़ारों (मेहरौली का लौह–स्तम्भ भारतीय भट्ठियों में तैयार होनेवाले लोहे की अपूर्व गुणवत्ता का द्योतक है जो उत्तरोत्तर प्रगति से ही आ सकती थी) की बड़ी माँग थी। यहाँ पैदा होनेवाले तथा पूर्वी द्वीप समूह से आनेवाले मसालों के व्यापार पर तो भारत का एकाधिकार था। ये मसाले यूरोप की जलवायु में पैदा न होने से इनका निर्यात बेहद लाभप्रद था। इसी तरह भारतीय जलवायु में पैदा होने वाले किन्तु यूरोप की जलवायु में न पैदा होनेवाले चावल, गुड़, देशी चीनी, नील, शोरा, मोती और समुद्र से प्राप्त रत्नों, हाथीदाँत की वस्तुओं, सूती और रेशमी वस्त्रों जैसे हस्त–उद्योग के उत्पादों के निर्यात पर भारत का लगभग एकाधिकार क़ायम हो गया था। मसाले और सिल्क मार्ग से अरब व्यापारियों के ऊंटों के कारवाँ सीधे कुस्तुन्तुनिया

पहुंचते थे। साथ ही, समुद्र के तटीय मार्ग से अरबों की नौकाएँ (लालसागर के रास्ते) सारा माल अलेक्जेंड्रिया पहुंचाती थीं, फिर वहां से स्थल मार्ग से यह माल कुस्तुनतुनियाँ की मंडी जाता था। वहाँ के अरब और यूरोपीय व्यापारियों में लेन–देन से यह माल यूरोप के विभिन्न देशों में पहुँचता था।

भारतीय, और भारत से होकर यूरोप जानेवाले पूर्वी द्वीपों के मसाले के बिना उस युग के यूरोपियों का जीवन दूभर था। बर्फ़ पड़ने से चरागाह ढक जाने के कारण जाड़े के मौसम की शुरुआत में वे अपने जानवरों के एक हिस्से को मारकर उनके मांस को मसालों में सिझाकर रख लेते थे और जाड़े भर वही उनका आहार होता था। जाड़ा समाप्त होने के बाद ही वे अपने शेष पशुओं को लेकर चरागाहों की ओर निकलते थे और उनकी वृद्धि करते थे। वहाँ की जलवायु में न कपास हो सकती थी, न चावल या गन्ना पैदा हो सकता था, न ही रेशम के कीड़े पल सकते थे। केवल चमड़े और ऊन के वस्त्र बनते थे जो गर्मी के दिनों और सामंतों व दरबारों की शानोशौकत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थे। सामंतों और दरबारों की सारी शानोशौकत भारत से निर्यात होनेवाले मलमल और भारत व चीन से निर्यात होनेवाले रेशमी वस्त्रों पर निर्भर थी। भारत का निर्यात–अधिशेष इतना अधिक था कि अधिकांश मूल्य सोने–चाँदी की सिल्लियों में आता था। केरल में हुई एक खुदाई में रोमन काल के सोने के सिक्कों का भंडार मिला था। आख़िर पद्मनाभ जैसे मंदिरों में इतना सारा सोना आया कहाँ से होगा, सोने की भारतीय खानों की संख्या और क्षमता इतनी नहीं थी। तमाम कोशिशों के बावजूद पद्मनाभ मंदिर के सोने की मात्रा का हिसाब–किताब नहीं हो सका। केरल के बंदरगाहों से देश में उत्पादित और पूर्वी द्वीपसमूहों से आये मसालों के व्यापार के सिलसिले में ईसा की शुरुआती शताब्दियों में यहूदी और ईसाई व्यापारियों की बस्तियाँ आबाद हो गई थीं। एक अंतराल के बाद अरब व्यापारी भी आकर वहाँ बस गए थे। भारत की निर्यात श्रृंखला में अरबों का दाख़िला पूर्व–इस्लामिक है। थाने और सिंध के बंदरगाहों में भी अरबों की बस्तियाँ मौजूद थीं। रोमन सिनेट काल (ई.पू.) में सिनेट के एक राजकीय आदेश का उल्लेख मिलता है जिसमें यह ताकीद की गई थी कि रोमन महिलाएँ सार्वजनिक स्थलों पर भारतीय मलमल न पहनें (वह इतना बारीक होता था कि सार्वजनिक मर्यादा भंग होने की आशंका उत्पन्न हो गई थी)। पूर्व–राफेल युग के चित्रों में महिलाओं के जो भव्य परिधान दिखते हैं, वे मुख्यतः भारतीय मलमल की देन थे।

इसमें दो राय नहीं कि इस समृद्धि का एक बड़ा हिस्सा श्रेष्ठियों को जाता था या कर के रूप में राजकोष में पहुँचता था किंतु उत्पादक जनता में समृद्धि के उचित वितरण के बिना संतुलन क़ायम नहीं रह सकता था और यह स्थिति दीर्घजीवी नहीं बन सकती थी। फ़ाह्यान ने अपनी भारत यात्रा (399–414 : गुप्तकाल) के विवरणों में सामान्य जनता की सम्पन्नता और खुशहाली का खुलकर वर्णन किया है। स्पष्ट है कि भारत में कभी यूरोप की तरह का सामंतवाद नहीं पनपा जिसमें सारा कृषिकार्य करनेवाले भूदास थे जो अपने सामंत की जागीर छोड़कर दूसरी जागीर पर नहीं जा सकते थे और मालिक के कोड़े खाना ही जिनकी आम नियति थी।

अतिशय वैचारिक उदारता और अतिशय सामाजिक संकीर्णताः समाधान की तलाश
भाग-4 : पुष्यमित्र शुंग का मिथकीकरण

दुनिया में हर चीज़ दोधारी होती है। जाति–व्यवस्था ने आनुवंशिक होकर उन्नत हस्तशिल्प और कृषि के लिए मुफ़ीद जलवायु के संयोग से कपास, मसालों, चावल और गन्ने के उत्पादन से भारत के जिस विपुल निर्यात अधिशेष और तज्जन्य समृद्धि को संभव बनाया था, उसी ने बाह्य आक्रमणकारियों को भी आकृष्ट किया। और देश इनसे निबटने के लिए चाणक्य–चंद्रगुप्त जैसे नीति–कुशल एवं शक्तिशाली नेतृत्व से सम्पन्न हमेशा तो रह नहीं सकता था, कि यूनानी आक्रमणकारी सेल्यूकस के अधीनस्थ बलूचिस्तान व अफ़ग़ानिस्तान प्रांतों को छीनकर विवाह एवं दौत्य सम्बंध से पश्चिमोत्तर सीमा को सुरक्षित किया जा सकता। लिहाज़ा प्राचीन इतिहास काल में उत्तर भारत के राजाओं को देश की पश्चिमी और पश्चिमोत्तर सीमाओं से

घुसनेवाले यूनानी, पार्थियन, शक, चीन के यूह–ची (कुषाण), हूण जैसे आक्रमणकारियों से लगातार जूझना पड़ा।

अशोक के दिवंगत होते ही उसके शक्तिहीन और अकुशल वंशजों के शासन में महान मौर्य साम्राज्य बिखरने लगा।

चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने 24 वर्षों के शासन (322–298 ई.पू.) में पश्चिमोत्तर के अफ़ग़ानिस्तान–बलूचिस्तान, (कलिंग के अतिरिक्त) कश्मीर सहित समस्त उत्तर भारत, मध्य भारत तथा मैसूर–पर्यन्त दक्षिण भारत को मिलाकर एक अखंड राजनीतिक इकाई बना दिया था। केवल धुर दक्षिण के चोल, पांड्य और चेर (केरल) राज्य इस विशाल साम्राज्य से स्वतंत्र थे। जैन स्रोतों के अनुसार अपने शासन के अंतिम दिनों में चंद्रगुप्त जैन मुनि भद्रबाहु के प्रभाव में आकर जैन बन गया। भद्रबाहु ने उत्तर भारत में 12–वर्षीय भयानक दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की और उसके कुछ लक्षण प्रकट होने लगे तो वे 12,000 जैन शिष्यों के साथ दक्षिण की ओर प्रयाण करने को तत्पर हो गये। उनका शिष्य चंद्रगुप्त भी अपने पुत्र बिंदुसार को राज्य सौंपकर जैन यात्रियों के साथ हो लिया। यह जत्था (मैसूर से 85 कि. मी.) श्रवण बेलगोला जाकर रुका जहाँ 12 वर्ष बिताने के बाद चंद्रगुप्त ने सल्लेखना (दिगम्बर) / संथारा (श्वेताम्बर) पद्धति से उपवास करके प्राण त्याग दिये।

बिंदुसार ने अपने शासनकाल (298–273 ई.पू.) में राज्य–विस्तार की दिशा में क्या किया, क्या नहीं, इसका उल्लेख नहीं मिलता। किंतु उसने चंद्रगुप्त से प्राप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण अवश्य रखा।

बिंदुसार ने अपने ज्येष्ठ पुत्र सुशर्मा के बजाय अशोकवर्धन (अशोक) की योग्यता के आधार पर उसे ही युवराज नियुक्त कर दिया था। अशोक को तक्षशिला तथा उज्जैन में राजा के प्रतिनिधि के तौर पर शासन करने का अनुभव भी था। किंतु 273 ई. पू. में बिंदुसार की मृत्यु के 4 साल बाद 269 ई. पू. में ही अशोक का औपचारिक राज्याभिषेक संभव हो सका। निश्चय ही उत्तराधिकार के लिए कुछ संघर्ष हुआ होगा किंतु खूनी संघर्ष का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। केवल सीलोन के बौद्ध स्रोतों ने बौद्ध बनने के पूर्व अशोक को अतिशय क्रूर दिखाने के प्रयास में उस पर 99 भाइयों की हत्या का आरोप मढ़ दिया जो सर्वथा निराधार है। बिंदुसार के 100 पुत्रों की संख्या और 99 का अशोक के विरुद्ध होना ही सिद्ध कर देता है कि यह सायास अतिशयोक्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

अशोक ने अपने 37 वर्षों के शासनकाल (269–232 ई. पू.) के प्रारम्भिक चरण में कलिंग राज्य को मौर्य साम्राज्य में मिलाया और कलिंग युद्ध (261 ई.पू.) में हुई भीषण हिंसा–जन्य विषण्णता और पश्चात्ताप की आग में तपकर बौद्ध बन गया। उसके बाद वह मनसा–वाचा–कर्मणा बौद्ध धर्म के शांतिपूर्ण प्रसार में दत्तचित्त हो गया। युद्ध के भेरी घोष का स्थान धम्म घोष ने ले लिया और चंद्रगुप्त द्वारा खड़ी की गई 7 लाख (पैदल + अश्वारोही, हस्तिसेना व रथसेना के लोग) की विशाल और स्थायी सेना निष्क्रिय होकर, अपनी पूर्व क्षमता खो बैठी। वह केवल राजकोष के लिए अनावश्यक भार स्वरूप रह गई या उसकी संख्या में भारी कटौती कर दी गई अशोक ने अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों और दूर–दराज़ के स्थानों पर अनेक शिलालेखों और स्तम्भलेखों द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार अवश्य किया किंतु इन अभिलेखों में वैदिक धर्म या ब्राह्मणों के प्रति किसी तरह के विद्वेष का संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत उसने ब्राह्मणों, श्रमणों और जैन मुनियों सबकी सहायता की। धर्मयात्रा पर निकले ब्राह्मणों, श्रमणों, जैन मुनियों तीनों को स्वर्ण–दान देने का उल्लेख मिलता है। अशोक ने देवानांप्रिय और प्रियदर्शी की उपाधि धारण की, जिनमें किसी धर्म के प्रति विद्वेष का कोई स्वर नहीं। वस्तुतः अशोक के उपदेश सदाचार की नियमावली थे और प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से उत्प्रेरित थे। ठीक उसी तरह जैसे उसके समय में राज्य द्वारा किये गये जनकल्याणकारी कार्य सबके लाभ के लिये उद्दिष्ट थे। उसने राजकीय भोजनालय में मांसाहार का पकाया जाना बंद करा दिया और जीवहत्या पर काफ़ी हद तक रोक लगा दी। पशुओं और मनुष्यों दोनों के लिए चिकित्सालयों की व्यवस्था की। मार्गों पर पेय जल के कुंड बनवाये और यात्रियों के आराम के लिए छायादार पेड़ लगवाये। उसने भवन–निर्माण–कला का असाधारण विकास किया; स्तूप, विहार, मंदिर तथा भव्य राजप्रासाद बनवाए।

धर्म–स्तम्भों के निर्माण में उनकी चिकनी सतह तथा ऊपर निर्मित कलात्मक संरचना अद्भुत है और आज तक कलाप्रेमियों के लिए स्पृहणीय बनी हुई है।

अशोक के कम से कम चार पुत्रों का नाम मिलता है––तीवर (एक अभिलेख में उल्लिखित), महेन्द्र (बहन संघमित्रा के साथ सीलोन भेजा गया धम्म–दूत), कुणाल, और जलौक (राजतरंगिणी में कश्मीर के राजा के रूप में उल्लिखित)। इनमें से जलौक और उसकी पत्नी ईशानदेवी बौद्ध के बजाय पक्के शैव थे। कश्मीर में सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए जलौक ने वहाँ के कुछ ग़ैर–हिंदू विदेशियों ('म्लेच्छों') को निष्कासित कर दिया था।

किंतु इन पुत्रों में से किसी के अशोक का उत्तराधिकारी बनने का कोई साक्ष्य नहीं मिलता। उत्तराधिकार मिला अशोक के दो पौत्रों– दशरथ और सम्प्रति (कुणाल का पुत्र) को। दशरथ को मगध समेत साम्राज्य के पूर्वी हिस्से का और सम्प्रति को पश्चिमी हिस्से का। सम्प्रति ने उज्जैन को अपनी नई राजधानी बनाकर शासन शुरू किया। इस तरह अशोक की मृत्यु के बाद ही कम से कम अस्थाई तौर पर साम्राज्य का विभाजन हो गया। यह भी साक्ष्य मिलता है कि जिस निष्ठा से अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार को वरीयता दी, उसी निष्ठा से सम्प्रति ने जैन धर्म का प्रचार किया। सौराष्ट्र के जैन–मंदिर संकुल में सबसे प्राचीन मंदिर सम्प्रति ने ही बनवाये थे।

दशरथ और सम्प्रति के बाद पुराणों में क्रमशः शालिशूक, देववर्मन और शतंधनुष का नाम आता है जिनमें शालिशूक को गार्गी संहिता (ज्योतिष ग्रंथ) एक दुष्ट प्रकृति का कलह–प्रिय और अधार्मिक राजा बताती है। अंतिम मौर्य राजा बृहद्रथ को छोड़कर अन्य किसी के बारे में इसके अलावा किसी स्रोत से कोई जानकारी नहीं मिलती। बृहद्रथ के बारे में भी सिर्फ़ इतनी कि उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र ने सेना के सामने ही उसका वध कर दिया और स्वयं राजा बन गया (185 ई. पू.)। इतना संकेत अवश्य मिलता है कि अशोक के परवर्ती मौर्य राजाओं के काल में साम्राज्य का लगातार विघटन होता रहा और दक्षिण के राज्य एक–एक कर स्वतंत्र होते गये। इस स्थिति ने पश्चिमोत्तर की बाहरी ताक़तों–यवनो, शकों, कुषाणों, पार्थियन, हूण आदि––को भारत पर आक्रमण के लिए प्रोत्साहित किया और एक अंधकार युग की शुरुआत हुई जो गुप्त काल (320–499) शुरू होने तक चलता रहा।

पुष्यमित्र शुंग ने बृहद्रथ की हत्या क्यों की होगी? बौद्ध स्रोत इसकी बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का शत्रु था, उसने अनेक बौद्ध मठों (संघों एवं बिहारों) को जलवा दिया। ध्यातव्य है कि ये उसी तरह के बौद्ध स्रोत हैं जो बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पूर्व अशोक को (बिना किसी आधार के) 99 भाइयों का हंता 'चंडाशोक' बताते हैं। उन्हें वास्तविक घटित से नहीं, बौद्धधर्म के महिमामंडन से मतलब था। मौर्यवंश के किसी परवर्ती राजा के बारे में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह बौद्ध था भी। इतना तो निश्चित है कि बृहद्रथ ने ही ब्राह्मण पुष्यमित्र को अपना सेनापति नियुक्त किया था। उसकी हत्या इसलिये हुई कि उसने सेना की अपेक्षाओं की अवहेलना कर, पश्चिमोत्तर सीमा पर यवनों के जमावड़े का प्रतिकार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। वह अयोग्य होने के कारण प्रजा में भी अलोकप्रिय था जिसके कारण इस सत्ता–परिवर्तन से कहीं चूँ तक नहीं हुई।

पहला यूनानी आक्रमणकारी देमेत्रिअस था जिसने पंजाब और सिंध को जीत लिया। उसके पुत्र मिनांडर (बौद्ध ग्रंथों का मिलिंद) साकेत (अयोध्या) तक पहुँच गया और उसकी घेराबंदी कर दी, जिसका उल्लेख शुंग–काल (दूसरी शताब्दी ई. पू.) के व्याकरण ग्रंथ, पतंजलि–कृत महाभाष्य में मिलता है। पुष्यमित्र और उसके पुत्र अग्निमित्र दोनों यवन आक्रमण के प्रतिरोध में लगातार युद्धरत रहे। किसी तरह के सामाजिक परिवर्तन का न तो उनके पास समय था, न ज़रूरत। जैसा कि ऊपर आ चुका है, बौद्ध धर्म के साथ–साथ वैदिक धर्म और जैन धर्म भी लगातार फलते–फूलते रहे और उन्हें कुछ मौर्य राजाओं का विशेष संरक्षण भी मिला।

इसमें एक पेच और है। प्राचीन भारत में और उसके बाद भी बौद्ध प्रतिष्ठानों की रुचि बाह्य आक्रमणों को रोकने में कभी नहीं रही। इसके विपरीत उनके द्वारा आक्रमणकारी को प्रश्रय और सहायता देने के प्रमाण मिलते हैं। इसका गम्य कारण है। बौद्ध धर्म एक वैश्विक और विस्तारवादी धर्म है। अधिक से अधिक लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने की उसमें अंतर्निहित प्रवृत्ति है। उपरोक्त आक्रमणकारियों में से यूनानियों और कुषाणों को बौद्ध बनाने में वह सफल भी रहा। इसके विपरीत वैदिक धर्म में धर्म–परिवर्तन से नये लोगों के समावेश की कोई पद्धति नहीं और वह एकमात्र भारतभूमि को अपनी भूमि मानता रहा है। उपरोक्त यूनानी आक्रमणकारी मिनान्डर बौद्ध धर्म स्वीकार कर ही मिलिंद बना था। बौद्ध परंपरा मिलिंद को इतना सम्मान देती है कि बौद्ध दार्शनिक नागसेन के साथ उसके संवाद (मिलिदपन्हो) को बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का वाहक मानती है। पालि भाषा में लिखे इस ग्रंथ को त्रिपिटक के बाद थेरवाद का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

पुष्यमित्र का बौद्ध धर्म को दबाने, संघों–विहारों को जलाने और बौद्धों का उत्पीड़न करने का प्रमेय अद्यतन शोधों से पूर्णतः असत्य सिद्ध हो चुका है। अकाट्य साक्ष्य मिले हैं कि पुष्यमित्र शुंग और उसके उत्तराधिकारी शुंग राजाओं ने मौर्यकाल में निर्मित साँची के प्रमुख स्तूप (स्तूप नं 1) का विस्तार कराया और उसके मुख्यदार को अलंकृत कर उसके कपाट बनवाये। इसके अतिरिक्त शुंग राजाओं ने उसी परिसर में दो नये स्तूप– स्तूप नं 2 और स्तूप नं 3– का निर्माण करवाया।

नवबौद्ध चिंतक और लेखक, संभवतः अतीत के प्रतिशोध में और जातीय विद्वेष के कारण, ब्राह्मण पुष्यमित्र द्वारा बृहद्रथ की हत्या को अपने नैरेटेव के लिए बहुशः इस्तेमाल करते हैं और मनुस्मृति की रचना को पुष्यमित्र शुंग के प्रोत्साहन का परिणाम मानते हैं। यह सर्वथा आधारहीन है। मनुस्मृति के लौकिक लेखक का कोई अता–पता नहीं। इस ग्रंथ की कुल 50 से अधिक पांडुलिपियाँ मिली थीं और सर विलियम जोन्स (1746–1794) द्वारा अनूदित पांडुलिपि के अतिरिक्त अन्य सभी का शीर्षक है 'मानवधर्मशास्त्र'। पहले इसकी रचना 1250–1000 ई. पू. मानी गई। फिर श्रुति साहित्य की भाषा से इसकी भाषा की भिन्नता के आधार पर इसे 500 ई. पू. में रखा गया। अद्यतन शोधों में मनुस्मृति में उपलब्ध स्वर्ण मुद्राओं के वर्णन के आधार पर मुद्राशास्त्रीय अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि इसका प्रणयन–काल दूसरी–तीसरी शताब्दी के पूर्व नहीं हो सकता। इसमें वर्णित स्वर्णमुद्राओं को ढालने का कौशल दूसरी शताब्दी ईसवी के पहले तक विकसित ही नहीं हुआ था। (Patric Olivelle, Manu's Code of Law, Oxford University Press (2005), pp. 24–25)

और पुष्यमित्र शुंग का शासन काल निर्विवाद रूप से 185 ई. पू. से 149 ई. पू. है। इस तरह पुष्यमित्र शुंग और मनुस्मृति के रचनाकाल में कम से कम 250 वर्षों का अंतर है। तब तक शुंग वंश और उसके ठीक परवर्ती कण्व (ब्राह्मण) वंश का भी शासन समाप्त हो चुका था (28 ई. पू.)।

शुद्ध मन और अकादमिक पद्धति से चीज़ों को न देखकर इतर लक्ष्य से उनका अनुशीलन ऐसी ही भ्रांतियों को जन्म देता रहा है, जिसने समाज में विश्रृंखलन उत्पन्न कर उसका अतिशय नुक़सान किया है।

प्रतिशोध भाव के बजाय, अतीत से सीख लेकर अब तो कुछ सुधार होना चाहिए।

.....

(शेष 4 भाग अगले अंक में...)

ꕥ★ꕥ

आलोचक का आत्मावलोकन और सादगीपूर्ण आलोचना

प्रो कमलानंद झा*

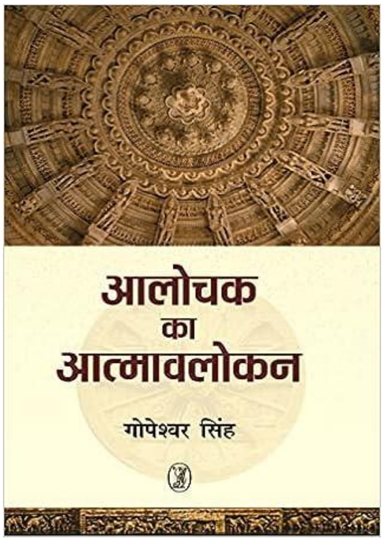

हिंदी के वरिष्ठ और सुलझे आलोचक गोपेश्वर सिंह की नई पुस्तक 'आलोचक का आत्मावलोकन' बगैर किसी तामझाम और लटके–झटके के वाणी प्रकाशन से पिछले वर्ष आ गई। यह पुस्तक लेखक के प्रति मेरी इस धारणा को पुष्ट करती है कि गोपेश्वर सिंह की आलोचना दृष्टि भटकाने, उलझाने और अनावश्यक बौद्धिक आतंक में डुबाने आने वाली नहीं है बल्कि आलोचना की सादगी और सादगीपूर्ण आलोचना का पर्याय है। हिंदी आलोचना में एक प्रवृत्ति रही है– सरल विषयों को भी जटिल, दुर्बोध और ज्ञान के आतंक में लपेटकर प्रस्तुत करना। लेकिन गोपेश्वर सिंह की आलोचना–दृष्टि की विशेषता है कि वे कठिन और दुर्बोध विषय को भी एक सहज और सरल बनाकर प्रस्तुत कर देते हैं। इस दृष्टि से 'आलोचक का आत्मावलोकन' गुरु गंभीर विद्वानों के लिए इतनी मुफीद किताब नहीं है जितनी ऊर्जावान शिक्षकों, जिज्ञासु शोधार्थियों और ज्ञानपिपासु विद्यार्थियों के लिए है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए पाठक बड़ी सहजता से 'आजादी के बाद की हिंदी कविता' के मन–मिजाज को जान–समझ सकते हैं। उस मिजाज की भिन्नता और विशेषताओं के साथ अलग–अलग दौर के कवियों की निजी खूबियों से भी पाठक परिचित हो सकते हैं। दरअसल एक मिजाज को दूसरे की मिजाज से, एक कवि की खूबियों को दूसरे कवि की खूबियों से अलगाना– साधारण आलोचना-कर्म नहीं। गोपेश्वर सिंह इन कवियों की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आधारों की पड़ताल करते हुए उनकी काव्य–गरिमा को परखने का प्रयास करते हैं।

'रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि' के कायल गोपेश्वर सिंह डॉ. शर्मा की आलोचना दृष्टि की अपार संभावनाओं को देखते हुए उनकी आलोचना–दृष्टि की फाँक को भी स्पष्ट रूप से इंगित करते चलते हैं। डॉ. शर्मा की 'नई कविता और अस्तित्ववाद' नामक पुस्तक को उनके असफल आलोचनात्मक लेखन का सुंदर उदाहरण मानते हैं। साथ ही उन्होंने रेणु, जैनेंद्र, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि की रचना और रचनाशीलता की आलोचना में रामविलास शर्मा की दुराग्रही आलोचना को बेबाकी से उद्धृत किया है। 'नलिन विलोचन शर्मा की इतिहास दृष्टि' पर हिंदी में कम आलोचकों की निगाह पड़ी है। गोपेश्वर सिंह ने सावधानीपूर्वक नलिन जी की साहित्येतिहास दृष्टि को आंकने का प्रयास किया है। नलिनजी साहित्येतिहास लेखन में भारतीय इतिहास–बोध का अभाव तथा किवदंतियों और सुभाषित संग्रहों की उपेक्षा को शुभ नहीं मानते। नलिनजी के अनुसार 'साहित्य के इतिहास को गौण लेखकों का इतिहास होना चाहिए किंतु हिंदी साहित्य में इन महान गौणों की उपेक्षा हुई है।' बकौल गोपेश्वर सिंह "बड़े लेखकों के आधार पर साहित्य का इतिहास लिखने वाली दृष्टि से भिन्न यह नयी इतिहास दृष्टि थी। समाज या राष्ट्र का इतिहास राजाओं का इतिहास नहीं बल्कि जनता का इतिहास है, इस कथन से नलिन जी के कथन को मिलाकर देखना चाहिए, तब उनकी इतिहास दृष्टि की सामाजिकता और व्यापकता दिखाई देगी।" (आलोचक का आत्मावलोकन, पृष्ठ 55)

आलोचक गोपेश्वर सिंह को 'रेणु के कथाशिल्प का नैरेटिव' मोहित करता है। वे पूरी जिम्मेदारी के साथ कहते हैं कि "प्रेमचंद के कथा शिल्प से हिंदी कथा साहित्य को पूरी तरह मुक्त कर नया ढंग विकसित करने का ऐतिहासिक काम रेणु ने किया।" दरअसल, सन् 1936 में गोदान प्रकाशित होता है। इसके बाद ग्राम केंद्रित हिंदी उपन्यासों में प्रेमचंदीय ढाँचा और शैली इस कदर हावी हुई कि उसमें घोर एकरसता आती

*** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।**

चली गई। मैला आंचल को आरंभ में आलोचकों ने या तो बहुत हल्के में ले लिया था या उसे 'बड़ी' रचना मानने से इनकार कर दिया था। प्रकाशित होते ही नलिन जी ने मैला आंचल की शक्ति को भाँप लिया था और बगैर किसी लाग लपेट के कहा था 'हिंदी उपन्यास साहित्य में यदि गत्यावरोध था तो इस कृति से वह हट गया।' मैला आंचल को हिंदी उपन्यास का 'टर्निंग प्वाइंट' कहा जा सकता है। इस टर्निंग प्वाइंट को समझते–समझाते हुए गोपेश्वर सिंह लिखते हैं, " रेणु के कथा साहित्य में जो संगीतिकता, लोकलय है वह हिंदी कथा परंपरा में बिल्कुल नई चीज है। इस लोकलय के भीतर से रेणु के चरित्र और कथानक पैदा होते हैं।" नवीन जीवन दृष्टि से संपन्न रेणु के कथा साहित्य को आलोचक ने 'प्रेमचंद के बाद के समय की उपलब्धि माना है।' इसी खंड में आलोचक गोपेश्वर सिंह ने नामवर सिंह, नंदकिशोर नवल और अशोक वाजपेयी की आलोचना–दृष्टि पर भी विचार किया है।

हिंदी आलोचना पर पुस्तक हो और उसमें नामवर सिंह न हों तो 'नोन बिनु सबे अनोना'। 'नामवर सिंह : आलोचक का आत्मावलोकन' शीर्षक से नामवर सिंह की आलोचना की व्यापकता को संक्षिप्त में ही सही किंतु मानीखेज ढंग से पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। संवादधर्मी आलोचक नामवर सिंह की 'वाचिक परंपरा की आलोचना' की गरिमा को आलेख में प्रतिष्ठित किया गया है। घूम–घूम कर भाषण देना नामवर जी को भारतीय बौद्धिक परंपरा से हस्तगत हुई थी। नामवर जी सचेत, सायास और योजनाबद्ध तरीके से इस 'शैक्षिक शैली' को अपनाते हैं। पुस्तक के अनुसार नामवर जी के 'व्याख्यान जनता के बौद्धिक शिक्षण का एक माध्यम है।' वास्तव में जिस देश में अच्छे शिक्षकों का घोर अकाल हो, देश के अच्छे शिक्षक घूम–घूम कर यदि व्याख्यान दें तो विद्यार्थियों और आमजनों में ज्ञान का विस्तार बहुत हद तक संभव है। नामवर जी की इन विशेषताओं को रेखांकित करने के लिए गोपेश्वर सिंह नागार्जुन को याद करते हैं, स्थापित (और स्थावर भी) विश्वविद्यालय की तुलना में यह जंगम विद्यापीठ बहुत जरूरी है। नामवर इस जंगम विद्यापीठ के कुलपति हैं। इस विद्यापीठ का कोई मुख्यालय नहीं होता। यह जगह–जगह जाकर ज्ञान का वितरण सत्र आयोजित करता है।" (पृष्ठ–85)

गोपेश्वर सिंह की माने तो 'नामवर सिंह की पूरी आलोचना–यात्रा नए रास्ते की खोज है।' इस कथन में अतिशयोक्ति की गुंजाइश हो सकती है किंतु उक्त कथन को असत्य नहीं ठहराया जा सकता। नामवर सिंह गुणवत्तापूर्ण आलोचक की पहचान आलोचक विशेष द्वारा की गई रचनाओं के चुनाव को मानते हैं, "आलोचना की असली पहचान यह है कि वह किन रचनाओं को चुनता है और उनसे किन अंशो को रेखांकित करता है। रचना के मर्म का रेखांकन किसी भी आलोचक की आलोचनात्मक समझ का प्रमाण है। (पृष्ठ–88) आजकल लंबी चौड़ी आलोचना लिखी जाती है उसमें मर्म का रेखांकन एक सिरे से गायब रहता है। आलोचक रचनाओं में इतिहास, भूगोल, राजनीति आदि तो ढूंढ लाते हैं किंतु उनमें 'मार्मिक स्थलों की पहचान' दाग की तरह ढूंढते रह जाएंगे। ऐसे आलोचकीय माहौल में गोपेश्वर सिंह, नामवर सिंह की उन प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हैं जिसमें उद्धरण और उदाहरण की पहचान महत्त्वपूर्ण हो जाती है, "किसी कविता की आलोचना पुस्तक है तो उसमें उद्धरणों को देखता हूँ कि उसमें वहीं उद्धरण तो नहीं दिए गए हैं जो दूसरे आलोचकों ने दिए हैं या आलोचक ने एक पंक्ति ऐसी भी उद्धृत की है जो और पुस्तकों में नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास को जांचना हो तो उनमें कवियों की, उदाहरण के रूप में दी हुई रचनाओं को देखिए। उससे समझ में आएगा यह वह आदमी है जो समूचे हिंदी साहित्य से चुनकर उद्धरण रखता है।... युक्ति हो, सिद्धांत हो, मानदंड हो, ज्ञान हो, विद्वता हो, सारी चीजें हैं लेकिन यह मूल वस्तु ग्रहणशीलता, संवेदनशीलता यदि आलोचक में नहीं है तो वह चाहे जितना बड़ा पंडित हो, विद्वान हो, शोधक हो, वह आलोचक नहीं है।" (पृष्ठ–89) गोपेश्वर सिंह ने नामवर जी के आलोचना कर्म की नियति को आंकते हुए सही लिखा है "ठसपन और अतिशय सुसंगतता आलोचक नामवर सिंह की फितरत नहीं थी।" साथ ही नामवर जी की मार्क्सवादी आलोचना पद्धति पर भी लेखक ने विचार किया है।

गोपेश्वर सिंह ने अशोक वाजपेयी को विलक्षण सृजनात्मक आलोचक के रूप में शिनाख्त करते हुए उन पर प्रशंसात्मक आलोचना लिखी है। प्रशंसात्मक इसलिए कि उक्त आलेख की संरचना ऐसी नहीं है, जिस पर वे अशोक वाजपेयी से बहस कर सकें। कदाचित आलोचना की संरचना ऐसी न होती तो गोपेश्वर

सिंह खुलकर सर्जनात्मक आलोचक अशोक वाजपेयी से बहस कर सकते थे। क्योंकि प्रोफेसर सिंह बहस–तलब आलोचक माने जाते हैं।

इस संक्षिप्त आलेख की खूबी यह है कि इसमें अशोक जी की आलोचना–दृष्टि की लगभग सारी विरल विशेषताएं सामने आ गई हैं। यह एक आलेख पढ़कर कोई अशोक वाजपेयी की आलोचना–दृष्टि का कायल हो सकता है। जिन विशेषताओं की ओर आलोचक ने संकेत किया है उनमें कुछ इस प्रकार हैं–

- नामवर सिंह के बाद अपने वक्तव्य और लेखों के लिए विवादों के केंद्र में रहने वाले अशोक पहले व्यक्ति हैं।
- पब्लिक इंटेलेक्चुअल के रूप में हिंदी समाज की ओर से बोलने वाले कवि लेखकों में उनकी आवाज सबसे ऊँची हैं।
- सांप्रदायिकता विरोधी अपने सक्रिय अभियान के कारण सत्ता को असहज करने वाले आज की तारीख में हिंदी के सबसे बड़े कवि–लेखक अशोक हैं।
- कला, संगीत आदि पर लिखने वाले अशोक वाजपेयी के अतिरिक्त दूसरा नाम ढूंढने के लिए देर तक सोचना पड़ेगा।
- नई प्रतिभाओं को पहचानना और मंच देने में अशोक बाजपेयी की भूमिका अग्रणी है। इस अर्थ में वे बड़े साहित्यिक नेता के रूप में दिखाई पड़ते हैं।
- समकालीन रचनाशीलता से संवाद करने वाले बड़े आलोचक।
- कविता के साथ सार्थक आलोचना की चिंता करने वाले कवि– आलोचक अशोक बाजपेयी हैं।
- आलोचना में बनाम के खेल को नापसंद करने वाले आलोचक।
- अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध को नई कविता का बृहत्रयी के रूप में प्रतिष्ठित और उनकी भिन्नता और विशिष्टता को बतानेवाले आलोचक।
- साहित्य को अनंत (दीर्घकालीन राजनीति) की राजनीति मानने वाले आलोचक।

गोपेश्वर सिंह ने सर्जनात्मक आलोचक अशोक वाजपेयी के संदर्भ में पसरे दुष्प्रचार और भ्रमों के निवारण का भी प्रयास किया है। सामान्यतया अशोक वाजपेयी को 'सामाजिक यथार्थवाद' का विरोधी माना जाता रहा है। इसमें दो राय नहीं कि सामाजिक यथार्थ से जुड़े साहित्य की तरफदारी उन्होंने कभी नहीं की। गोपेश्वर सिंह के शब्दों में वे 'वे रचना को सामाजिक यथार्थ का उपजीव्य बनाए जाने का सतत विरोध करते रहे।' किंतु इसके विपरीत प्रो. सिंह ने रेखांकित किया है कि उनकी आलोचना दृष्टि समाज निरपेक्षता को भी तरजीह नहीं देती है। इस संदर्भ में दृष्टांत स्वरूप अशोक वाजपेयी को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि "हमारी समूची संस्कृति के स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य है कि आलोचना रचना में सामाजिक यथार्थ को लेकर व्याप्त सरलीकरणों, रूमानियत और राजनीतिक भोलेपन और नैतिक संवेदनहीनता के विरुद्ध लगातार संघर्ष करे।" (पृष्ठ–103)

अशोक वाजपेयी पर दूसरा आरोप यह लगता रहा है कि वे कविता में विचार को महत्त्व नहीं देते। अशोक वाजपेयी की आलोचना के संदर्भ में इसे प्रो. सिंह आधी–अधूरी समझ मानते हैं। कहने का आशय यह है कि अशोक वाजपेयी की आलोचना को सावधानीपूर्वक पढ़ने पर यह आरोप बहुत सही प्रतीत नहीं होता। अशोक वाजपेयी यह जरूर मानते हैं कि किसी महान विचार से महान कविता पैदा नहीं हो सकती। गोपेश्वर जी के अनुसार 'विचार से यहाँ उनका तात्पर्य 'विचार–प्रणाली' से है। अशोक वाजपेयी कविता के लिए विचार को कितना महत्त्वपूर्ण मानते हैं, इसे स्पष्ट करने के लिए उनके विचारों को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं कि "बिना विचारों के, बिना किन्हीं विचारों में जड़ जमाये कविता निरी ऐंद्रिक फुरफुरी या तुच्छ खिलवाड़–भर रह सकती है। विचारहीन कविता कभी भी मनुष्य की हालत की कोई सार्थक पहचान या कोई समझ उत्तेजित नहीं कर सकती।" (पृष्ठ–105)

गोपेश्वर सिंह ने अशोक वाजपेयी को दायित्वपूर्ण आलोचक माना है और आलोचना का दायित्व है कि वह विरोधी विचारों के रचनाकारों की गंभीर सुधि ले। आलोचक के अनुसार "अपने विरोधी के गुणों की प्रशंसा का संस्कार, जो एक दुर्लभ मानवीय गुण है अशोक वाजपेयी की आलोचना और आचरण में है।" उदाहरण स्वरूप नामवर सिंह के प्रति अशोक वाजपेयी की दृष्टि को रखा गया है। अशोक जी ने नामवर

सिंह को 'अचूक अवसरवादी' आलोचक कहते हुए भी उनकी आलोचना–दृष्टि की भूरि–भूरि तारीफ करते हुए लिखा है कि, "अगर किसी आलोचक ने हिंदी में संवाद को आलोचना का अध्यात्म बनाया है तो नामवर सिंह ने। कृति की विशिष्टता, अद्वितीयता और वस्तुवत्ता खोजने–पहचानने के जो औजार नये रूपवादियों ने विकसित किये, उनका सतर्क और सूक्ष्म इस्तेमाल करते हुए साहित्य को उसकी ऐतिहासिकता और सामाजिक पृष्ठभूमि में स्थित करने और आलोचनात्मक निर्णय को आलोचक की नैतिक और सामाजिक दृष्टि से जोड़कर देखने का काम नामवर सिंह ने किया है और हिन्दी आलोचना को सार्थक परिपक्वता दी है।" (पृष्ठ–107)

आलेख में दो स्थानों पर असहमति भी दर्ज की गई है। एक तो पेशेवर आलोचना के लिए अशोक जी का 'धंधई आलोचना' जैसे शब्दों को गढ़ना। दरअसल वे फुल टाइम आलोचक जो सिर्फ आलोचना लिखते हैं, जिनका धंधा ही आलोचना लिखना होता है उस आलोचना को अशोक जी 'धंधई आलोचना' की संज्ञा देते हैं। दूसरी असहमति है "धंधई और अकादमिक आलोचना ज्यादातर साहसहीन आलोचना रही है। जबकि सृजनात्मक आलोचना में 'कल्पनाशील साहस' है। उसमें 'आंतरिक और वैचारिक खुलापन' है। इस कारण वह 'विश्वसनीय और प्रामाणिक' लगती है।" (पृष्ठ–109) नामवर सिंह के बाद हिंदी आलोचना के प्रति अशोक जी की इस राय से गोपेश्वर सिंह सहमत नहीं हैं।

दूसरे खंड में आलोचक गोपेश्वर सिंह ने कमलानंद झा की पुस्तक 'तुलसी का काव्य–विवेक और मर्यादाबोध' की निर्मम आलोचना की है। 'रामकथा का बहुवचनात्मक पाठ' शीर्षक से उक्त पुस्तक की समीक्षा में उन्होंने इसे एक जरूरी और दिलचस्प किताब मानते हुए कहा है कि "यह आलोचना की एक दिलचस्प किताब है, सचमुच की आलोचना के अर्थ में। दिलचस्प इस अर्थ में कि कमलानंद ने आलोचना में रचनात्मकता की गुंजाइश खोजी है।" (पृष्ठ 127) किंतु लेखक का रामचरितमानस के बरक्स कवितावली के महत्व का रेखांकन गोपेश्वर सिंह को पसंद नहीं, "यहां प्रश्न है कि तुलसीदास यदि महाकवि हैं तो क्या वे कवितावली और हनुमानबाहुक के कारण हैं? क्या यह तुलसीदास का सही–सही मूल्यांकन है? मुझे आलोचना की ऐसी समझ पर संदेह है। (पृष्ठ 130)

क्रिस्टोफ जाफ़रालो लिखित 'भीमराव अंबेडकर : एक जीवनी' के बहाने अंबेडकर की जीवन–यात्रा पर इस खंड में अत्यंत वस्तुनिष्ठ तरीके से विचार किया गया है। इतने व्यवस्थित और संतुलित रूप में कि अंबेडकर पर पढ़ने को कम मिल पाता है। अंबेडकर पर लिखते हुए एकपक्षीय होने का खतरा बना रहता है। लेखक गोपेश्वर सिंह ने खतरे को बतौर चुनौती लिया है। पूर्व राष्ट्रीय आंदोलन से दूरी बनाने के कारण की ओर संकेत करते हुए पुस्तक में कहा गया है कि जहाँ राष्ट्रीय आंदोलनकारी राजनीतिक मुक्ति के लिए लड़ रहे थे वहीं अंबेडकर सामाजिक मुक्ति के लिए। सच भी है कि राजनीतिक गुलामी तो महज 200 वर्षों की थी किंतु सामाजिक गुलामी हजारों वर्षों की। इस दृष्टि से अंबेडकर की लड़ाई अधिक कठिन थी। इतनी कठिन कि यह लड़ाई आज भी जारी है। गांधी बनाम अंबेडकर, और मार्क्सवाद बनाम अंबेडकर की चर्चा भी की गई है। निष्कर्ष स्वरूप गोपेश्वर सिंह ने गांधीवादी नेता चंद्रशेखर धर्माधिकारी का एक दुर्लभ और महत्वपूर्ण उद्धरण पेश किया है– "...हरिजन उद्धार का कार्य डॉ. आंबेडकर जी ने किया और सवर्णों के मन और दिमाग से अस्पृश्यता हटाने का कार्यक्रम गाँधी जी ने चलाया। ये दोनों आंदोलन परस्पर पूरक थे।"

इस खंड में कुछ बेहतरीन संस्मरण भी हैं। प्रो. सिंह ने अपने गुरु और सहकर्मी नंदकिशोर नवल और अनन्य मित्र कवि पंकज सिंह पर अत्यंत रागात्मकता के साथ लिखा है। भगवत रावत की कविता और हिंदी में शोध की दशा और दिशा पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। कुछ टिप्पणीनुमा दो–ढाई पृष्ठों के अखबारी समीक्षा को पुस्तक में संकलित न भी किया जाता तो किताब की गरिमा कुछ कम नहीं हो जाती। पुस्तक में आलोचकों का आत्मावलोकन चाहे जितना हो पाया हो किंतु, हिन्दी आलोचना परंपरा में यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण मानी जाएगी, ऐसी आशा की जा सकती है।''

ഇ★ഗ്ദ

लंबी कविताओं की पृष्ठभूमि में छायावादी-वैशिष्ट्य की पड़ताल

डॉ. क्रांति बोध*

समकालीन यथार्थ के दबाव और राजनैतिक– सामाजिक गति विज्ञान से गहरी संपृक्ति के कारण कवि अभिव्यक्ति के तनाव को सर्जनात्मक रूप देने के लिए नए साहित्यिक रूपों की तलाश करता है। भारत में आधुनिकता के आगमन से ही सामंती सत्ता और शोषण के प्रति संघर्ष का भाव पैदा हुआ जिसमें कवि के अनुभूत संसार के घात प्रतिघातों ने व्यक्ति के भीतर की निराशा कुंठा और संघर्ष चेतना ने आशा और संघर्ष का आख्यान रचा। चूंकि आधुनिक काल में जटिल संवेदनाओं और उनझी हुई जीवन स्थितियों के लिए परंपरागत काव्यरूपों की ओर दृष्टि की तो वे अपर्याप्त मालूम हुए। क्योंकि महाकाव्य जैसी प्रबंधात्मक योजना और कथ्य शैली श्लाघ्य नहीं थी तो मुक्तक कविता में विचार अंट नहीं पा रहे थे। इसीलिए आधुनिक काल में महाकाव्यात्मक वस्तु के साथ समकालीन सत्य को उद्घाटित करने के लिए लंबी कविताओं का शिल्प बनाया गया। इसीलिए लंबी कविता युग की अनिवार्यता के साथ कवि कर्म की विवशता से भी जुडी हुई है।

हम कह सकते हैं कि आधुनिक जीवन की जटिल वास्तविकता ने परम्परागत क्लासिकल काव्यरूपों की उपयोगिता और सार्थकता के सामने प्रश्नचिन्ह लगाया है। प्रबन्धात्मक ढांचा इसमें अपर्याप्त सिद्ध हुआ और कवियों को लगा कि भिन्न कथ्य और संवेदना के लिए नए फार्म की जरूरत है। लम्बी कविता की फार्म इसी जरूरत के तौर पर उतरकर सामने आई। आधुनिक जीवन की उलझी हुई परिस्थितियों और जटिल संवेदनाओं के संदर्भ में परम्परागत काव्य– माध्यम से पुराने रूपविधान में अभिव्यक्ति करना संभव न रहा। यह एक दिलचस्प उदाहरण है कि वास्तविकता के अनुरूप अपने सांचों में रद्दोबदल न कर सकने के कारण तथा अपने रूपतामक कलेवर में बंदी हो जाने से कोई काव्यरूप कैसे अपनी प्रासंगिकता खोकर बाँझ हो जाता है। अभिव्यक्ति की इस समस्या से जूझने के दौरान ही ऐसे काव्य–माध्यम की तलाश शुरू हुई जिसमें नए जीवन विधान की संगति हो और जो परम्परागत रूप विधान की रूढ़ियों से मुक्त भी हो, जिसमें नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित हो। कहना ही होगा कि लम्बी कविता इन सभी अपेक्षाओं पर खरी उतरती है। लम्बी कविता ने उन सभी विविधताओं को अपने में समेटा है जो आज के युग की माँग हैं।

मध्य वर्ग की बहुमुखी और नयी समस्याओं की अभिव्यक्ति के लिए एक ओर जहाँ उपन्यास ने महाकाव्यात्मक ढांचे को तोड़ने की पहल की तो वहीं साहित्य में लघु मानव के केंद्रीय भूमि के आने से अभिजात्य आधिपत्य टूटा। इसीलिए लंबी कविता का रूप विधान वस्तु जगत की असंगतियों अमानवीयताओं तथा निरर्थकता से जूझने की विवशता से बनता है। इन्हीं अर्थों में लंबी कविता आधुनिक अर्थात पूंजीवादी समाज के अन्तर्विरोधों की कविता है। हिंदी की लंबी कविताओं के बारे में कहें तो इसका उद्भव आधुनिक युग में नायकत्व की अवधारणा की समाप्ति और आधुनिकता की अवधारणा के साथ ही प्रबंध काव्यों के गद्यात्मक विकल्प प्रचलित होते गए और वर्तमान के बिंदु पर खड़े होकर जीवन जगत के सघन अंधेरे में यातना कथाओं से मुक्ति प्रसंग की पटकथा इनकी विषय–वस्तु बने।

आज लम्बी कविता एक अनुभूति, क्षणिक भावावेग, एक संघटना खण्ड को उसके समस्त सन्दर्भों और सम्पूर्ण परिवेश से जोड़ने की प्रक्रिया में एक व्यापक और जटिल सन्दर्भों का प्रस्तुतीकरण है। विभिन्न आयामों से गुजरती हुई यह व्यक्ति और व्यक्ति के बीच का, व्यक्ति और समाज के बीच का, संस्कृति, भाषा और राजनीतिक शक्तियों के बीच का तनाव है। तनाव की इस विविध धर्मिता का नाम है लम्बी कविता।

चूँकि प्रत्येक साहित्यिक विधा अपनी नवता के कारण सर्वदा आलोचना या सौंदर्यशास्त्रीय प्रतिमानों की पूर्वगामी होती है इसीलिए लंबी कविता की सैद्धांतिकी का निर्माण अभी भी पूर्ण नहीं है। इसके मानक लक्षण, रूप, सैद्धांतिक नाम आदि अभी भी सुनिर्धारित नहीं हुए हैं। दरअसल छायावादी काल में प्रसाद की प्रलय की

***एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एम. एम. एच. कॉलेज, गाज़ियाबाद।**

छाया, पंत की परिवर्तन निराला की राम की शक्ति पूजा, सरोज स्मृति, तुलसीदास जैसी लंबी कविताओं के बाद लंबे समय तक यह परंपरा शांत रही। फिर नरेश मेहता की समय देवता', धर्मवीर भारती की प्रमथ्यु गाथा और मुक्तिबोध की अंधेरे में' सामने आयीं। मुक्तिबोध के काव्यशिल्प और वस्तु की जटिलता और तनाव ने इस विधा को नए आयाम दिए। मुक्तिबोध की रचना एवं रचना प्रक्रिया को समझने के क्रम में हिंदी में लंबी कविताओं पर बातचीत प्रारंभ हुई।

इसके पहले तक लंबी कविताएं महाकाव्यात्मक आख्यानक और खंडकाव्य के मुक्तक संस्करण की बहस के बीच अटकी हुई थी। राम की शक्तिपूजा और 'परिवर्तन' दोनों के बारे में यह निर्धारित करना कि इसे किस विधा के ढांचे में रखा जाए, प्रश्नगत रहा। लंबी कविता प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्यरूपों के बीच अवस्थित है और यह दोनों दाँचों को तोड़कर नया काव्यरूप लेती है। वस्तु या कथ्य के अनुरूप जब यह प्रबंध के ढांचे को तोड़ती हुई आती है तब प्रबंध धर्मी होती है। और जब मुक्तक के ढाँचे को तोड़ती है तो मुक्तकधर्मी होती है। यही हाल राम की शक्तिपूजा या परिवर्तन कविता का भी है। जबकि यदि इस नाम की चर्चा की जाए तो यह इसके आकार के अनुरूप इसे छोटी कविताओं की अपेक्षा बड़ा होने के कारण लंबी कविता कहा गया। दूधनाथ सिंह कहते हैं कि "लंबी कविता वह कविता है, जिसमें विकास का प्रवाह एक सार्थक सोची हुई परिणति है, जिसमें किसी झीने कथात्मक आधार पर अपने विचार चिंतन को नए अर्थों से प्रकाशित करने की रचनात्मक योजना कवि ने क्रियान्वित और प्रतिफलित की हो। यह पुरानी प्रबंधात्मकता से मुक्ति की पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी में किसी भी पौराणिक ऐतिहासिक या मिथिकल संदर्भ का पूर्णतया बहिष्कार हुआ। कथ्य के इस आख्यानगत आधार के बिना ही कवि ने अपने चिंतन को ही रचनात्मक स्तर पर एक कथानक का आधार दिया, बल्कि चिंतन को ही कथा का रचनात्मक रूप दिया।"[1] शिव प्रसाद सिंह अपने लेख 'लंबी कविता के कर्वेचर में आधुनिकता की मुश्किल से मुश्किल अभिव्यक्ति संभव है' में यह जरूरी मानते है कि "लंबी कविता हमेशा ही कोई न कोई बड़ी बात कहने के लिए लिखी जानी चाहिए।बड़ी बात से मेरा मतलब है कि समाज में नाना खंड चित्रों की सतह पर उठती हुई अनगिनत लहरों में विद्यमान वह कौन सा सूत्र है जिसके कारण ऐसी हलचलें दिखाई पड़ती हैं। वह बड़ी बात या जिसे प्राचीन लोग महाकाव्य कहा करते थे, जब तक कवि के मन को इतना तनावपूर्ण नहीं बना देता कि वह उसे व्यक्त करने के लिए विवश ही हो जाए, तब तक लंबी कविता नहीं बनती। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए इसकी रचनात्मक बेचैनी और अनिवार्यता को मुक्तिबोध यूं समझाते हैं कि यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है, वह भी ऐसा ही गतिशील और उसके तत्व भी परस्पर गुंफित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कविताएं नहीं लिख पाता, जो छोटी होती हैं वह वस्तुतः छोटी न होकर अधूरी होती हैं।"[2]

लंबी कविता और छोटी कविता में सिर्फ आकार का ही अंतर नहीं है उसकी आंतरिक विशेषताएं और उसके प्रभाव भी अलग– अलग हैं। इसमें गतिशील यथार्थ, कवि का जीवन संघर्ष, दृष्टि संरचना और भावबोध का विशेष अंतर होता है। अन्विति, नाटकीयता इसके कलेवर को बचाए बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं। कथात्मकता इसे नए संदर्भों से जोड़ती है तो बिंबों और प्रतीकों की बहुलता इसे नयी अर्थवत्ता प्रदान करती है। इसीलिए रामदरश मिश्र कहते है कि "छोटी कविता किसी एक खंड की संश्लिष्टता, आंतरिक संगति विसंगति की चेतना से गुजरने के कारण उसमें शिल्प का भी अपेक्षाकृत एक समरूप होता है। भाषा बिंब और छंद में एक लय दिखाई पड़ती है, मूड भी प्रायः एक ही रहता है, लंबी कविता अनेक खंडों की यात्रा है, ये अनेक खंड अपने स्वभाव में एक दूसरे से विभक्त होकर भी संदर्भ से जुड़े हुए हैं।"[3] जिसे राम दरश मिश्र जी अनेक खडों की यात्रा कहते हैं यही वे विविध जीवन अनुभव एवं संवेदनात्मक दबाव हैं जो इस दीन–दुनियां की एक मुकम्मल तस्वीर कवि के मानस पटल पर बनाते हैं और कवि उन्हें अपनी आदर्श दुनियाँ या यूटोपिया को मिलाकर देखता है। जितना अंतर इन दोनों में मिलता है कवि उतना तनाव कविता में रच पाता है। इसीलिए लंबी कविताएं आई की आमतौर पर यातना कथाओं की तरह चलती हैं। क्योंकि उनमें पूरी तरह कवि अपनी दृष्टि के अनुरूप सभ्यता समीक्षा भी करता चलता है। इसीलिए लंबी कविता कवि के जटिल आत्मसंघर्ष का दस्तावेज होती हैं। सत्यप्रकाश मिश्र इस बारे में लिखते हैं कि "वस्तु और सत्य जब किसी रचना में पर्याप्त लगने लगते हैं, दोनों में संयुक्त घोल की सी स्थिति हो जाती है तो इस प्रकार लंबी कविता का निर्माण होता है, और कविता की लंबाई बहुत कुछ इसी घुलनशीलता और पूर्णता के अनुपात में होती है।"[4]

इस तरह अगर एक मोटे तौर पर देखा जाए तो लंबी कविता में निम्नलिखित विशेषताएं निर्धारित की जा सकती हैं–

- समकालीन यथार्थ बोध
- सर्जनात्मक तनाव एवं द्वंद्व
- विचार संपृक्तता
- संदर्भ एवं प्रसंगों की बहुलता
- क्लासिकल रचना विधान से मुक्ति
- नाटकीयता
- इतिहास बोध एवं सभ्यता समीक्षा
- बिंब एवं प्रतीक विधान की बहुरूपता
- अन्विति

इनमें अन्विति जहाँ विविध संदर्भों और प्रसंगों की सटीक प्रस्तुति और बिंबों और प्रतीकों की बहुलता को औचित्य के साथ संभाले रहती है वहीं नाटकीयता इसकी संप्रेषणीयता को मजबूत बनाती है। इसीलिए निराला कविता में बातचीत को अत्यधिक महत्व देते थे। कविता को वे बातचीत के समीप रखना चाहते थे । शायद मुक्तछंद इसी प्रेरणा का परिणाम था। तो नाटकीयता इसे वार्तालाप शैली के करीब ले आती है। इसी से पाठक लंबी कविता में ऊब का शिकार नहीं होता। इसीलिए नामवर सिंह नाटकीयता को लंबी कविता हेतु महत्वपूर्ण मानते हैं। वे कहते हैं "छोटी कविता और लंबा कविता में दो काव्य सिद्धातों का अंतर है। छोटी कविता मूलतः प्रगीत है जबकि लंबी कविता नाटकीय कविता है।"[5] नाटकीय विधान के अभाव में युगीन यथार्थ, दक्षता, द्वैधता और अंतर्विरोधपूर्ण स्थिति के विविध पहलुओं को उजागर कर पाना, मुश्किल होगा। यह नाटकीयता ही पाठक को एकरसता एवं अतिशय विचारात्मकता की मुश्किल से बचाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न मनोदशाओं और संदर्भों से जुड़े दीर्घकालीन तनाव से स्पंदित कविता जिसमें नाटकीयता का तत्व उपस्थित हो और आकार में बड़ी हो लंबी कविता कही जा सकती है।

लंबी कविताओं के जन्म का मामला मुख्य रूप से मुक्त छंद और वैचारिक तनाव के जन्म से ही जुड़ा हुआ है। इसीलिए इसकी शुरुआत छायावाद से ही होती है। मुक्ति का जो आख्यान छायावादी काव्य चेतना के अन्तस में है वह मनुष्य की मुक्ति से लेकर कविता की मुक्ति तक की बात करता है। और यह मुक्ति हर आयाम में प्रसरित है। क्लासिक रचना विधान की जकड़बंदी से मुक्ति की आकांक्षा के साथ अपने विचारों की अतिशयता एवं भव्यता को कलात्मक रूप देने के विचार से लंबी कविताओं का प्रणयन हुआ। यहां प्रबंध की योजना एवं मुक्तक का प्रवाह दोनों साधे गए। जिसका बड़ा लाभ आगे आने वाली उन काव्य पीढ़ियों को मिला जिनके भीतर महाकाव्यात्मक वेदना पल रही थी। इसीलिए लंबी कविलाओं पर बातचीत के दरम्यान लंबी कविताओं के छायावाद युगीन रचना विधान पर बात करना बेहद जरूरी है।

छायावादी कवियों में भी पंत जी और प्रसाद जी क्रमशः 'परिवर्तन' और 'प्रलय की छाया' कविता के साथ नई जमीन को तोड़ते हैं। निराला अपने जीवन और काव्य संघर्षों में इतने घुले हैं कि उनके यहां लंबी कविताओं की सर्वाधिक संभावना बनती है और अपनी सर्जनात्मक ऊर्जा को मिलाकर वे 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' और 'कुकुरमुत्ता' जैसी कविताओं की रचना करते हैं। महाकाव्यात्मक आख्यान का जैसा कसाव प्रसाद ने कामायनी में साध लिया था वैसा रचनात्मक धैर्य निराला और पंत कभी नहीं जुटा सके जबकि विद्रोह और मुक्ति की जैसी चेतना निराला में है वह अन्यत्र अलभ्य है। पंत बिंब विधान और भाषिक लालित्य में छायावाद काल में बेजोड़ हैं। यही इनकी लंबी कविताओं में भी दिखाई देता है।

'परिवर्तन' कविता जीवन की उस वास्तविकता का प्रगीत है जो निष्ठुर है, जिसका ताण्डव नर्तन विश्व का करूण विवर्तन है। चित्रमयी लाक्षणिक भाषा तथा रूपकों की गीतिमयता में जीवन जगत और जीव के आध्यात्मिक स्वरूप की वास्तविकता अभिव्यक्ति पाती है–

"अचिर में चिर का अन्वेषण
विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन।
''''''''''''''''''''''''

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरू,
अरे, जग है जग का कंकाल
वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार
शांति सुख है उस पार।"

परिवर्तन—सी यथार्थ, वैचित्र्यपूर्ण, ओजमयी कविता न केवल जीवन की कठोरतम और कटुतम अनुभवों की व्यापक दृष्टि की साक्षी है, प्रत्युत वह प्रबुद्ध मानस की सम्यक संतुलित मनःस्थिति का भी बिंब है।

"एक ही लोल लहर की छोर
उभय सुख—दुख, निशि भोर,
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार
सृजन ही है, संहार"

भाषा और भाव का ऐक्य ही 'परिवर्तन' का सौन्दर्य है। छन्दों का परिवर्तन 'परिवर्तन' के भावों को स्वाभाविक प्रवाह देता है। 'राम की शक्ति पूजा' की तरह 'परिवर्तन' की विशेषता मात्र वाणी का ओज और उसका उन्मुक्त विलास ही नहीं है बल्कि विश्व वेदना की वह करुणतम अनुभूति है, जिसने आदि कवि वाल्मीकि को भी मुखर कर दिया था। 'परिवर्तन' अपने आप में परिपूर्ण है इसमें कवि ने एक गहन विषय को चिंतन और भाव, ज्ञान और विज्ञान के आवरण में जीवंत कर दिया है। यह पंत की दुखानुभूति की वह वाणी है जो मूक नहीं रह पाती। कवि की आंतरिक विश्वलता ही इसके स्वाभाविक प्रस्फुटन का स्रोत है। कवि ने विश्वजनीन विषय को अपनी सशक्त कला से प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय बना दिया है। परिवर्तन में जो सार्वभौम जीवंत तत्त्व मिलता है वह निःसंदेह अनुभूतिजनक है किन्तु वह निजी या व्यक्तिगत जीवन में घटित अनुभूति नहीं है, यह वह प्रेरणा गर्भित अनुभूति है जिसके बिना श्रेष्ठ सृजन असम्भव है।

प्रसाद की लम्बी कविता 'प्रलय की छाया' भाव और कला दोनों दृष्टियों से उत्तम रचना है। इसमें गुजरात की रानी कमलावती के जीवन का चित्र और अन्तःकरण का विश्लेषण किया गया है। यहाँ प्रसाद जी ने इतिहास की मूल घटनाओं में परिवर्तन न करते हुए रानी कमला के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व को काफी तटस्थता से अंकित किया है। 'प्रलय की छाया' में लय का विधान पूरी कविता के नए—नए अर्थों को झलका देने में समर्थ है। डा० नित्यानंद तिवारी ने लय विधान के इस विशिष्ट स्वरूप की ओर जिससे यह कविता बड़ी और लम्बी हो गई है संकेत किया है— कई—कई लय की लंबी सांस इस कविता की अनुभूति को पर्त—दर—पर्त उस क्षमता से समृद्ध करने वाली है जो अर्थ को अधिक ऊर्जा सम्पन्न और संश्लिष्ट बनाती है। विरोधी और विषम अनुभवों की तनावपूर्ण ताकतों को एक साथ बाँधकर उनकी परस्पर टकराहट से काव्यार्थ को उभार और संभाल ले जाने का बहुत कुछ दायित्व इस कविता के लय विधान का है। पाठ प्रक्रिया के प्रति सचेत पाठक इस कविता के पहले सम्पर्क में ही (जो लय के साथ ही होता है) अनुभव कर लेता है कि इसमें देवसेना की 'चढ़कर मेरे जीवन रथ पर/प्रलय चल रहा अपने पथ पर', वाली ही पीड़ा छटपटा रही है उसी पीड़ा, दुर्भाग्य और विडम्बना को इस कविता की लय रचती है। वह दो अलग भाव स्थितियों को एक साथ जोड़ती है, तानती है और खास बलाघात एवं तारत्व के आधार पर भाषा का भी गठन करती है।"[6] निराला की लम्बी कविता 'राम की शक्ति पूजा' में इस वैशिष्ट्य को मिथकीय संयोजन की उपस्थिति में उभर रही परस्पर गुंफित भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में देखा जा सकता है पुराकथा का सर्जनात्मक विधान इस कविता में खंडकाव्य या महाकाव्य के रूप में न होकर, लम्बी कविता के रूप में है भावनाओं और मनोदशाओं के सानिध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गई है। चरित्र और परिस्थिति के घात—प्रतिघात, राम के संशय और उद्विग्नता को उभारते हैं। राम की अंतरचेतना से जुड़े प्रसंग (सीता का स्मरण) स्थिति को और सांद्र कर देते हैं। कविता की आंतरिक सूत्रबद्धता बनाए रखने में छंद की गति और लय का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

निराला की लम्बी कविताओं के समकक्ष अन्य छायावादी लम्बी कविताओं में दो बातें अपेक्षित, साम्य रूप में जान पड़ती हैं। पहली बात यह कि इन लम्बी कविताओं के विचार और संवेग, विवरण और बिम्ब का संतुलन बना हुआ है। ये छायावादी लम्बी कविताएँ बिम्बों, विचारों और विवरणों को प्रस्तुत ही नहीं करतीं बल्कि उन्हें परस्पर सम्बद्ध भी करती हैं, उनमें संतुलन साधती हैं और उसे एक साथ अनेक अर्थो आशयों से समृद्ध करती हैं। यही वजह है कि लम्बी कविता केवल बिम्बधर्मी नहीं होती, न ही केवल भावधर्मी लम्बी कविता में भाव, विचार, बिम्ब और विवरण एक दूसरे से अलग—थलग नहीं होते उनमें गहरा अन्तर्सम्बन्ध रहता है, जो हमें छायावादी लम्बी कविताओं में देखने को मिलता है। हाँ, यह जरूर है कि कभी बिम्ब कविता की धुरी बनकर भावों, विचारों और विवरणों को संयोजित करता है तो कभी विचार कविता के केन्द्र को संचालित करता हुआ भावों, बिम्बों और विवरणों को संगति प्रदान करता है। दूसरी बात यह है कि छायावादी लम्बी कविता की संरचना

में तनाव, नाटकीयता और द्वन्द्वात्मकता का विशेष महत्त्व है। परत–दर–परत लिपटे हुए यथार्थ को कार्य–व्यापारों के नाटकीय और द्वन्द्वात्मक विधान द्वारा खोलने की प्रवृत्ति छायावादी लम्बी कविताओं में देखी जा सकती है। हम देखते हैं कि 'परिवर्तन', 'प्रलय की छाया', 'कुकुरमुत्ता', 'राम की शक्ति पूजा' लम्बी कविताओं में सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने की विशेष प्रवृत्ति काफी प्रबल है। केन्द्रीय स्थितियों, समस्याओं और पात्रों को इन कविताओं में इस ढंग से 'अभिव्यक्त किया गया है। कि उनके माध्यम से मानवीय और सामाजिक सरोकार के बिन्दु उभरकर सामने आये हैं। यद्यपि 'राम की शक्ति पूजा' और प्रसाद की 'प्रलय की छाया' आख्यान प्रधान लम्बी कविताएँ हैं, फिर भी 'परिवर्तन' एवं अन्य लम्बी कविताओं में मानवीय और सामाजिक सरोकार के बिन्दुओं को केन्द्र में रखकर काव्य–सृजन किया गया है।

छायावादी लम्बी कविताओं में वैषम्य की दृष्टि से हम पाते हैं कि पंत जी की 'परिवर्तन' लम्बी कविता में दो बातें स्पष्टतः स्वीकार की जा सकती हैं, एक, आत्मगत संवेदना–प्रेम, विरह, अवसाद का चित्रण करने वाला, दूसरा परिवर्तन के विराट बिंब को प्रस्तुत करने वाला। 'परिवर्तन' कविता मे आत्ममत संदर्भ वृहत्तर संदर्भ की और संकेत तो करता है, पर उस संदर्भ में घुलता और रूपांतरित होता नहीं दिखता। आत्मगत अनुभूति परिवर्तन के विराट बिम्ब और उसकी सक्रिय सत्ता से बेतना के धरातल पर बेशक जुड़ी हुई हो, उसकी संवेदनात्मक और वैचारिक भूमिका में साझीदार नहीं है। अनुभूति और चिन्तन के इस अंतराल से कविता में शिथिलता आई है जिसे इस कविता के रचना विधान में स्पष्टतः देखा जा सकता है। लगता है जैसे यह एक कविता न होकर अलग–अलग कविताओं का समूह है खास तौर से 'परिवर्तन' के विराट बिम्ब का चित्रण करने वाला अंश जो स्वतन्त्र कविताओं का सा आभास देता है।

बिंब विधान की दृष्टि से भी 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' के बिंब 'परिवर्तन' 'और 'प्रलय की छाया' में दिए गए बिम्बों की तुलना में अधिक व्यापक और गहराई लिए हुए हैं। प्रसाद जी ने 'प्रलय की छाया' में लम्बी कविता का स्वरूप देने का प्रयास किया है परन्तु 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' में यह पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत अन्य छायावादी कविताओं के, व्यापक धरातल और विस्तृत फलक को लिए हुए है। 'प्रलय की छाया', 'परिवर्तन' और 'राम की शक्ति पूजा' उस दौर की कविताएँ हैं जब प्रबन्धात्मक रचना विधान को विशेष सम्मान प्राप्त था और उसके महत्त्व तथा प्रासंगिकता के बारे में किसी को सन्देह नहीं था ये तीनों लम्बी कविताएँ उन कवियों द्वारा रचित है जो छायावादी कविता के शीर्षस्थ कवि हैं। इन कविताओं की रचना के दौरान ये कवि, निश्चय ही अपने रचनात्मक अभ्यासों और रचनाशील मानसिकता से जूझे होंगे और उन्हें अपने अभ्यस्त प्रगीतात्मक रूपविधान की सीमाओं से बाहर आने या ऊपर उठने के लिए रचनात्मक तौर पर संघर्षरत होना पड़ा होगा।

निराला की लम्बी कविताओं में उदात्तता का तत्व साध्य अथवा व्यंग के रूप में अनिवार्यतः विद्यमान है। "कुकुरमुता" लम्बी कविता मे प्रत्यक्षतः उदात्तता का 'एन्टीक्लाइमेक्स' भासित होता है परन्तु उनका प्रेरक मूल विचार निश्चय ही उदात्त है। 'सरोज–स्मृति' आत्मसम्बद्ध वर्ग की लम्बी रचना है जिसमे कवि ने व्यक्तिगत जीवन की करूणा और विडम्बना को अभिव्यक्ति दी है। 'सरोज–स्मृति' में निराला का आत्मनिर्वासन विस्मयकारी है। वस्तुभूमि के रूप में पुत्री के देहावसान का मर्मान्तक प्रसंग होते हुए भी इस लम्बी कविता में कवि, जीवन, सौन्दर्य और समाज के प्रति गहन प्रतिबद्धता का अनुभव कराता रहा है, जो लम्बी कविता जगत में बेजोड़ और अद्वितीय उदाहरण है। लम्बी कविताओं के माध्यम से छायावादी युग और समस्त हिन्दी काव्य–जगत को निराला जी की देन अनुपमेय कही जा सकती है।

संदर्भ–सूची :–

1. दूधनाथ सिंह, निरालाः आत्महंता आस्था, पृष्ठ संख्या 106।
2. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की डायरी, पृष्ठ संख्या 20।
3. रामदरश मिश्र, मतांतर पत्रिका, प्रवेशांक, मार्च 1970।
4. सत्यप्रकाश मिश्र, लंबी कविताओं का रचना विधान, पृष्ठ संख्या 119।
5. डॉ नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृष्ठ संख्या 135।
6. डॉ नित्यानंद तिवारी, लंबी कविताओं का रचना विधान, संपादक डॉ नरेन्द्र मोहन, पृष्ठ संख्या 40–41।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाओं का विकास

डॉ. गौरी शर्मा*

सम्पूर्ण जगत मे मनुष्य मात्र ही एक ऐसा प्राणी है जिसे भाषा का वरदान मिला है और यही वह गुण है जो उसे प्राणी जगत से अलग करता है। मनुष्य अपने भावो और विचारो के आदान प्रदान के लिए जिस साधन का प्रयोग करता है उसे ही भाषा कहते है भाषा भावो और विचारो की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है और इसी के कारण मानव ने आशातीत सफलता भी प्राप्त की है। भाषा की कहानी उसकी सभ्यता की कहानी है। जब किसी समुदाय विशेष की भाषा का ही लोप हो जायेगा तो निश्चित रूप से भाषा के साथ ही उसकी सभ्यता और संस्कृति का भी लोप हो जाएगा। जब भी कोई भाषा विलुप्त होती है तो उसके साथ हमारी सभ्यता संस्कृति पहचान एवं अस्तित्व सभी कुछ विलुप्त होता है।

भारत एक बहुभाषी देश है जो अपनी विविध भाषाओं और संस्कृति के लिये पहचाना जाता है। प्राचीन समय में भी भारत मे अनेक बोलियाँ बोली जाती थी किंतु कामकाज के लिए संस्कृत स्वीकृत थी और वह इतनी परिमार्जित और समृद्ध थी कि सूक्ष्मतम विचारो को भी अभिव्यक्त करने में सक्षम थी और अत्यंत सम्मान प्राप्त भाषा थी इसे देववाणी भी कहा जाता था किन्तु बौद्धकाल में भारत की राजभाषा पालि और प्राकृत बनी फिर मुगलो के शासन काल में फारसी भाषा को राजकाज की भाषा का दर्जा मिला और फिर भारत में अंग्रेज़ों का समय आया और राजभाषा अँग्रेजी बन गई। आज भारत को आजाद हुए 75 वर्ष हो चुके है किन्तु यह विडम्बना ही है कि आज भी राजभाषा के पद पर अँग्रेजी ही विद्यमान है। हम अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी जो भारत मे सर्वाधिक लोगो द्वारा बोली जाती है को राजभाषा का दर्जा नहीं दे पाए है और सबसे बुरी स्थिति तों यह है कि हमारी प्राचीन सांस्कृतिक भाषा संस्कृत जो हमारी सभ्यता और संस्कृति की परिचायक है आज विलुप्त होने की कगार पर है उसे किसी भी प्रकार का संरक्षण देने की बात आज तक सोची नहीं गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस ओर ध्यान ही नहीं दिया गया है बल्कि उसके संरक्षण और संवर्धन की बात भी की गई है।

1961 की जनगणना के समय भारत में 1652 भाषाएँ दर्ज की गई थी जिसमें से 87 भाषाओं का प्रयोग प्रिंट मीडिया में 71 भाषाओं का व्यवहार रेडियो में और 47 भाषाओं को शिक्षण के माध्यम के रूप मे उपयोग किया जाता रहा था। 1971 में 10,000 से कम लोगो द्वारा बोली जाने वाली भाषाओ को दर्ज न करने का नियम बना परिणामस्वरूप सिर्फ 108 भाषाएँ ही दर्ज हो सकी। वर्तमान में भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार 1369 भाषाऐं है किन्तु इसमे से मात्र 22 भाषाओं को ही राष्ट्र भाषा का दर्जा प्राप्त है। इसके अतिरिक्त 121 भाषाऐं ऐसी है जिन्हें 10 हजार से अधिक लोगो के द्वारा व्यवहार में लाया जाता है। युनेस्को से प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार पिछले पचास वर्षो में लगभग 197 भाषाऐं लुप्त हो चुकी है और अनेक भाषाऐं ऐसी है जो लुप्त होने की कगार पर है। भाषा हमें हमारी अभिव्याक्ति हेतु सशक्त माध्यम प्रदान करती है। भाषा के माध्यम से ही हम अपने समस्त् विचारों का विनिमय कर पाते है आज भारत में मात्र 22 भाषाऐं ही आठवी अनुसूची में दर्ज है एवं इन भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में विद्यालयों में इनका व्यवहार किया जा रहा है, किन्तु ऐसी अनेक भाषाएँ है जिनका व्याकरण या साहित्य उपलब्ध नहीं है, उन्हें शिक्षण का माध्यम बनाने हेतु अथक प्रयास की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति मातृभाषा में शिक्षण की बात करती है और प्रतिबद्ध भी है किन्तु यह बात पूर्ण रूप से तभी सफल होगी जब भारत के प्रत्येक बच्चे को उसकी अपनी मातृ भाषा मे शिक्षा प्राप्त होगी।

यदि हम स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा संबंधी नीतियों पर विचार करे तो पायेंगे कि प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) का प्रथम वाक्य ''देश का भविष्य उसकी कक्षाओं में निर्मित हो रहा है'' हमे बताता है कि शिक्षा

***सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालया, वर्धा, महाराष्ट्र।**

को बाल केन्द्रित होना चाहिए क्योंकि यही हमारा भविष्य तय करेंगे। और शिक्षा बाल केन्द्रित तभी होगी जब बालक के मनोभावों को समझेगी न कि उसके उपर बचपन से ही एक अनजानी भाषा का भार लाद देगी, जिसके बोझ से वह जीवन पर्यंत नहीं उबर पाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के दस्तावेज को देखे तो भाषा को लेकर वह चिंतित है और अनेक भाषा संबंधी प्रावधान भी किए गए है। प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा मे शिक्षा को स्वीकार तो किया गया है किन्तु त्रिभाषा सूत्र को मूल रूप में न स्वीकार करते हुए संशोधन के साथ प्रस्तुत किया गया है जो आज भी उचित प्रतीत नहीं होता है। त्रिभाषा सूत्र कि आत्मा को खत्म कर दिया गया और हिन्दी और अँग्रेजी को संघ की भाषा के रूप मे स्थान दिया गया है जिससे गैर हिंदीभाषी देशो में अँग्रेजी को जगह मिली है और हिन्दी लगातार दरकिनार होती गई है। साथ ही अँग्रेजी भाषा के चलते स्थानीय भाषाओं को वह स्थान नहीं मिल पाया जो मिलना चाहिए था फलस्वरूप अँग्रेजी भाषा और उसके साथ पाश्चात्य संस्कृति हमारे जीवन मे घर करती गई हमे पता ही नहीं चला कि हम कब इस नाग पाश मे फँसते चले गए आज हम चाहकर भी हमारे घरों में प्रवेशित इस संस्कृति से उबर नहीं पा रहे है। इस शिक्षा नीति में स्थानीय भाषा में शिक्षण को लेकर विशेष ध्यांन नहीं दिया गया एवं उसे किस तरह से लागू किया जाना है, इस हेतु विशेष प्रयत्न भी नहीं किये गये फलतः मातृ भाषा मे शिक्षण का प्रथम सूत्र ही पूर्ण नहीं हो सका। प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेजी का बोलबाला रहा बच्चों का मौलिक चिंतन कही खो सा गया और उन पर एक अनजानी भाषा थोपने के कारण यह भाषा उनकी अभिव्यक्ति में बाधक रही। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की बात करे तो शिक्षा को राष्ट्रीय महत्व के रूप में स्वीकार किया गया किंतु स्थानीय एवं मातृ भाषा मे शिक्षण की व्यवस्था को लेकर कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया यद्यपि त्रिभाषा सूत्र लागू रहा। धीरे धीरे पुनः वैश्विक परिदृश्य के अनुरूप शिक्षकों को वर्तमान के साथ जोड़ने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन हेतु उसे कौशल प्रधान बनाने हेतु तथा वैश्विक स्तर पर अपनी अस्मिता को बनाये रखने हेतु नवीन ढंग से विचार करने एवं प्राचीन ज्ञान परंपरा को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गई और तब राष्ट्री्य शिक्षा नीति 2020 को प्रस्तावित किया गया। इस शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं के संरक्षण संवर्धन एवं विकास तथा विस्तार पर अधिक बल दिया गया है साथ ही मातृ भाषा को कक्षा आठ तक शिक्षा का माध्यम बनाने पर विशेष ज़ोर दिया गया है ताकि बच्चों में अपनी भाषा के प्रति प्रेम, अपनी पहचान और अपनेपन का भाव पैदा हो, शिक्षा उसे बोझिल न लगे और वह बड़ी ही सहजता से उसे स्वीकार कर सके। मातृभाषा मे शिक्षण से बालक की रूचि बड़ती है किन्तु यदि भाषा अलग हो तो भाषा सीखना ही उसके लिये एक बड़ी चुनौती बन जाती है। और वह सीखने के महत्वपूर्ण वर्ष इस भाषाई चुनौती से निपटने मे ही गुजार देता है।

इसके विपरीत जब मातृभाषा में शिक्षण होता है तो बच्चा केवल भाषा ही नहीं अपितु अपनी संस्कृति को भी जानता है समझता है और बच्चे में अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान व गौरव का भाव पैदा होता है, साथ ही वह अन्य भारतीय भाषाओं एवं संस्कृतियों को जानने हेतु भी जागरूक होता है, और इससे बच्चों में आत्मविश्वास भी बढ़ता है। यदि बच्चे को बचपन से ही ऐसी भाषाओं में पढ़ाया गया जिससे वह अनजान है जिसे वह जीता ही नहीं है और उसे उस भाषा को न ही सिर्फ पढ़ना पड़ता है बल्कि भाषा के साथ उसकी संस्कृति से भी जुड़ना पड़ता है, फलस्वरूप शिक्षा उसके लिये बोझिल हो जाती है। जैसे–जैसे वह उसी भाषा में शिक्षा प्राप्त करता जाता है उसके मन में अपनी भाषा के प्रति एक हीनता का भाव घर कर जाता है उसकी मौलिक सोंच खत्म हो जाती है और वह रटन्त विद्या (रोट लर्निंग) की तरफ बढ़ता जाता है फलतः शिक्षा मात्र डिग्री प्राप्त करने का साधन बन जाती है। बच्चे को इस हीनता के भाव से बचाने के लिये उसकी मौलिकता को बनाए रखने के लिए उसे अपनी भाषा में शिक्षा प्रदान करना जरूरी है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक भारतीय भाषा को न केवल अध्ययन अध्यापन बल्कि अनुसंधान का स्वाभाविक माध्यम बनाने की एक ठोस कार्ययोजना प्रस्तुत करती है एवं सभी भारतीय भाषाओं की चिंता करती नजर आती है जिससे हमारे अस्तित्व का संरक्षण हो सकें। हमें भारतीय भाषाई विविधता को गौरव व अस्मिता के रूप में स्वीकार कर त्रिभाषा सूत्र को मूल रूप में लागू करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रमुख अनुशंसाओं के अनुसार प्राथमिक स्तर कक्षा पांच तक मातृभाषा मे अनिवार्यतः शिक्षा एवं जहाँ

तक संभव हो माध्यमिक स्तर पर भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। साथ ही साथ उच्च शिक्षा के स्तर पर भी पाठ्यक्रम को द्विभाषा में उपलब्ध कराने की बात इस शिक्षा नीति में कही गई है। वैश्विक स्तर पर हुये अध्ययन एव अनुसंधान इस तथ्य कि पुष्टि भी करते है कि प्राथमिक वर्ष में बालक की शिक्षा उसकी अपनी भाषा (मातृभाषा) में ही होना चाहिये जिससे वह सहज हो सके अपनी अभिव्यक्ति कर सके साथ ही उसकी मौलिकता का नाश न हो। आज तक की शिक्षा में बालक शुरू के पाँच से छः वर्ष अंग्रेजी सीखने की जद्दोजहद में ही गुजार देता है जिससे वह विषय ज्ञान से दूर ही रहता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 त्रिभाषा सूत्र को लागू करने हेतुः प्रतिबद्ध है। आज भी देश के कुछ राज्यों में इसका अनुपालन नहीं किया जा रहा है और इसके अनुपालन हेतु त्रिभाषा सूत्र की भावना (उत्तर के राज्य अर्थात हिन्दी भाषी राज्य के छात्रों द्वारा दक्षिण भारतीय भाषा एवं गैर हिन्दी भाषी दक्षिण भारतीय राज्यों द्वारा हिन्दी भाषा सीखना) को स्वीकार करने से न सिर्फ भारतीय भाषाओं में शिक्षण को बढ़ावा मिलेगा अपितु हम विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से स्वयं की संस्कृति को जानेंगे न कि अंग्रेजी संस्कृति को अपनायेंगे, किन्तु अभी भी हम इस विवाद को सुलझा नहीं पायें है।

त्रिभाषा सूत्र के अनुपालन हेतु इस नीति में भाषा शिक्षको के आदान–प्रदान संबंधी आपसी अनुबंध स्थापित करने की बात भी कही गई है। यह सब कुछ इसलिये ताकि बच्चों में मौलिकता एवं सृजनात्मकता बची रहे वे बचपन से ही विदेशी भाषा के बोझ तले हीन भावना के शिकार न हो, कुंठाग्रस्त न हो उनका विकास किसी भाषा के चलते अवरूद्ध न हो और वे स्वयं के ज्ञान के प्रति गौरव व सम्मान महसूस करे एवं अपने आपको अभिव्यक्त कर सके। इस शिक्षा नीति में माध्यमिक स्तर तक सभी विषय (विज्ञान, गणित) के पाठ्यक्रम द्विभाषा में उपलब्ध कराने की बात न सिर्फ की गई है अपितु उसके अनुपालन हेतु भरसक प्रयत्न भी किये जा रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति भाषा के विकास में तकनीकी के उपयोग को प्रोत्साहित कर रही है एवं इसके लिये केन्द्रीय स्तर पर अनेक सॉफ्टवेयर तैयार किये जा रहे है ताकि विद्यालयीन शिक्षा के लिये हर विषय की अधिगम सामग्री उनकी अपनी मातृभाषा में उपलब्ध हो सके। इस दायित्व के प्रति विद्यालयीन शिक्षा से संबंधित राज्य् एवं केंद्र सरकार के अलावा एन.सी.ई.आर.टी., सीबीएसई जैसे निकाय एवं संस्थान भी प्रतिबद्ध होंगे। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा नीति भारतीय भाषाओं के विकास हेतु विकिपीडिया जैसे अन्य ज्ञानकोष माध्यमों के विकास की बात भी करती है। विकिपीडिया बहुभाषी वेब आधारित मुक्त ज्ञानकोष परियोजना है जिसे दुनियाभर के विद्वान योगदान कर्ताओं द्वारा निरंतर संपादित किया जा रहा है और इसे लगातार अद्यतन भी किया जा रहा है और इसके माध्यम से भारतीय भाषाओं और भाषाओं के माध्यम से उनकी कला एवं संस्कृति का भी संरक्षण किया जा रहा है। बच्चे भाषा को खुशी व आनंद से सीखे इस हेतु विभिन्न तकनीकी गेम्स और विभिन्न प्रकार के ऐप निर्माण को प्रोत्साहन दिया जा रहा है जिससे बच्चे भाषा को सीखने में आनंद प्राप्त करें और खेल–खेल में भाषायी कौशलो में निपुणता भी हासिल करें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भाषा को लेकर एक और बात उजागर की गई है वह यह है कि भारत देश में राज्यों का गठन तो भाषायी आधार पर किया गया है किन्तु एक ही राज्य में अनेक बोलियाँ बोली जाती है विशेष रूप से ऐसे राज्य जहाँ जनजाति जनसंख्या अधिक है और जो दुर्गम पहाडी इलाको मे निवासरत है वह जनजाति वह समुदाय अपनी क्षेत्रीय भाषा से/राजभाषा से अनभिज्ञ होता है ऐसे में उसे उसकी मातृ भाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा प्राप्त होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे उसके व्यक्तित्व का मौलिक विकास हो सके। इस हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रावधान है कि ऐसे क्षेत्रों के लिये स्थानीय भाषा के जानकार शिक्षकों की नियुक्ति की जाये एवं शिक्षकों की भर्ती के समय इसे प्राथमिकता दी जाये साथ ही स्थानीय भाषा के शिक्षकों की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु ग्रामीण उत्कृष्ट छात्र–छात्राओं को विशेषकर छात्राओं के लिए बी.एड. पाठ्यक्रम हेतु विशेष छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जायेगी जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रीय भाषा में निपुण शिक्षकों की उपलब्धता को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति भाषा विकास को दृष्टिगत रखते हुये एवं विद्यालयीन बच्चों में भाषा, कला और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये संगीत, कला, हस्त् कौशल एवं बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करने हेतु त्रिभाषा सूत्र के शीघ्र क्रियान्वयन एवं स्थानीय कलाकारों, लेखकों, हस्त कलाकारों एवं अन्य स्थानीय कला विशेषज्ञों को प्रशिक्षक के रूप में स्कूलों से जोड़ने, पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाने एवं पारंपरिक भारतीय ज्ञान के समावेशन को संभव बनाने पर बल दे रही है। इस प्रकार माध्यमिक स्तर एवं उच्च स्तर पर पाठ्यचर्या को अधिक लचीलापन प्रदान कर रही है। ताकि विद्यार्थी संतुलन स्थापित करते हुये अपने लिये अपनी रूचि, कौशल के अनुसार आवश्यकतानुरूप विकल्प का चयन कर सकें और स्वयं की अस्मिता को बनाये रखते हुये स्वयं के सृजनात्मक, कलात्मक, सांस्कृतिक एवं अकादमिक आयामों का विकास कर सके।

दुनिया की सर्वाधिक प्राचीन भाषा संस्कृत जिसे देव भाषा भी कहा जाता है आज विलुप्तता की कगार पर है। 2011 की जनगणना के अनुसार 121 करोड़ जनसंख्या वाले इस देश में मात्र 24821(0.002%) लोग है, जो संस्कृत का व्यवहार करते है। संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है इसे वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया गया है एवं संस्कृत को वैज्ञानिक दृष्टि से भी संपूर्ण भाषा माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत अब संस्कृत को त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत एक विकल्प के रूप में स्थान दिया गया है अब संस्कृत केवल संस्कृत पाठशालाओं एवं विश्वविद्यालयों या महाविद्यालयों तक ही सीमित नहीं रहेगी। इसे उच्च शिक्षा में भी सभी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में लाया जायेगा इस प्रकार संस्कृत को औपचारिक शिक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाने जैसी महत्वपूर्ण बात इस शिक्षा नीति में की गई है। संस्कृत को पढ़ाने के लिये रूचिकर पाठ्यक्रम एवं शिक्षण की नवाचारी विधियों का प्रयोग किया जायेगा एवं अन्य समकालीन विषयों (गणित, खगोलशास्त्री, दर्शनशास्त्र, नाटक विद्या योग) से भी इसे जोडा जायेगा। इसके साथ ही संस्कृत विश्वविद्यालयों को भी बहुविषयक विश्वविद्यालय बनाने की पहल की गई है ताकि सभी विषयों का सहज जुड़ाव संस्कृत के साथ हो लोगों को संस्कृत का अध्ययन प्रासंगिक लगे इसका वे आनंद ले सके एवं वे भारतीय पारंपरिक ज्ञान एवं संस्कृति से जुड़ सके। इस शिक्षा नीति को बड़ी ही दूरदर्शिता के साथ तैयार किया गया है। शिक्षा एवं संस्कृत विषय में चार वर्षीय बहुविषयक बी.एड. डिग्री के प्रारंभ करने की बात कहीं गई है ताकि मिशन मोड में संस्कृत शिक्षकों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जा सके एवं आवश्यकतानुरूप उन्हें शिक्षा एवं संबंधित भाषा में बी.एड. की डिग्री प्रदान की जा सके ताकि आवश्यकतानुरूप उस भाषा के शिक्षण हेतु उत्कृष्ट शिक्षक तैयार किये जा सके। विश्वविद्यालय परिसर में पालि, प्राकृत, फारसी भाषा के राष्ट्रीय स्तर के संस्थान भी स्थापित किये जाने की बात कहीं गई है। शास्त्रीय भाषाओं के संरक्षण व संवर्धन हेतु सभी शास्त्रीय भाषाओं और साहित्य का अध्ययन करने वाली संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के विस्तार की बात करती है जिससे कि हजारों पांडुलिपियों का अध्ययन किया जा सके और अनुवाद कर उन्हें लोगों तक पहुंचाकर उसमे निहित ज्ञान का संरक्षण किया जा सके। इसके अतिरिक्त भारतीय भाषा, संस्कृति एवं कला के अध्ययन हेतु छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था है और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अध्ययन हेतु उम्र की सीमा नहीं रखी गई है कोई भी व्यक्ति यह अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त कर सकेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार भारत की आठवी अनुसूची में उल्लिखित समस्त भाषाओं हेतु अकादमी स्थापित की जायेगी। जिसमें संबंधित भाषा विशेषज्ञ एवं संबंधित भाषा व्यावहार में कुशल एवं दक्ष लोग लोग रहेंगे जिससे कि नवीन अवधारणाओं के लिये भी सटीक शब्दों का शब्द भंडार तैयार किया जा सकेगा एवं वह नियमित रूप से अद्यतन हो सकेगा। इन शब्द कोषों के निर्माण हेतु अकादमियों का आपसी परामर्श आवश्यक होगा एवं स्थानीय लोगो से भी सुझाव लिये जायेगे एवं जहाँ तक संभव होगा स्थानीय शब्दों को अंगीकार भी किया जायेगा और इन शब्दकोषो को व्यापक रूप से प्रसारित किया जायेगा ताकि ऐसे शब्दों का प्रयोग व्यवहार में लाया जा सके। आठवी अनुसूची के अतिरिक्त व्यापक रूप से बोली जाने वाली भारतीय भाषाओं के लिये भी अकादमी की स्थापना केन्द्र/राज्य सरकार द्वारा की जायेगी।

सभी भारतीय भाषाओं और उनसे संबंधित कला एवं संस्कृति के संरक्षण हेतु वेब आधारित प्लेटफार्म तैयार किया जायेगा जिसके माध्यम से कला एवं संस्कृति का दस्तावेजीकरण किया जा सके एवं इस प्लेटफार्म पर उस भाषा संस्कृति से संबंधित विडियो, शब्दकोष, रिकार्डिंग, कहानी, कविता, नाटक, लोकगीत

एवं नृत्य भी होगे जिससे देशभर के जानकार लोग इस प्लेटफार्म से जुड़कर इसे और भी अधिक समृद्ध कर पायेंगे और भाषा संरक्षण के माध्यम से हमारी लुप्त होती हुई संस्कृति का संरक्षण भी होगा। संरक्षण से जुड़ी अनुसंधान परियोजनाओं को भी एन.आर.एफ द्वारा वित्तीय सहायता दी जा रही है। साथ ही भारतीय भाषाओं में प्रवीणता को रोजगार अर्हता के मानदंडो में भी शामिल किया जायेगा ताकि युवाओं में अपनी भाषा के प्रति रूचि एवं सम्मान हो। इस प्रकार यह नीति शास्त्रीय जनजातीय एवं लुप्तप्राय भाषाओं के साथ समस्त भारतीय भाषाओं के संरक्षण एवं संर्वधन के लिये समर्पित दिखाई देती है।

भारत एक बहुभाषी देश है और यही बहुभाषिता भारतीय संस्कृति की परिचायक है ऐसा प्रथम बार हुआ है कि शिक्षा नीति बहुभाषिता के संरक्षण हेतु संवेदनशील है और इसके माध्यम से हम हमारी विलुप्त होती भाषाओं पर पुनः अपना अधिकार हासिल कर पाएंगे साथ ही अपनी गौरवशाली परंपरा को स्थापित भी कर पाएंगे। संस्कृत जो सभी भाषाओं की जननी है उसे भी अब तक समुचित स्थान नहीं प्राप्त हुआ था इस जननी भाषा के जानकार लोगों को भी सम्मान प्राप्त नहीं था और वह भी भाषाई संकटग्रतता से जूझ रही थी, किन्तु अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से एक आशा की किरण दिखाई देती है जिसके माध्यम से समस्त भारतीय भाषाए अपने गौरव को प्राप्त करेंगी।

संदर्भ–सूची :–

1. पाण्डेय, राम शक्ल (2009) हिन्दी शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन।
2. भटनागर, मीनाक्षी ((2010) हिन्दी शिक्षण, आर लाल बुक डिपो।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. लाल, रमन बिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2008) समकालीन भारत और शिक्षा : विषय और मुद्दे, आर लाल बूक डिपो, मेरठ।
5. सिंह, रामकिशोर (2017) पाठ्यक्रम में भाषा, आर लाल बुक डिपो।
6. भारत की जनगणना (2011) भाषा, पेपर 1, 2015, भारत सरकार, नई दिल्ली।

विवेकानंद की नारी-विषयक अवधारणा

आकांक्षा अग्निहोत्री*

किसी देश की पहचान उसके अपने सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं साहित्यिक ताना–बाना के रूप में होती है। प्रत्येक देश अपने सांस्कृतिक धार्मिक राजनैतिक आर्थिक पृष्ठभूमि के कारण से ही पहचाना जाता है। उस देश की सांस्कृतिक विशेषताएँ उसे अन्य देशों में विशिष्ट पहचान दिलाती हैं, जिसके लिए उसे अपने मूल अस्तित्व को बरकरार रखना आवश्यक होता है। यदि अपनी विशिष्टता का विस्मरण कर देता है अथवा उसे तुच्छ समझ कर दूसरी विशेषता का अनुसरण करता है तो वह न ही अपना अस्तित्व ही कायम रख पाता है और न दूसरे जैसा बन पाता है। इसी प्रकार हमारा देश भारत है, जिसकी अपनी संस्कृति सभ्यता एवं परंपरा है, जिसके मूल संस्कृति, सभ्यता में वेद है, जो हमारी संस्कृति को मौलिक आधार प्रदान करने के साथ–साथ हमें यह दर्शाते हैं कि वास्तव में हम क्या है? हमारी परंपरा का सार तत्व क्या है? हमारी संस्कृत की मूल शक्ति आधार रूपा क्या है ? वेदों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति, परंपरा, रीति–रिवाजों, धर्म में नारी सदैव केंद्र में रही है। नारी को पूर्ण मानते हुए श्वेता स्वर उपनिषद में लिखा है– **'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्ण मेवा वशिष्यते।'**

नारी (पूर्ण) से दूसरा जीव नारी या पुरुष उत्पन्न होता है फिर भी वह नारी पूर्ण ही रहती है। "सृष्टि में पुरुष तथा नारी की उत्पत्ति का ही केंद्र है। बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि ब्रह्म ने एकाकी न रहकर अपने आप को दो में विभक्त कर लिया, जिसके दक्षिण अंश को पुरुष तथा वाम को नारी की संज्ञा दी गई। इस मान्यता ने समाज में दोनों की स्थिति समान कर दी। इतना ही नहीं आगे चलकर शिव के अर्धनारीश्वर रूप में भी यह धारणा साकार हुई है।"[1]

समय के साथ–साथ नारी को केंद्र बिंदु मानने वाले भारतीय समाज में बाह्य आक्रांताओं ने इतने आक्रमण किए कि, उसने अपनी संस्कृति की मौलिकता को खोकर नारी की प्रतिष्ठा को भी खो दिया। इन बाह्य आक्रांताओं में तुर्क, मुगल एवम अंग्रेज विशेष स्थान रखते हैं, जिन्होंने हमारी संस्कृति एवं सभ्यता पर कुठाराघात किया, परिणाम स्वरूप हमारे यहां जो नारी पूजनीय, स्वतंत्र, शक्ति स्वरूपा केंद्र बिंदु, दिशा दिखाने वाली थी; वह दिशा विहीन समाज के बनाए हुए बंधनों, कुरीतियों में दबा दी गई। भारतीय समाज में यह कुरीतियाँ जैसे बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बहु विवाह, देवदासी प्रथा, जौहर प्रथा इन के आगमन से ही फैली।

19वीं शताब्दी में इन कुरीतियों को समाप्त करने के लिए अनेक महापुरुषों जैसे राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर, महात्मा गांधी ने अनेक कदम उठाये। इनमें से ही एक मनीषी, विद्वान विवेकानंद जी भी हैं, जिन्होंने उस समय की स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए धर्म–दर्शन, वेदों को आधार बनाया था। वे राष्ट्रवादी नेता, कर्म योगी एवं आधुनिक भारतीय इतिहास में वेद के भक्त के रूप में भी जाने जाते हैं। उन्होंने भारतीय समाज में स्त्रियों को समानता, स्वतंत्रता एवं शिक्षा के माध्यम से उनकी पुरानी स्थिति में लौटाने का प्रयास किया। उनके अनुसार– "यह कहना कि मैं भारतवर्ष के स्त्रियों के संबंध में सब कुछ जानता हूं अतिशयोक्ति होगी। मेरी इस जानकारी का कारण यह है कि मैं बराबर एक स्थान से दूसरी जगह घूमा ही करता हूं और समाज के हर श्रेणी के लोगों से मिलता जुलता हूं, यहां तक कि उत्तर भारत की स्त्रियों से भी, जो पुरुषों के सामने नहीं आती पर कहीं–कहीं धर्म के लिए इस नियम को तोड़ कर हमारे सामने आती हैं; हमारे उपदेश सुनती हैं और हमसे बातें करती हैं।"[2]

उस समय समाज में जो भी कुरीतियाँ व्याप्त थी विवेकानंद ने उन्हें समाप्त करने के संदर्भ में अपने विचार एवम् उपाय सदैव धर्म शास्त्रों परंपरा के आधार पर दिये, चाहे वह बाल विवाह हो, सती प्रथा हो,

***शोधार्थी, अनुस्नातक इतिहास विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय वल्लभविद्यानगर, गुजरात।**

विधवा पुनर्विवाह। उन्होंने भारतीय समाज में नारियों की स्थिति सुधारने के लिए एवं उन्हें समाज में उनकी गरिमा प्रदान करने के लिए शिक्षा देना अत्यंत आवश्यक बताया।

विवेकानंद ने कहा है "बुरा भला सभी देशों में है। मेरा मत यह है कि सब देशों में समाज अपने आप बनता है। इसी कारण बाल विवाह उठा देना या विधवा विवाह आदि विषयों में सिर पटकना व्यर्थ है। हमारा यह कर्तव्य है कि समाज के स्त्री पुरुषों को शिक्षा दें। इससे फल यह होगा कि वे स्वयं भले बुरे को समझेंगे और बुरे को स्वयं ही छोड़ देंगे। तब किसी को इन विषयों पर समाज का खंडन या मंडन करना न पड़ेगा।"[3] इस प्रकार स्पष्ट है विवेकानंद न केवल पुरुष एवं स्त्री की शिक्षा के भी पक्षधर थे, बल्कि इन समस्याओं को जड़ से समाप्त करना चाहते थे। ये सत्य है की सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने का केवल एक ही माध्यम शिक्षा है। शिक्षित व्यक्ति प्रत्येक परम्परा, लोकरीति को अपनाने से पूर्व तार्किक चिंतन करता है।

विवेकानंद ने भारतीय नारी का महत्व एक मां के रूप में स्वीकार किया है। वे कहते हैं– "भारत में स्त्री जीवन के आदर्श का आरंभ और अंत मातृत्व में ही होता है। प्रत्येक हिंदू के मन में स्त्री शब्द के उच्चारण से मातृत्व का स्मरण हो जाता है, और हमारे यहां ईश्वर को मां कहा जाता है।"[4]

एक नारी पत्नी, कन्या, बहन भी होती है; किंतु माँ के रूप में वरीयता देने का कारण यह है की समाज में बालक जो कुछ भी होता है, वह मां की वजह से ही। मां अपने गर्भ में धारण करने से पहले अनगिनत व्रत पूजा पाठ, यज्ञ, हवन आदि करती है तत्पश्चात गर्भधारण होने पर, अपने खानपान, वातावरण यहां तक कि विचार भी सात्विक रखती है ताकि संतान संस्कारवान उत्पन्न हो और जो संस्कार मां पोषित करती है वह जीवन–पर्यंत साथ रहते हैं। यही कारण है कि विवेकानंद प्रत्येक नारी को धर्म और नैतिक शिक्षा देना चाहते है जिससे वह एक अच्छे, धार्मिक संसार का निर्माण कर सके। "कुमारयों को धर्म परायण और नीति परायण बनाना पड़ेगा जिससे वह भविष्य में अच्छी गृहिणी हों वही करना होगा।इन कन्याओं से जो संतान उत्पन्न होगी वह इन विषयों में और भी उन्नति कर सकेगी। जिनकी माता शिक्षिता और नीति परायण हैं उनके ही घर में बड़े लोग जन्म लेते हैं।"[5] इसी प्रकार भारतीय समाज में उस समय बाल विवाह को रोकने के लिए स्त्री शिक्षा पर बल दिया "पुरुषों के लिए जैसा शिक्षा केंद्र बनाना है वैसा ही स्त्रियों के निमित्त भी करना होगा। शिक्षिता और सच्चरित्र ब्रह्मचारिणी इस केंद्र में कुंवारियों को शिक्षा दिया करेंगी। पुराण, इतिहास, ग्रह–कार्य, शिल्प, गृहस्थी के सारे नियम इत्यादि वर्तमान विज्ञान की सहायता से देने होंगे तथा आदर्श चरित्र गठन करने की उपयुक्त नीतियों की भी शिक्षा देनी होगी।''[6]

बाल विवाह होने के कारण उस समय समाज में विधवाओं की संख्या भी अधिक थी यदि उनका विवाह बाल्यकाल में न करके शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात होता तो विधवाओं की संख्या में कमी भी आ सकती थी। इसके अतिरिक्त शिक्षित नारी पुरुष शिक्षा प्राप्ति के पश्चात इतना सक्षम हो जाता है कि वह शिक्षा रूपी शस्त्र पाकर प्रत्येक परिस्थिति से संघर्ष करने की क्षमता एवं तार्किक विवेचना करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। विवेकानंद जी के अनुसार शिक्षा भी पश्चिमी परिप्रेक्ष्य में नहीं अपितु भारतीय संदर्भ में। जिससे कि भारतीय संस्कृति परंपरा को जानकर गौरवान्वित हों;किंतु आज आधुनिक संदर्भ में इस शिक्षा का अभाव है शायद यही कारण है कि हमारे देश के लोग अपने देश से ज्यादा वरीयता पश्चिमी देशों को देते हैं। उनकी संस्कृति को अधिक गौरवशाली मानते हैं, उसे ही अपनाने का प्रयत्न करते हैं।

पश्चिमी देशों में जाकर वहां की नारियों को देखकर विवेकानंद ने भारतीय नारी को अधिक चरित्रवान, संस्कारी, धार्मिक पाया, जो कि हर क्षेत्र से संबंधित चाहे वस्त्र से संबंधित हो या व्यवहार, आचरण एवं चरित्र में। "यह देश वही है जहां सीता और सावित्री का जन्म हुआ था। पुण्य क्षेत्र भारत में अभी तक स्त्रियों ने जैसा चरित्र, सेवा भाव, दया, दृष्टि और भक्ति पाए जाते हैं। पृथ्वी पर और कहीं ऐसे नहीं पाए जाते। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को देखने पर कुछ समय तक यही नहीं जान सकते कि वे स्त्रियां है। ठीक पुरुषों के समान प्रतीत होती थी। ताम गाड़ी चलाती हैं,दफ्तर जाती हैं, स्कूल जाती हैं, प्रोफेसर करती हैं। एकमात्र भारतवर्ष में ही स्त्रियों में लज्जा, विनय देखकर नेत्रों को शांति होती है।"[7]

विवेकानंद ने पश्चिम संस्कृति से भारतीय संस्कृति की तुलना करते हुए पाया कि भारतीय परंपरा में मां का स्थान सर्वोच्च है वह ईश्वर रूपी है, जो पृथ्वी पर प्रत्येक मानव को ममता, प्रेम देने के लिए है, जबकि पश्चिम में पत्नी का स्थान उच्च है। "पश्चिम में स्त्री पत्नी है। वहां पत्नी के रूप में ही स्त्रीत्व का भाव केंद्रित है। किंतु भारत में जनसाधारण समस्त स्त्रीत्व को मातृत्व में ही केंद्रीय भूत मानते हैं। पाश्चात्य देशों में ग्रह की स्वामिनी और शासिका पत्नी है। पाश्चात्य में यदि माता हो भी तो उसे पत्नी के अधीन रहना पड़ता है, क्योंकि घर पत्नी का है। हमारे घरों में माता सदैव रहती है और पत्नी अनिवार्यता उसके अधीन होती है।"[8] पश्चिम देश की संस्कृति में स्त्री को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ा है जबकि भारतीय संस्कृति में यह अधिकार उन्हें पूर्व काल से ही प्राप्त है।

पश्चिम देशों में नारी की स्वतंत्रता, निर्भीकता को देखकर विवेकानंद जी ने भारत की नारियों को भी उनके जैसी स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की थी। संभवत उस समय ऐसी परिस्थितियां एवं सामाजिक व्यवस्था रही होगी जिस कारण ऐसे महापुरुष, वेद वित्त, मनीषी, विद्वान ने स्त्रियों की स्वतंत्रता की कामना की। किंतु आज के संदर्भ में यह बिल्कुल मान्य नहीं है क्योंकि भारतीय नारी प्रत्येक परिस्थिति में पश्चिम की नारियों से आगे हैं, वहां जिस प्रकार की स्वतंत्रता स्त्रियों को प्राप्त है वह हम सब वस्त्रों एवं उनके कर्मों के माध्यम से देखते हैं। स्वतंत्रता के नाम पर उन्होंने स्वच्छंदता को अपनाया हुआ है और स्वच्छंदता किसी की भी समाज के लिए अच्छी नहीं होती है। विवेकानंद ने भारत में ऐसी स्त्री की कल्पना की जो समाज, परिवार एवं देश को आगे बढ़ाने वाली हो एवं दिशा प्रदान करने वाली हो इस प्रकार "हम भारत की आवश्यकता के लिए महान निर्भीक नारियाँ तैयार करेंगे जो संघमित्रा, लीला, अहिल्या बाई, और मीराबाई की परंपरा को चालू रख सके। नारियां जो वीरों की माताएं होने के योग्य हो। इसलिए कि वे पवित्र और आत्मत्यागी हो, और उस शक्ति से शक्तिशाली हैं जो भगवान के चरण छूने से आती है।"[9]

इस प्रकार युग दृष्टा वेदों को मानने वाले युगपुरुष युवाओं को प्रेरित करने वाले विवेकानंद ने धर्म वेद अध्ययन से भारतीय नारियों की स्थिति एवं दशा सुधारने के प्रयास किए। वह नारियों को भविष्यवाणी के रूप में, भारतीय सभ्यता के अग्रदूत एवं देश के निर्माता के रूप में देखते हुए, उन्हें धर्म एवं वेदों की संस्कृति पर शिक्षा देते हुए भारतीय संस्कृत को पुनः जागृत करने एवं विश्व में उस नैतिकता एवं मूल्यों को उजागर करने के लिए अपने धर्म एवं संस्कृति का प्रचार करने की अभिलाषा की ताकि पश्चिमी देश भी हमारी संस्कृ त के कुछ तत्वों को अपनाकर अपना उद्धार कर सकें।

संदर्भ–सूची :–

1. भारतीय संस्कृति के स्वर, महादेवी वर्मा; राजपाल एंड संस, दिल्ली संस्करण 2017, पृ. सं.– 83।
2. विवेकानंद साहित्य जन्मशती संस्करण, खंड–1, स्वामी गंभीरानंद अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम 5 दिही रोड, कोलकाता–14, पृ. सं.– 308।
3. विवेकानंद जी के संग में वार्तालाप, :श्री शरदचंद्र चटर्जी, द्वितीय–संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर, मध्यप्रदेश पृ. सं.– 64।
4. विवेकानंद साहित्य जन्मशती संस्करण, खंड–1, पृ. सं.– 309।
5. विवेकानंद जी के संग में वार्तालाप, पृ. सं.– 59।
6. वहीं।
7. वही, पृ. सं.– 62।
8. विवेकानंद साहित्य जन्मशती संस्करण, खंड–1, पृ. सं.– 310।
9. विवेकानंद जी के संग में वार्तालाप, पृ. सं.– 65।

बाल साहित्य की अवधारणा एवं उसका बदलता स्वरूप

डॉ. नीतू वर्मा*

21वीं सदी का समय उत्तर आधुनिकता का युग है। इस युग में नाना–नानी, दादा–दादी, मॉ की लोरी, परी की कहानियाँ, राजाओं–महाराजाओं, देवी–देवताओं से जुड़ी कहानियों को मिथक माना गया है, जिसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं, फिर भी बच्चों को नैतिक शिक्षा, ज्ञान मनोरंजन से संपृक्त करने के लिए प्राचीन काल से चली आ रही कथाओं को आज भी सुनाया जा रहा है। अस्तु इसकी उपादेयता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। वास्तव में बाल साहित्य का प्रत्यक्ष संबंध बालकों की जिज्ञासाओं, आकांक्षाओं से होता है। बाल साहित्य का संबल पाकर ही बालक खेल–खेल में सरल–सहज भाषा में ज्ञानार्जन व भावाभिव्यक्ति कर अपनी कल्पना से भविष्य की तूलिका में रंग भरता है।

वर्तमान का बालक भविष्य का राष्ट्र–निर्माता है। असीम क्षमताओं को लेकर जन्म लेने वाला बालक परिवार एवं समाज द्वारा समुचित वातावरण संस्कार, शिक्षा और समृद्ध संवेदनशीलता पाकर एक पूर्ण मानव की कल्पना को मूर्त रूप देता है। सृष्टि की अनमोल देन बालक के भविष्य को गढ़ना माता–पिता अध्यापक एवं देश का गुरुतर उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य होता है। जिसे माता–पिता संस्कार द्वारा, अध्यापक शिक्षा व साहित्य द्वारा तथा देश मूल अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण कर पूर्ण करता है। इसी श्रृंखला में बाल साहित्यकार भी बाल साहित्य का प्रणयन कर राष्ट्र निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाते हैं, इन्हीं की चेतना का प्रतिफल है कि वर्तमान में अन्य भाषाओं के समान हिन्दी बाल साहित्य भी निरंतर समृद्ध हो रहा है। वर्तमान में साहित्य की लगभग प्रत्येक विधा में बाल साहित्य का सृजन हो रहा है, जो राष्ट्र निर्माण में सृजनात्मक भूमिका अदा कर रहा है साथ ही बालकों में उज्ज्वल भविष्य का निर्माण भी कर रहा है।

यहाँ बात 'बाल साहित्य' की हो रही है इसलिए 'बाल साहित्य' की अवधारणा पर थोड़ा प्रकाश डालना उचित होगा अन्यथा अन्य साहित्य और बाल साहित्य में विभेद करना सम्भव न होगा। ऐसा साहित्य जिसे पढ़कर बच्चे आनंदित हो, उनका सम्यक विकास हो और वे आत्म सुधार तथा जीवन के संघर्षो से जूझने की दिशा में क्रियाशील हो सकें वास्तविक रूप में वही बाल साहित्य की कोटि में परिगणित होगा। भले ही, उसकी रचना साहित्य के रूप में न हुई हो। आज भी बहुत सी ऐसी रचना है, जो बाल साहित्य को ध्यान में रखकर नहीं लिखी जाती है, फिर भी बच्चों में लोकप्रिय होती है।

सूत्र रूप में कहा जाय तो बच्चों द्वारा स्वयं अपने लिए लिखना कठिन है और दूसरे साहित्यकारों द्वारा बाल–मानसिकता व मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर रचना करना बड़ा ही, दुष्कर कार्य है। यही कारण है जो साहित्यकार 'बाल–साहित्य' पर लिख रहें हैं, उन्हें 'परकाया' प्रवेश की संज्ञा दी गयी है। बाल अनुभूतियों को स्वभाविक ढंग से आत्मसात कर, उन्हीं की भाषा में मनोभावों की अभिव्यक्ति करना 'बाल–साहित्य' कहलाता है।

इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध कथाकार भगवती प्रसाद वाजपेयी का कथन उचित है कि –बाल साहित्य लिखना बड़ा ही कठिन कार्य हैं। भाषा, क्लिष्ठ हो जाए तो लेखक को अपनी कुर्सी छोड़नी पड़ती, भावों में स्वाभाविक सारल्य न हो, अभिव्यंजना में झलक पड़े तो लेखक कलाकार नहीं घसियारा बन जाए। इन दोनों गुणों में पारंगत होने पर भी यदि कथन में नई पौध के नव निर्माण की भावना लेखक न हुई तो भी लेखक का प्रयास कालांतर में तीन कौड़ी का बन जाता है।''[1] वास्तव में किसी भी साहित्यकार को बाल–साहित्य सृजन से पूर्व मनोवैज्ञानिकों द्वारा 3 कोटियों में विभाजित आयु वर्ग का अध्ययन अवश्य करना चाहिये, इसके पश्चात ही बाल साहित्य के काम मे हाथ डालना चाहिए। ये आयु वर्ग निम्नवत् है–

***असि0 प्रो0 (हिन्दी–विभाग), एम. एल. एंड जे. एन. के. गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर।**

1. **प्रथम अवस्था–शिशु अवस्था– जो 6 वर्ष तक मानी गयी है।**
2. **द्वितीय अवस्था–बाल्यावस्था–जो वर्ष 12 वर्ष तक मानी गयी है।**
3. **तृतीय अवस्था–किशोरावस्था–जो 12 से 18 के बीच की है।**

अतएव इनकी अवस्था को ध्यान में लिखा रखकर जो साहित्य लिखा जाय वही 'बाल–साहित्य' से अभिधेयार्थ है। इसी को अंग्रेजी में 'चिल्ड्रेन लिटरेचर' व बांग्ला में 'शिशु–साहित्य' के रूप में जाना जाता है।

हिन्दी साहित्य जगत में 21वीं सदी विमर्शों का दौर है। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, कृषक विमर्श आदि की भाँति बाल–विमर्श पर भी सेमिनार व बहस हो रहे हैं। इस साहित्य को लेकर भी पाठकों, लेखकों, जनसामान्य में विमर्श हो रहा है कि बाल साहित्य का रचयिता बालक ही हो। या कोई भी हो सकता हैं? इसके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि यदि बालक में सृजन की क्षमता है और बालसाहित्य की रचना करता है तो बाल साहित्य की श्रेणी में परिगणित होगा अन्यथा बालक को केन्द्र में रखकर जो भी साहित्य किसी भी भाषा में और विषय पर बाल साहित्यकार द्वारा सृजन किया जाये वह समस्त साहित्य 'बाल साहित्य' की परिधि में गिना जायेगा क्योंकि बालक स्वयं के लिए उचित–अनुचित के विवेक व क्षमता से परिपूर्ण नहीं रहता है, जो बाल साहित्य के लिए आवश्यक होती है। यद्यपि समकालीन परिदृश्य में बाल साहित्यकारों (बाल्कों) द्वारा प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य रचा जा रहा है।

बाल साहित्य की अवधारणा को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। अतएव बाल साहित्य की भ्रान्तियों के निवारण के लिए कुछ बाल साहित्यकारों की परिभाषाओं का अवलोकन आवश्यक है। सोहनलाल द्विवेदी के अनुसारः– 'सफल बाल–साहित्य वह है', जिसको बच्चें सरलता से, अपना सकें और जो बालकों के मन की बात बालकों की भाषा में लिख सके। डॉ. श्री प्रसाद के अनुसारः– 'वह समस्त साहित्य जिसमें बाल साहित्य के तत्व हैं अथवा जिसे बालकों ने पसन्द किया है भले ही उसकी रचना मूलतः बालकों के लिए न हुई हो, बाल–साहित्य है।' हरिकृष्ण देवसरेः–जो साहित्य बच्चों की रूचि के अनुकूल, सरल भाषा में लिखा गया हो और जो बच्चों की ज्ञान, सीमा को विस्तारित करते हुए उनकी ज्ञान पिपासा को शांत करता हो वह साहित्य बाल साहित्य कहलाता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली के ग्रन्थ मातृभाषा हिन्दी शिक्षण के अनुसारः– 'बाल–साहित्य' बाल्यावस्था की शारीरिक, मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य है। उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकनार्थ के पश्चात् कहा जा सकता है कि बच्चों एवं अन्य साहित्यकारों द्वारा बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य बाल साहित्य ही माना जायेगा।

हिन्दी में बाल साहित्य की व्यवस्थित परम्परा आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से मानी गयी है ''भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित ''बाल–बोधिनी'' पत्रिका बच्चों की थी या महिलाओं की यह प्रश्न, विवादास्पद रहा किन्तु प्रथम अंक की भूमिका को पढ़ने से यह महिलाओं की पत्रिका सिद्ध होती है तथा अंग्रेजी के कारण इसका बालाबोधिनी – ''बालबोधिनी'' पढ़ा जाता रहा है।''[2] भारतेन्दु युग में सर्वप्रथम 1802 में 'बाल दर्पण' पत्रिका निकली, जो बच्चों के लिए सबसे पुरानी थी इसका प्रकाशन 'मासिक' होता था। इस सन्दर्भ में डा. राष्ट्रबंधु का मत है कि – ''भारतेन्दु युग में बाल पत्रकारिता की यात्रा ''बाल दर्पण'' से आरंभ होती है। भाषा और विषय की दृष्टि से भले ही इसका महत्व आज न हो तो भी इसका अपना आज ऐतिहासिक प्रदेय है।''[3] यद्यपि बाल साहित्य की निर्मल धारा का उद्‌गम कहाँ से हुआ इसके बारे मे सही सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं हैं, परन्तु 21वीं सदी की दहलीज पर पहुँचते–पहुँचते यही धारा गुणवत्ता और आकार की दृष्टि से महासागर का रूप ले चुकी है। इसे हाशिये का साहित्य कहने वाले आलोचक भी अब इसे साहित्य की स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। वर्तमान समय में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में बाल–साहित्य का निरंतर सृजन हो रहा है। बाल साहित्य पर 'नंदन', 'चंपक', 'बालसखा', 'चंदामामा' जैसी गिनी–चुनी पत्रिकाओं वाला हिन्दी साहित्य वर्तमान में अनेकानेक बाल पत्रिकाओं के प्रकाशन से समृद्ध हो रहा है। आजकल कमावेश सभी पत्रिकाओं में 'बच्चों का कोना' के अन्तर्गत 'अंतर ढूढों', 'बिन्दु मिलाओ', 'बाल गीत', 'बाल कहानी' आदि से संपृक्त स्तम्भ शीर्षकों को स्थान दिया जा रहा है। न्यूज पेपर के

अतिरिक्त रेडियो दूरदर्शन में भी बच्चों की रुचि की विषय–वस्तु प्रचुर मात्रा में प्रसारित एवं प्रकाशित किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप बाल–साहित्य में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। बाल साहित्यकार भी बाल साहित्य को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। इनमें सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, , डा. प्रसाद माहेश्वरी, डा. हरिकृष्ण देवसरे, डा. राष्ट्र बंधू गिजुभाई, शंकर माहेश्वरी सुल्तानपुरी, भगवती प्रसाद द्विवेदी, जयप्रकाश भारती, डॉ श्री प्रसाद अनंतपई, शेरजंग गर्ग, अनंत कुशवाहा दिविक रमेश, निरंकार देव सेवक जैसे सैकड़ों बाल साहित्यकारों का योगदान है।

आधुनिक बाल साहित्य के प्रणेता के रूप में ख्याति प्राप्त डा. हरिकृष्ण देवसरे ने 300 से अधिक पुस्तकों का सृजन किया। इसके लिए उन्हें वर्ष 2011 में साहित्य अकादमी द्वारा बाल साहित्य के क्षेत्र में समग्र योगदान हेतु पुरस्कृत पुरस्कृत किया गया।

राष्ट्र को समृद्ध बनाने में युवा पीढ़ी का योगदान अप्रतिम होता है, इसलिए युवावस्था से पूर्व ही, अर्थात बाल्यावस्था में ही बालकों के सर्वांगीण विकास का प्रयास करना चाहिए ताकि भविष्य में राष्ट्र निर्माण हेतु अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दे सकें। इसके लिए बाल साहित्य की आवश्यकता होती हैं । यूं कह सकते हैं कि जिस प्रकार बगीचें के सौन्दर्यीकरण हेतु माली, कच्चे घड़े हेतु कुम्भार, फसल हेतु स्वस्थ बीजों की जावश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार बालकों में संस्कार गढ़ने के लिए बाल–साहित्य की आवश्यकता होती है। तभी राष्ट्र प्रगति के पथ पर उन्मुख होकर विश्व गुरु के स्वपन को साकार करने में सफल होगा। इस सन्दर्भ में पूर्व प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू का कथन प्रासंगिक है कि– ''मैं हैरत में पड़ जाता हूँ कि किसी व्यक्ति या राष्ट्र का भविष्य जानने के लिए लोग तारों को देखते हैं। मैं ज्योतिष की गिनतियों में दिलचस्पी नहीं रखता। ''मुझे जब हिन्दुस्तान का भविष्य देखने कह इच्छा होती है तो बच्चों की आँखों और चेहरों को देखने की कोशिश करता हूँ। बच्चों के भाव मुझे भावी भारत की झलक दे जाते हैं।'' वास्तव में बालकों के सम्पूर्ण विकास के लिए बाल्यावस्था व शैशवास्था से ही प्रयास करना आवश्यक है क्योंकि इस अवस्था में बालकों में अनुकरण क्षमता, जिज्ञासा, कल्पनाशीलता का अंकुरण पराकाष्ठा पर होती है, जिसे सकारात्मक रूप प्रदान कर राष्ट्र निर्माण के विशाल प्रसाद की नींव को सुदृढ़ किया जा सकता है।

हमारे प्राचीन ऋषियों–मुनियों ने भी वाचिक परंपरा के माध्यम से गुरुकुलों में सरल–सुगम कविताओं पंचतन्त्र, हितोपदेश की कहानियों, जातक कथाऐं, ईसप लोक कथाओं आदि के माध्यम से पशु–पक्षियों, प्रकृति प्रेम तथा धर्म नैतिकता ज्ञान आदि का उपदेश मनोरंजन के माध्यम से प्रदान करते थे। परन्तु वर्तमान में वैज्ञानिक तर्कशीलता एवं भूमण्डलीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण .परिवर्तन बाल साहित्य के क्लेवर में भी परिवर्तन हुआ। वर्तमान परिदृश्य में यह परिवर्तन आवश्यक भी है ताकि बालक परिवर्तन की इस धारा में समाज से सामंजस्य स्थापित कर सकें साथ ही वैज्ञानिक सोच, सेल्फ डिफेंस (आत्मरक्षा), विविध सामाजिक राजनैतिक आर्थिक पहलुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकें। साथ ही कौशल विकास एकीकृत और समावेशी विकाश के इस दौर में वैश्वीकरण उदारीकरण निजीकरण की जो प्रक्रिया चल रही है इसके फलस्वरूप स्किल इंडिया, खेलों इंडिया, मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया जैसी अनेक योजनाऐं संचालित हो रही हैं, इनमें अपना योगदान कर सकें।

ऐसे में बाल साहित्यकारों का भी दायित्व गुरुतर हो गया है। इन्हें भी बाल साहित्य के परम्परागत विषयों में परिवर्तन करना होगा ताकि बालक अपनी रुचि के अनुसार 'बाल साहित्य' का अध्ययन कर मनोरंजन के साथ–साथ कैरियर की भी रंगीन तलिका को भर सकें। इस संदर्भ में बाल साहित्य डा. हरिकृष्ण देवसरे का कथन उद्धृत करना प्रासंगिक होगा कि– **''पुराने जमाने में राजा–रानियों, भूतों–प्रेतों और ठगों की कहानियों की भरमार थी। भूत–प्रेतों की कहानियों से जहाँ अंधविश्वास की विचार धारा का पोषण होता था, वहीं इसे व्यवसाय बनाकर ''ओझा'' का जीवन जीने वालों का स्वार्थ भी सिद्ध होता था किन्तु आज जब ये सब अंधविश्वास टूट चुके है तब फिर भूत–प्रेतों की काल्पनिक सुनहरी दुनिया में कुछ देर घुमाकर कुछ देर सुनहरे सपने दिखाकर क्या हम बच्चों को वास्तविक जीवन के कष्टों से संघर्ष करना**

सिखा सकतें हैं? परी कथाओं का काल्पनिक लोक क्या बच्चों को भावी जीवन स्वरुप के संघर्षो के प्रति अनभिज्ञ या निकम्मा नहीं बनाता?[4]

बाल साहित्य के संदर्भ में मेरा विचार यह है कि इसके प्रकृति में भी परिवर्तन की आवश्यकता है क्योंकि प्राचीन बाल साहित्य में बालिकाओं को राजा–रानी, गुड्डा–गुड़ियॉ या गृहस्थी से जुड़ी कहानियाँ (कथाएँ) सुनायी जाती थी, ताकि भविष्य में पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाहन के योग्य बनाया जा सकें परन्तु वर्तमान परिस्थितियॉ बदल गयी हैं। आधुनिक दौर 'महिला सशक्तिकरण और लैंगिक समानता का है।

प्रत्येक वह अभेद क्षेत्र जहाँ महिलाओं का प्रवेश वर्जित था आज उन क्षेत्रों में भी बालिकाएं व महिलाएं अपनी विजय पताका फहराकर नित नये कीर्तिमान बना रही हैं।

खेल का क्षेत्र हो या अंतरिक्ष, वायुसेना हो या 74वें गणतंत्र दिवस में कर्तव्यपथ पर नारी शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वाली बाइक राइडर, ''चेतना शर्मा'' हो या BSF की महिला टुकड़ी द्वारा ऊँट की सवारी हो, इन सभी अनगिनत महिलाओं के शौर्य गाथा को भी आधुनिक बाल साहित्य में समावेश करने की आवश्यकता है। साथ ही शिक्षा व नैतिक शिक्षा इनमें दोनों को ''बाल–साहित्य'' के पूरक बनाना होगा ताकि वर्तमान का बालक भविष्य में संवेदनशील व मानवीय गुणों से परिपूर्ण श्रेष्ठ नागरिक बन सकें।

आधुनिकता के इस दौर में पाठ्यक्रम को मानवीय व नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण बनाना चाहिए ताकि भोजन के प्रति समर्पण का भाव उत्पन्न हो सके। शादी–विवाह आदि समारोह में आवश्यकतानुसार भोजन थाली में परोसा जाये अन्यथा देश भुखमरी की ओर बढ़ेगा। प्रधानमंत्री द्वारा जनहित में जारी हेल्पलाइन नंबर 1098 कागजों में ही सिमट कर रह जायेगा। वर्तमान में जलवायु परिवर्तन आपदा प्रबंधन जैसी भयंकर पर्यावरणीय समस्या व गांधी गौतम के सिद्धान्तों से भी बालकों को परिचित कराना आवश्यक है।

वर्तमान सूचना व जन संचार की इस क्रान्ति में समाज भौतिकता की चकाचौंध में अपने जीवन व समाज के प्रति कर्तव्यों को भूल रहा है। प्राचीन सभ्यता, संस्कृति विरासत को विस्मृत कर विदेशी संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है। ऐसे में अपनी भारतीय संस्कृति से दूर होता जा रहा है। अतएव प्राराम्भक दौर से ही बाल साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल कर मनोरंजन व शिक्षा को समानान्तर लागू किया जाना चाहिए, जिससे बाल साहित्य की भी उपादेयता बनी रही। इसी के साथ अभिभावको और शिक्षकों को भी बाल–साहित्य में अभिरूच रखकर राष्ट्र निर्माण के महायज्ञ में योगदान देना होगा।

सन्दर्भ–सूची :–

1. वासुदेव प्रसाद नंदन : साहित्य का विश्लेषण, पृ0सं0 32, श्रीराम मेहता एंड कम्पनी, आगरा, सं0–1998।
2. डॉ अभिषेक कुमार जैन : हिन्दी बाल साहित्य प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टि, पृ0 30, संस्करण प्रथम–2000। (नीरज बुक स्टोर, दिल्ली)
3. डॉ0 सुरेन्द्र विक्रम : समकालीन बाल साहित्य पृ0–49।
4. डॉ0 हरिकृष्ण देवसरे–बाल साहित्य मेरा चिंतन अध्याय बाल विकास, दिशा बोध, पृ0–87।

उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों के मार्गदर्शन की आवश्यकता का अध्ययन

प्रियंका सिंह* डॉ. जितेन्द्र कुमार सिंह** ***शमीम अहमद******

सारांश : यह अध्ययन सर्वेक्षण अनुसंधान पद्धति के माध्यम से मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले में उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों के मार्गदर्शन आवश्यकता को लैंगिक आधार एवं परिवार के प्रकार के आधार पर जानना था। न्यादर्श चयन के लिए उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के कक्षा 11 वीं एवं 12 वीं में अध्ययनरत जनजातीय विद्यार्थियों को उद्देश्यपूर्ण न्यादर्श चयन पद्धति द्वारा चुना गया। कुल 148 जनजातीय विद्यार्थियों में 65 छात्र एवं 83 छात्रा विद्यार्थी शामिलथे। इसप्रकार 50 विद्यार्थी संयुक्त परिवार एवं 89 विद्यार्थी एकल परिवार से सम्बन्धित थे। शोधार्थी द्वारा विकसित की गई मार्गदर्शन आवश्यकता सूची का प्रयोग आकड़ा संग्रहण के लिए किया गया। सांख्यिकी विश्लेषण के लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलन एवं टी–परीक्षण का उपयोग किया गया। अध्ययन के परिणाम से यह ज्ञात हुआ कि उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकताओं में परिवार के प्रकार एवंलैंगिक आधार पर सार्थक भिन्नता है, साथ ही साथ मार्गदर्शन की विभिन्न पक्षों के आधार पर भी विद्यार्थियों के मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक भिन्नता है।

बीजशब्द :– मार्गदर्शन आवश्यकता,लैंगिग आधार,परिवार प्रकार,जनजातीय विद्यार्थी।

परिचय :– शिक्षा का उद्देश्य शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, शारीरिक आदि सभी क्षेत्रों में विद्यार्थियोंके इष्टतम विकास को बढ़ावा देना है। ताकि उन्हें उत्पादक और उपयोगी नागरिक बनाया जा सके। शिक्षा के शैक्षिक, व्यवसायिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक उद्देश्यों के को पूरा करने में मार्गदर्शन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। छात्र के अभिरुचि, अभिक्षमता, उपलब्धि के मजबूत पक्ष को जानने में, कक्षा–कक्षएवं कक्षा से बाहर के सीख और अनुभव एवं क्रियाओं का अपनी क्षमता के अनुसार ज्यादा से ज्यादा उपयोगी बनाने में, समाज के प्रति छात्र की भूमिका, अन्य व्यक्तियों, अन्य संस्कृतियों के साथ समायोजन करने में मार्गदर्शन छात्रकीसहायता करता है। साथ ही साथ छात्र इस दिशा में भी जानकारी प्राप्त कर पाते हैं कि विभिन्न प्रकार के शैक्षिक गतिविधियों एवं कौशलों के द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम क्या होगा तथा भविष्य में इसकी उपयोगिता कितनी सार्थक होगी। मार्गदर्शन निष्कर्ष नहीं देता हैअपितु एक मदद प्रदान करता है जिसके द्वारा सहायता प्राप्तकर्ता अपनी समस्या को हल कर सकता है। यानी मार्गदर्शन आत्मनिर्भर और स्व–निर्देशित होने का काम करता है। ''मार्गदर्शन और परामर्श, प्रत्येक छात्र के समग्र विकास को बढ़ावा देता है। प्रत्येक शिक्षक के लिए मार्गदर्शन उद्देश्य के साथ अपने कार्यों को पूरा करने के लिए 'मार्गदर्शन मानसिकता' आवश्यकता को महत्त्व देता है''(छब्म्त्ज्2015, पृष्ठ 2)। विभिन्न कारणों से जनजातीय विद्यार्थियों को मार्गदर्शन कीआवश्यकताज्यादा है क्योंकि भारत में जनजातीय साक्षरता दर, ड्रॉप्ड आउट रेशियो,सामाजिक आर्थिकस्तर,शारीरिक स्वास्थ्य आदिजनजातीय विद्यार्थियों के शिक्षा में बाधक तत्व हैं। रूपानाथ,आर. (2016) के अनुसार भारतीय शिक्षा प्रणाली आमतौर पर जनजातियों के स्थानीय भाषाओं को ध्यान में नहीं रखकर बनाई जाती। शिक्षा प्रणालीजनजातीय, सहित स्थानीय संस्कृतियों के समग्र विकास में विफल रही है। व्यक्तिगत विकास में व्यक्तिगत भाषा,संस्कृति एवं समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।शैक्षिक नीतियों में इसका स्थान न होने के कारण जनजातीय विद्यार्थियोंके शिक्षा से होने वाले विकास में बाधा आती है। श्रीहरि,एम.एवं जॉय,जे.(2014)के अनुसार जनजातीय विद्यार्थियों के ड्रॉप्ड आउट का कारण माता–पिता के द्वारा मादक पदार्थों का सेवन किया जाना, छोटी उम्र में जिम्मेदारियों का आ जाना, स्कूल के प्रति नकारात्मक भावना का होना। गंगेले,ए.(2019) के अनुसार भाषा का माध्यम, आदत की प्रकृति, सामाजिक कारण,परिवार की आर्थिक स्थिति, परिवार का वातावरण, जागरूकता की कमी, नियमित निरीक्षण का ना होना आदि जनजातीय विद्यार्थियों की शिक्षा में बाधक तत्व है। इन सभी समस्याओं से निपटने

***शोधछात्रा, शिक्षा विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म. प्र.।**
****सहायक आचार्य, हिंदी, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म. प्र.।**
*****प्रोफेसर–शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म. प्र.।**

के लिए विद्यार्थियों को अन्य सहायता के साथ मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। स्वस्थ मार्गदर्शन के द्वारा जनजातीय विद्यार्थियों के विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक, शारीरिक एवं व्यवसायिक बाधाओं को समझकर विद्यार्थियों की मदद किया जा सकता।

संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण :– डोड, वी.एवं अन्य(2022) कैरियर तत्परता इंग्लैंड में कैरियर मार्गदर्शन गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण अल्पकालिक परिणाम है। यह शोध (1) कैरियर तत्परता उपाय के विकास का विवरण देता है और (2) माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के बीच कैरियर मार्गदर्शन और कैरियर तत्परता के बीच संबंधों का परीक्षण करता है। यह जाँच इंग्लैंड में एक कैरियर मार्गदर्शन पायलट कार्यक्रम में भाग लेने वाले विद्यार्थियों पर किया गया जिनकी संख्या–5242 थी। कैरियर मार्गदर्शन के बीच संबंधों का परीक्षण किया गया।परिणाम में यह पाया गया कीकैरियर मार्गदर्शन गतिविधियों में अधिक भागीदारी कैरियर की तत्परता में वृद्धि के साथ काफी जुड़ी हुई थी। साहनी,एन. एवं बंसल,एस. (2012) ने एक अध्ययन किया इसका उद्देश्य हायर सेकेंडरी स्कूल के विद्यार्थियों के मार्गदर्शन आवश्यकता मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, सामाजिक, शैक्षिक, व्यक्तिगत, व्यवसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता का पता लगाना था। यह भी पता लगाना था कि लैंगिक आधार पर मार्गदर्शन आवश्यकता की स्थिति क्या है। प्रतिदर्श के लिए साधारण यादृक्षिक विधि द्वारा 100 विद्यार्थियों को चुना गया जिसमें 50 लड़के एवं 50 लड़कियां थी मार्गदर्शन आवश्यकता के लिए जे. एस. ग्रेवाल द्वारा विकसित मार्गदर्शन आवश्यकता सूची का उपयोग किया गया सांख्यिकी विश्लेषण के लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, टी–परीक्षण का उपयोग किया गया। परिणाम स्वरूप पाया गया कि बालक एवं बलिकायों दोनों में शारीरिक मार्गदर्शन आवश्यकता एवं सामाजिक मार्गदर्शन आवश्यकता अन्य मार्गदर्शन की अपेक्षा ज्यादा है। समग्र मार्गदर्शन आवश्यकता बलिकायों की अपेक्षा बालकों को अधिक है।

सिंह,आर. एवं वैलेंटिना,एल. (2014) प्रस्तुत अध्ययन मणिपुर के इंफाल जिले के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकता को जानने के लिए किया गया, जिसमें पूर्वी इंफाल एवं पश्चिमी इंफाल के विद्यालयों में से 30 विद्यालयों का चयन साधारण यादृक्षिक विधि के द्वारा किया गया।30 विद्यालयों में संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार में अध्ययनरत 25 þ विद्यार्थियों को चुना गया जिसमें 272 लड़के एवं 379 लड़कियां थी। डॉक्टर जे. एस. ग्रेवाल द्वारा विकसित मार्गदर्शन आवश्यकता इन्वेंटरी का उपयोग मार्गदर्शन आवश्यकता को जानने के लिए किया गया डेटा विश्लेषण के लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, औसत की गणना की गई।जेड टेस्ट यह जानने के लिए किया गया कि लैंगिक आधार पर विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकता की स्थिति क्या है। परिणाम स्वरूप यह पाया गया कि लड़कों को शारीरिक और शैक्षिक मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक है। इसी प्रकार से लड़कियों को व्यवसायिक उसके बाद शैक्षिक मार्गदर्शन की आवश्यकता ज्यादा है। इसी प्रकार लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन की आवश्यकता कम है। क्रिसन,सी. (2015). यह अध्ययन विश्वविद्यालय में कैरियर मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं के मूल्यांकन का अध्ययन था। अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित था।प्रतिदर्श के लिए विश्वविद्यालय के 130 विद्यार्थियों को लिया गया। जिसमें पॉलिटिकल,एडमिनिस्ट्रेशन, कम्युनिकेशन के विद्यार्थी शामिल थे। मात्रात्मक एवं गुणात्मकविधि के द्वारा डाटा का संग्रहण किया गया, जिसके लिए प्रश्नावली फोकस ग्रुप डिस्कशन एवं इंटरव्यू का उपयोग किया गया, परिणाम स्वरूप यह पाया गया कि विद्यार्थियों को कैरियर के अवसरों की जानकारी कम है इसी प्रकार विद्यार्थीयों की भविष्य की योजना एवं उनके वर्तमान क्षमता एवं ज्ञान कम जुड़ी है। विद्यार्थियों के पास सुसंगत कैरियर निर्माणयोजना नहीं है। विद्यार्थियों के लिए करियर मार्गदर्शक की आवश्यकता एवं योजना महत्वपूर्ण है।

उद्देश्य :–

1. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों का लैंगिक आधारपर अध्ययन करना।
2. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की समग्र मार्गदर्शन आवश्यकताओं का लैंगिक आधार पर अध्ययन करना।
3. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियोंकी मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों का परिवार प्रकार के आधार पर अध्ययन करना।
4. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की समग्र मार्गदर्शन आवश्यकताओं का परिवार के प्रकार के आधार पर अध्ययन करना।

परिकल्पना :–

1. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों में लैंगिक आधारपर कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की समग्र मार्गदर्शन आवश्यकताओं में लैंगिक आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।
3. उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों में परिवार प्रकार के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।
   उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की समग्र मार्गदर्शन की आवश्यकताओं का परिवार के प्रकार के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रविधि :– प्रतिदर्श–उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श चयन के द्वारामध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले सेउच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीयविद्यार्थी सम्मलित जो 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत थे। कुल 148 विद्यार्थियों में 65 छात्र एवं 83 छात्रा शामिल थेजिनका चयन प्रतिदर्श के रूप में किया गया।

उपकरण– आकड़ा संग्रहण के लिए शोधार्थी द्वारा विकसित किया गया उपकरण मार्गदर्शन आवश्यकता सूची का प्रयोग किया गया। यह सूचीमार्गदर्शन आवश्यकताओं के 6 क्षेत्रों मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, व्यवसायिक, शैक्षिक, शारीरिक, व्यक्तिगत मार्गदर्शन आवश्यकतों को जांचने का कार्य करता है। मार्गदर्शन आवश्यकता के इस सूची में 62 मद हैं।जिसमें उत्तरदाता के लिए तीन विकल्प दिए गएहैं। पहला विकल्प सहमत, दूसरा विकल्प स्थिर एवं तीसरा विकल्पअसहमत का है। किसी एक विकल्प पर उत्तरदाता अपनी प्रतिक्रिया दे सकता है। उपकरण का विश्वसनीयता का स्तर .89 है। सीमांकन –यह अध्ययन मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों जो कक्षा 11 वीं एवं 12 वीं के छात्र हैं तक सीमित रहेगा।

सांख्यिकी–यह टेस्ट उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों जो कक्षा 11वीं और 12 वीं में अध्ययनरत थे पर किया गया। इसके लिए विद्यालय के कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों से शोधार्थी के द्वारा मार्गदर्शन आवश्यकताओं पर चर्चा, मार्गदर्शन आवश्यकता सूची को समझाने के लिए किया गया कक्षामें एक अनुकूल वातावरण का निर्माण किया गया जिसमेंसहजता से छात्र अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त कर सकें।आकड़ा विश्लेषणके लिए मध्यमान, प्रमाणिक विचलनका उपयोग सांख्यिकी गणना के लिए तथा टी– टेस्ट का उपयोग संदर्भात्मक विश्लेषण के लिए किया गया है।

परिणाम एवं आलोचना–उद्देश्य–1: उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की लैंगिक आधार पर मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों का अध्ययन करना। टेबल 1 से यह स्पष्ट होता है– मार्गदर्शन आवश्यकता के विभिन्न पक्ष के आधार पर छात्र एवं छात्राओं के मार्गदर्शन आवश्यकता में भिन्नता है। मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन आवश्यकता में छात्रों का मध्यमान 21.86 एवं प्रमाणिक विचलन 1.78है तथा छात्रा विद्यार्थियों का मध्यमान 20.69 प्रमाणिक विचलन 2.26है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 3.43 है जो स्टैंडर्ड टेबल वैल्यू 0.05 स्तर पर सार्थक है। जिससे ज्ञात होता है– मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन आवश्यकता छात्राओं से छात्रों को अधिक है।

मार्गदर्शन आवश्यकता के क्षेत्र	छात्र संख्या 65		छात्रा संख्या 83		मुक्तान्श (df)	टी–वैल्यू (t-value)	सार्थकता स्तर (Significance level)
	मध्यमान Mean	मानक विचलन SD	मध्यमान Mean	मानक विचलन SD			
मनोवैज्ञानिक	21.86	1.78	20.69	2.26	146	3.43	0.05
सामाजिक	28.68	3.02	27.46	2.86		2.50	0.05
व्यवसायिक	32.52	2.66	32.59	2.95		.143	सार्थक नहीं
शैक्षिक	31.78	2.71	32.77	2.34		2.36	0.05
शारीरिक	20.97	2.65	21.92	1.86		2.54	0.05
व्यक्तिगत	28.51	3.00	29.63	2.61		2.42	0.05

सामाजिक मार्गदर्शन आवश्यकता में छात्रोंका मध्यमान 28.68एवं प्रमाणिक विचलन 3.02 है एवं छात्राओं का मध्यमान 27.46एवं प्रमाणिक विचलन 2.86है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 2.50है जो इस स्टैंडर्ड टेबल वैल्यू 0.05 स्तर पर सार्थक है। जिससे यहज्ञात होता है की छात्रों को अपेक्षाकृत छात्राओंसे सामाजिक मार्गदर्शन की आवश्यकता ज्यादा है। व्यवसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता मेंछात्रों का मध्यमान 32.52, प्रमाणिक विचलन2.66है एवं छात्राओं का मध्यमान 32.59, प्रमाणिक विचलन 2.95 है।कैलकुलेटेड टी– वैल्यू .143है जो स्टैंडर्ड टेवल वैल्यू 0.05 पर असार्थक है। परिणाम या दर्शाता है कि छात्रों को छात्राओं की अपेक्षा व्यवसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता अधिक है। शैक्षिक मार्गदर्शनआवश्यकतामें छात्रों का मध्यमान31.78, प्रमाणिक विचलन2.71एवं छात्राओं का मध्यमान 32.7, प्रमाणिक विचलन 2.34है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 2.36है जो स्टैंडर्ड टेबल टी– वैल्यू 0.05 के स्तर पर सार्थक है।परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है छात्राओं को छात्रों की अपेक्षा शैक्षिक मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक है। शारीरिक मार्गदर्शन आवश्यकता में छात्रों का मध्यमान 20.97, प्रमाणिक विचलन 2.65एवं छात्राओं का मध्यमान 21.92,प्रमाणिक विचलन 1.86है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 2.54है जो स्टैंडर्ड टेबल टी– वैल्यू 0.05 पर सार्थक है। अतः परिणाम स्वरुप यह ज्ञात होता है कि छात्र विद्यार्थीयों की अपेक्षा छात्रा विद्यार्थीयों को शारीरिक मार्गदर्शन आवश्यकता अधिक है। व्यक्तिगत मार्गदर्शन आवश्यकतामें छात्रों कामध्यमान 28.51, प्रमाणिक विचलन3.00 एवं छात्राओं कामध्यमान 29.63, प्रमाणिक विचलन2.61 है। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू 2.42है जो स्टैंडर्ड टेबल टी–वैल्यू 0.05 स्तर पर सार्थक है। अतः परिणाम स्वरुप यह ज्ञात होता है कि छात्राओं को छात्रों विद्यार्थीयों की अपेक्षा व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक है। इस प्रकार से मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्ष के आधार पर छात्रों एवं छात्राओंके मार्गदर्शन आवश्यकता में भिन्नता है।

उद्देश्य–2:उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की लैंगिक आधार पर समग्र मार्गदर्शन आवश्यकताओं का अध्ययन करना।

क्रं. संख्या	विद्यार्थी	संख्या	मुक्तान्श (df)	मध्यमान (mean)	मानक विचलन (sd)	टी–वैल्यू t-(value)	सार्थकता स्तर (Significance level)
1.	छात्र	65	146	164.32	8.83	.53	सार्थकत नहीं
2.	छात्रा	83		165.05	7.73		

टेबल–2 से स्पष्ट होता है कि छात्रों की संख्या 65 है जिनका मध्यमान 164.32 तथा प्रमाणिक विचलन8.83 है। इसी प्रकार छात्राओं की संख्या 83 है,मध्यमान165.05 एवं प्रमाणिक विचलन7.73 है। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू .53 है,जो स्टैंडर्ड टेबल वैल्यू 0.05 लेवल पर सार्थक नहीं। परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है कि उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों के समग्र मार्गदर्शन आवश्यकताओं में लैंगिक आधार पर सार्थक अंतर नहीं है।

उद्देश्य–3: उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों परिवार के प्रकार के आधार पर मार्गदर्शन आवश्यकताओं के विविध पक्षों का अध्ययन करना।

मार्गदर्शन आवश्यकता के क्षेत्र	संयुक्त परिवार के विद्यार्थी संख्या 50		एकल परिवार के विद्यार्थी संख्या 98		मुक्तान्श (df)	टी–वैल्यू (t-value)	सार्थकता स्तर (Significance level)
	मध्यमान Mean	मानक विचलन SD	मध्यमान Mean	मानक विचलन SD			
मनोवैज्ञानिक	21.94	1.86	20.83	2.18	146	3.07	0.05
सामाजिक	29.10	2.25	27.43	3.16		3.32	0.05
व्यवसायिक	31.78	3.30	32.96	2.47		2.44	0.05
शैक्षिक	31.16	2.41	32.94	2.42		4.22	0.05
शारीरिक	22.12	2.65	21.18	2.24		2.39	0.05
व्यक्तिगत	27.92	3.23	29.77	2.38		3.97	0.05

टेबल–3 से यह स्पष्ट होता है कि मार्गदर्शन आवश्यकता के विविध पक्ष के आधार पर जनजातीय विद्यार्थियों के परिवार के प्रकार के आधार पर मार्गदर्शन आवश्यकता में भिन्नता है। मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों का मध्यमान 21.94,प्रमाणिक विचलन1.86एवं एकल परिवारके विद्यार्थियों का मध्यमान 20.83,प्रमाणिक विचलन 2.18है। कैलकुलेटर टी– वैल्यू 3.07है, जो स्टैंडर्ड टेबल वैल्यू 0.05 के स्तर पर सार्थक है।अतः परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है कि मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार के विद्यार्थियों में सार्थक अंतर है। मनोवैज्ञानिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों को एकल परिवार के विद्यार्थियों से ज्यादा मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

सामाजिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के 50 विद्यार्थियोंका मध्यमान 29.10प्रमाणिक विचलन2.25एवं एकल परिवार के 98विद्यार्थियों का मध्यमान 27.43 प्रमाणिक विचलन 3.16है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 3.32 जो स्टैंडर्ड टेबल टी–वैल्यू 0.05 स्तर के मान पर सार्थक है। परिणाम स्वरूप ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों एवं एकल परिवार के विद्यार्थियों के सामाजिक मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक अंतर है।संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों को एकल परिवार के विद्यार्थियों की अपेक्षा सामाजिक मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक है।

व्यावसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार 50विद्यार्थियों का मध्यमान 31.78, प्रमाणिक विचलन3.30 एवं एकल परिवार के 98विद्यार्थियों का मध्यमान 32.96प्रमाणिक विचलन2.47है। कैलकुलेटेड टी–वैल्यू 2.44है जो स्टैंडर्ड टी– वैल्यू 0.05 के स्तर पर सार्थक है। परिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों एवं एकल परिवार के विद्यार्थियों के व्यावसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक अंतर है। संयुक्त परिवार के विद्यार्थियों की अपेक्षा एकल परिवार के विद्यार्थियों को व्यवसायिक मार्गदर्शन आवश्यकता अधिक है।

शैक्षिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के 50विद्यार्थियोंका मध्यमान 31.16, प्रमाणिक विचलन2.41एवं एकल परिवार के 98विद्यार्थियोंका मध्यमान 32.94 एवं प्रमाणिक विचलन2.42है। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू 4.22 है,जो स्टैंडर्ड टेबल टी–वैल्यूके 0.05 स्तर पर सार्थक है। परिणाम यह दर्शाता है की संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक अंतर है। संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवार के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक मार्गदर्शन आवश्यकता अधिक है। शारीरिक मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के विद्यार्थी 50 विद्यार्थियोंका मध्यमान 22.12, प्रमाणिक विचलन2.26 एवं एकल परिवार के 98विद्यार्थियों का मध्यमान 21.18एवं प्रमाणिक विचलन2.24 है। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू 2.39 है, जो स्टैंडर्ड टेबल टी–वैल्यूके 0.05 मानक स्तर पर सार्थक है। परिणाम यह दर्शाता है कि केउच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शारीरिक मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक अंतरहै। संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवार के विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत शारीरिक मार्गदर्शन की आवश्यकता कम है।

व्यक्तिगत मार्गदर्शन आवश्यकता में संयुक्त परिवार के विद्यार्थी 50विद्यार्थियोंका मध्यमान 27.90, प्रमाणिक विचलन 3.23 एवं एकलपरिवार के 98 विद्यार्थियों का मध्यमान 29.77एवं प्रमाणिक विचलन2.38 है। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू 3.60 है, जो स्टैंडर्ड टेबल टी–वैल्यूके 0.05 मानक स्तर पर सार्थकहै।परिणाम यह दर्शाताहैकिउच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के व्यक्तिगत मार्गदर्शन आवश्यकता में सार्थक अंतरहै। संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवार के विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत व्यक्तिगत मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक है।

उद्देश्य–4ः उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय के जनजातीय विद्यार्थियों की समग्र मार्गदर्शन की आवश्यकताओं का परिवार के प्रकार के आधार पर कोई सार्थक अंतर नहीं है।

क्रं. संख्या	विद्यार्थी	संख्या	मुक्तान्श (df)	मध्यमान (mean)	मानक विचलन (sd)	टी–वैल्यू t-(value)	सार्थकता स्तर (Significance level)
1.	संयुक्त	50	146	164	7.44	.77	सार्थकत नहीं
2.	एकल	98		165.10	8.59		

टेबल–4से यह स्पष्ट होता है कि संयुक्त परिवार के छात्र जिनकी संख्या 50, मध्यमान 164, प्रमाणिक विचलन7.44 एवं एकल परिवार के छात्र जिनकी संख्या 98, मध्यमान 165.10 प्रमाणिक विचलन 8.59। कैलकुलेटेड टी– वैल्यू .77 हैजो स्टैंडर्ड टेबल वैल्यू 0.05 स्तर परसार्थक नहीं है अतःपरिणाम स्वरूप यह ज्ञात होता है की संयुक्त परिवारऔर एकल परिवार के आधार पर विद्यार्थियों के संपूर्ण मार्गदर्शन आवश्यकताओं में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष :– प्रस्तुत अध्ययन का परिणाम यह दर्शाता है कि उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत जनजातीय विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, व्यावसायिक, शारीरिक व्यक्तिगत,एवं शैक्षिक मार्गदर्शन की आवश्यकता उनके व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास एवं विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन के लिए आवश्यक है। मार्गदर्शन आवश्यकता विद्यार्थियों के शैक्षिक अभ्यास,सकारात्मक सोच, विषय संबंधी समस्या इंगित करता है एवं छात्र को अपने भविष्य से संबंधित निर्णय लेने में मदद करता है। उच्चत्तर माध्यमिक स्तर पर अध्यनरत जनजातीय विद्यार्थियों की विभिन्न क्षेत्रों में मार्गदर्शन आवश्यकता को जानकार अध्यापक एवं प्रबंधन संस्था विद्यार्थियों का उचित सहयोग कर सके।

सन्दर्भ–ग्रंथ–सूची :–

1. Crisan, C. (2015).A NeedsA ssessment on Student' Career Guidance. *Procedia – SocialA nd Behavioral* Science 180,1022-1029. https://10.1016/j.sbspro.2015.02.196
2. Dodd,V.(2022) Increasing students' career readiness through career guidance: measuring the impact withA validated measure, *British Journal of Guidance & Counselling*, 50:2, 260-272, DOI: 10.1080/03069885.2021.1937515https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/03069885.2021.1937515
3. Gangele,A.(2019).The Tribal Education Status in India: Galore ChallengesA nd Issues. *Journal of Emerging TechnologiesA nd Research*.6(1),182-191. Retrieved from https://www.jetir.org/papers/JETIR1901A24.pdf
4. Joy,J.& Srihari,M.(2014).A Case Study on the School Dropout Schedules Trible Students of Wayanad District, Kerala. *Research Journal of Education Science*.2(3)1-6. Retrieved from https://www.researchgate.net/publication/312137276_A_Case_study_on_the_School_dropout_Scheduled_Tribal_students_of_Wayanad_District_Kerala
5. National Council of ResearchA nd Training (2015). GuidanceA nd Counselling. Department of Educational Psychology & Foundations of Education & RMSA Project Cell. Retrieved from https://ncert.nic.in/depfe/pdf/Guidelines_for_Guidance_and_Counseling.pdf.
6. Rupavath,R.(2016).Tribal Education:A Perspective form Blow. *SouthA sia Resaerch*.32(2),206-228. Dio:10.1177/0262728016638718. Retrieved from https://journals.sagepub.com/doi/abs/10.1177/0262728016638718?journalCode=sara
7. Sawhney, N. & Bansal, S. (2012).A Study of Guidance Needs in Relation to Gender of secondary School Student. *International Journal of Multidisciplinary Educational Research.* 4(12),92-100.Retrived from
8. Singh,R. & Valentina, L. (2014) Gender Differences in Guidance Needs of Senior secondary SchoolA dolescents of Imphal District. *International Journal of Education Sciences*,6(3),521-524.
9. Uniga, R. & Khanduri,G. (2020).A Study of Needs of Senior Secondary Students. *International journal ofA dvance Research (IJAR).* 8(01), 570-575. DOI:10.21474/IJAR01/10331. Retrieved from https://www.journalijar.com/article/31091/a-study-of-guidance-needs-of-senior-secondary-students/

ꕤ★ꕤ

कोरोना वायरस : एक वैश्विक महामारी

मनीषा चौहान*

सारांश :– कोरोना वायरस एक विश्वव्यापी महामारी है। इसकी शुरूआत एक नए प्रकार के वायरस (2019-nCoV) के संक्रमण के रूप में मध्य चीन के वुहान शहर में दिसंबर, 2019 में हुई। इस नए वायरस में 70 प्रतिशत जीनोम अनुक्रम वही पाये गये जो सार्स कोरोना वायरस में थे। कोविड–19 वायरस से विश्वभर में लाखों लोग की मृत्यु हो चुकी है। प्रोफेसर विल्सन ने कोविड–19 संक्रमण की चार श्रेणियां बताई हैं – पहली श्रेणी जिनमें लक्षण दिखाई नहीं देता, दूसरी श्रेणी जिनमें श्वसन नली के ऊपरी हिस्से में संक्रमण होता है, तीसरी श्रेणी में कोविड–19 पॉजिटिव लोग होते हैं, चतुर्थ श्रेणी में निमोनिया जैसी गंभीर बीमारी का रूप दिखाई देता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कोरोना वायरस के प्रसार को अंतर्राष्ट्रीय चिंता का विषय मानते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित किया गया। डब्ल्यु.एच.ओ. के अनुसार यह आपातकाल 2009 के एच.वन.एन.वन. के बाद छठा आपातकाल है। कोविड–19 वायरस से बचाव हेतु सरकार द्वारा आमजन को पूर्ण सावधानियां रखने हेतु विशेष आग्रह किया गया, जिससे कोरोना को बढ़ने से रोका जा सकता है।

शब्द कुंजी :– कोरोना, कोविड, वायरस, वैश्विक, संक्रमण, महामारी, चीन, स्वास्थ्य।

प्रस्तावना :– विश्व के इतिहास में बहुतों बार मानवजाति ने महामारी झेली है, परन्तु जिस प्रकार से कोविड–19 ने सम्पूर्ण विश्व को हिला कर रख दिया है, यह हम भली भांति जानते हैं। कोरोना वायरस विश्वव्यापी महामारी की शुरूआत एक नए किस्म के कोरोना वायरस (2019-nCoV) के संक्रमण के रूप में मध्य चीन के वुहान शहर में 2019 के मध्य दिसंबर में हुई। बहुत से लोगो को बिना किसी कारण निमोनिया होने लगा। तब चीनी वैज्ञानिकों ने बाद में कोरोना वायरस की एक नई नस्ल की पहचान की जिसे 2019-nCoV प्रारंभिक पदनाम दिया गया। इस नए वायरस में कम से कम 70 प्रतिशत वही जीनोम अनुक्रम पाये गये जो सार्स कोरोना वायरस में पाए जाते हैं।

20 जनवरी, 2020 को चीनी प्रीमियर ली केकियांग ने नॉवेल कोरोना वायरस के कारण फैलने वाली निमोनिया महामारी को रोकने और नियंत्रित करने के लिए निर्णायक और प्रभावी प्रयास करने का आग्रह किया। 14 मार्च 2020 तक दुनिया में इससे 5,800 मौंते हो चुकी थीं। 9 फरवरी तक व्यापक परीक्षण में 88,000 से अधिक पुष्ट मामलों का खुलासा हुआ था जिसमें से कुछ स्वास्थ्य कर्मी भी थे। 20 मार्च 2020 तक थाईलैंड, दक्षिण कोरिया, जापान, ताइवान, मकाऊ, हांगकांग, संयुक्त राज्य अमेरिका, सिंगापुर, वियतनाम, भारत, ईरान, इराक, इटली, कतर, दुबई, कुवैत और अन्य 160 देशों मे पुष्टि के मामले सामने आये हैं। 23 जनवरी 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्रकोप को अंतर्राष्ट्रीय चिंता का एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित करने के खिलाफ फैसला लिया। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यु.एच.ओ.) ने पहले चेतावनी दी थी कि एक व्यापक प्रकोप संभव था, और चीनी नव वर्ष के आसपास चीन के चरम यात्रा सीजन के दौरान आगे संचरण की चिन्ताएं थीं। कई नए साल की घटनाओं को संचरण के डर से बंद कर दिया गया है, जिसमें बीजिंग में निषिद्ध शहर, पांरपरिक मंदिर मेलों और अन्य उत्सव समारोह शामिल हैं। रोग की घटनाओं में अचानक वृद्धि ने इसके प्रसार और नुकसान पहुंचाने की क्षमता के बारे में अनिश्चितताओं से संबंधित प्रश्न उठाए हैं।

पहले संदिग्ध मामलों को 31 दिसंबर 2019 को विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यु.एच.ओ.) को सूचित किया गया था, रोगसूचक बीमारी के पहले उदाहरणों के साथ 8 दिसम्बर 2019 कोकेवल तीन सप्ताह पहले दिखाई दिया था। 23 जनवरी 2020 को वुहान को अलग रखा गया था, जिसमें वुहान के अन्दर और बाहर सभी सार्वजनिक परिवहन को निलंबित कर दिया गया था। 24 जनवरी से आस–पास के शहर हुआंगगाग, इझोड, चबी, जिंगझोउ और झीझियांग को भी अलग में रखा गया था। 30 जनवरी 2020 को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा

*** शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)**

कोरोना वायरस के प्रसार को अंतर्राष्ट्रीय चिंता का सार्वजनिक स्वास्थ्य आपातकाल घोषित किया गया। इस प्रकार का आपातकाल डब्ल्यु.एच.ओ. द्वारा 2009 के एच. वन. एन. वन. के बाद छठा आपातकाल है।

कोरोना वायरस क्या है ? – हाल ही में खोजे गये कोरोना वायरस से संक्रमित बीमारी का नाम कोविड–19 है। डब्ल्यु.एच.ओ. के अनुसार CO का अर्थ CORONA (कोरोना), VI का अर्थ VIRUS (वायरस), DI का अर्थ DISEAS (डिजीज) और 19 का अर्थ 2019 वर्ष से है, जिस साल में इस बीमारी की खोज हुई। इस वायरस को संक्षिप्त में कोविड–19 नाम दिया गया। कोरोना शब्द लैटिन भाषा के शब्द क्राउन से बना है, जिसका अर्थ क्राउन या मुकुट से है। कोरोना प्लाज्मा की एक आभा को भी कहा जाता है, जो सूर्य और अन्य सितारों के चारों ओर होती है। सूर्य को कोरोना बाहरी अंतरिक्ष में लाखों किलोमीटर तक फैला होता है और इसे सबसे आसानी से पूर्ण सूर्यग्रहण के दौरान देखा जाता है। लेकिन इसे कोरोना ग्राफ की मदद से भी साफ–साफ देखा जा सकता है।

जब वैज्ञानिकों ने कोरोना वायरस को इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप के जरिये देखा तो उन्हें वायरस क्राउन या सूर्य के क्राउन जैसा दिखाई दिया, दरअसल यह वायरस गोल है और इसकी सतह पर सूर्य के क्राउन की तरह प्रोटीन की स्टेंस अर्थात् शाखाएं उगी हुई हैं जो हर दिशा में फैलती हुई महसूस होती है ठीक जैसे कि सूर्य की आभा की किरणें, इसी कारण इसका नाम कोरोना रखा गया है। इसके अतिरिक्त कोरोना प्लाज्मा का एक चमकदार लिफाफा है जो सूर्य और अन्य खगोलीय पिंडों को घेरता है यह अंतरिक्ष में लाखों, किलोमीटर तक फैला हुआ है और आमतौर पर पूर्ण सूर्य ग्रहण के दौरान देखा जाता है। सूर्य के कोरोना का तीव्र तापमान अत्यधिक आयनित आयनों की उपस्थिति के कारण होता है जो इसे एक वर्णक्रमीय विशेषता देते हैं।

सूर्य का कोरोना अपनी दृश्य सतह की तुलना में बहुत अधिक गर्म है। कोरोना सूर्य की सतह पर समान रूप से विपरीत नहीं है और भूमध्य रेखा के साथ अधिक केंद्रित है। सूर्य के वायुमंडल के बाहरी भाग में मौजूद पदार्थ प्लाज्मा से बना है जिसका घनत्व बहुत कम है। कोरोना की संरचना सूर्य के आंतरिक भाग के समान है जो मुख्य रूप से हाइड्रोजन से बनी है लेकिन आयनित रूप है। इस प्रकार, इसमें अन्य परमाणुओं के साथ एक ही संरचना में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन होते हैं। कोरोना विकिरण उत्सर्जित करता है जिसे केवल अंतरिक्ष से देखा जा सकता है और मुख्य रूप से एक्स–रे के रूप में होता है।

कोरोना वायरस – संकेत और लक्षण :– पीड़ित व्यक्ति के संकेत और लक्षण नहीं भी हो सकते हैं। हालांकि लक्षण प्रकट करने वाले लोगो में बुखार, खांसी, सांस की तकलीफ और दस्त हो सकते हैं। 3 फरवरी 2019 तक गंभीर मामलों की संख्या 17,393 में से 2,278 है जिसमें 488 स्वस्थ हुए हैं। गंभीर संक्रमण के मामलों के परिणामस्वरूप निमोनिया, गुर्दे की विफलता और मुत्यु हो सकती है। श्वसन लक्षण जैसे कि छींकना, नाक या गले में खरास अक्सर कम होते हैं। लक्षणों की शुरूआत से लेकर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2 से 10 दिन और यूएस सेंटर फॉर डिसीज कंट्रोल एंड प्रिंवेंशन (सीडीसी) द्वारा 2 से 14 दिनों का अनुमान लगाया गया है। वुहान के अस्पतलों में भर्ती कराए गए पहले 41 पुष्ट मामलों में से 13 (32%) व्यक्तियों मे एक और पुरानी बीमारी थी, जैसे मधुमेह या उच्च रक्तचाप। कुल मिलाकर 13 (32%) व्यक्तियों को गहन देखभाल की आवश्यकता थी और 6 (15%) व्यक्तियों जिन लोगों की मृत्यु हुई उनमें से कई की स्थिति अन्य थी जैसे कि अधिक उम्र, उच्च रक्तचाप, मधुमेह या हृदय रोग जो उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली (इम्यून सिस्टम) को बिगाड़ा था।

कोरोना वायरस की शुरूआत :– नया कोरोना वायरस 2010 के आखिर में आनजान कारणों से निमोनिया जैसी बीमारी से सामने आया। बाद में पता चला कि इस बीमारी का कारण सीवियर एक्यूट रेस्पीरेटरी सिंड्रोम कोरोना वायरस 2 या सार्स कोरोना वायरस–2 है। शुरूआत में हल्की सर्दी–जुकाम जैसे लक्षण प्रकट होते हैं, विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यु.एच.ओ.) के मुताबिक कोरोना संक्रमित करीब 80 प्रतिशत लोग बिना किसी खास इलाज के ठीक हो जाते हैं। संक्रमित छह लोगों में से सिर्फ एक व्यक्ति गंभीर रूप से बीमार पड़ता है और वह सांस लेने में तकलीफ होने की स्थिति तक पहुंचता है। प्रोफेसर विल्सन के अनुसार कोविड–19 संक्रमण की चार श्रेणियां हैं – पहली श्रेणी में वे लोग हैं, जिनमें कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है। दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं, जिनमें श्वसन नली के ऊपरी हिस्से से संक्रमण होता है। इस स्थिति में संक्रमण से लोगों को बुखार, कफ, सिरदर्द या कंजंक्टीवाइटिस (आंख की बीमारी) आदि के लक्षण दिखाई देते हैं। इन लक्षणों वाले लोग संक्रमण

के वाहक होते हैं लेकिन संभवतः इन्हें इसकी जानकारी नहीं होती है। तीसरी श्रेणी में कोविड–19 पॉजिटिव लोग होते हैं, जिनमें निमोनिया जैसे लक्षण होते हैं, और इन्हें अस्पताल में रहना होता है, चौथी श्रेणी के लोगों में निमोनिया जैसी बीमारी का गंभीर रूप दिखाई पड़ता है।

कोरोना का प्रसार :– कोरोना वायरस मुख्य रूप से हवा की बूंदों के माध्यम से फैलता है जब एक संक्रमित व्यक्ति खांसी या लगभग 3 फीट (0.91 मीटर) से 6 फीट (1.8 मीटर) की सीमा मे भीतर छींकता है। वायरस आरएनए पहले पुष्ट मामले में से एकत्र मल नमूनों में भी मिला था, हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि क्या संक्रमण वायरस का फिकल–मौखिक संचरण भी होता है यह अन्य कोरोना वायरस (विषाणु) की तरह हैंडल और रेलिंग के माध्यम से भी फैल सकता है।

कोरोना वायरस से बचाव व उपाय :– अधिकारिक सलाह में आमतौर पर अच्छी व्यक्तिगत स्वच्छता और नियमित रूप से हाथ धोने के लिए कहने तक सीमित है। जो लोग खुद को संक्रमित होने का संदेह करते हैं, उन्हें सर्जिकल मास्क पहनने और चिकित्सा सलाह के लिए डॉक्टर को बुलाने के लिए कहा जाता है। बहुत सारे देशों ने या तो मुख्य भूमि चीन, हुबेई प्रांत या सिर्फ वुहान की यात्रा के खिलाफ चेतावनी जारी की है।

जनता ने अक्सर बहुत अधिक सावधानी बरती है जो स्वास्थ्य अधिकारियों द्वारा सलाह के मुताबिक – हांगकांग, जापान सिंगापुर और मलेशिया में स्वस्थ्य लोगों द्वारा सर्जिकल मास्क का व्यापार रूप से उपयोग किया जा रहा है। लोग उत्पादों को खरीद रहे हैं जैसे सेनेटरी, हैंड सेनिटाईजर और डिस्इंफेक्शन जिससे लोग अपने हाथों और कपड़ों को साफ रखना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त लोग मुख्य भूमि चीनी लोगों के संपर्क से बच रहे हैं। सरकार द्वारा निम्न सावधानियां बरतने से कोरोना को बढ़ने से रोका जा सकता है।

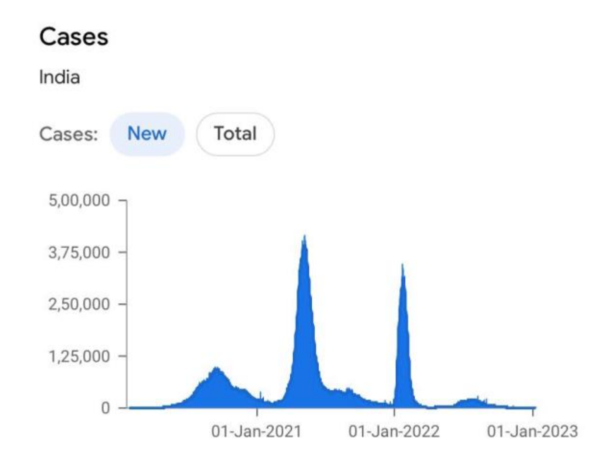

आरेख 1 : भारत में कोरोना से जनवरी 2023 तक संक्रमित लोगों का आंकड़ा

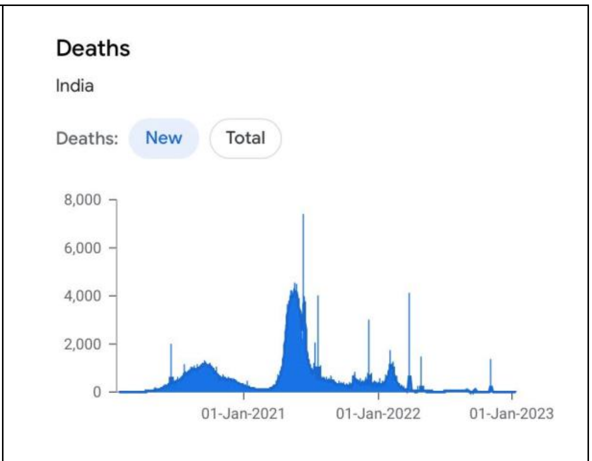

आरेख 2 : भारत में कोरोना से जनवरी 2023 तक मृतकों का आंकड़ा

संदर्भ सूची –

1. प्रेमचंद्र स्वर्णकार, महामारी कोरोना और वायरस जनित रोग, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
2. A. L. Jazzeera, Which Countries Name Confirmation Cases of New Corona Virus, 2020
3. Jane Parry, China Corona Virus Cases Surge as official Admits Human to Human Transmission, British Medical Journal, 2020
4. W.H.O., Statement on the Second Meeting of the International Health Regulation, Emergency Committee Regarding the Outbreak of Novel Corona Virus, 2020
5. T. Singhal, A Review of Corona Virus Disease 2010 (COVID-19), The Indian Journal of Paediatrics, 2020
6. Mukundraj B. Patil & Vikas D. Ragole, COVID-19 Pandemic and India, Notion Press Publication, 2021
7. Dr. Joseph Mercola & Ronnie Cummins, The Truth About COVID-19: Exposing The Great Reset, Lockdowns, Vaccine Passports, and the New Normal, Chelsea Green Publishing Com. 2021
8. Thierry Malleret & Klaus Schwab, COVID -19 : The Great Reset, Agentur Schwesiz, 2020

❧★❧

स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता

डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय *

आधुनिक हिंदी कविता स्वाधीनता आंदोलन की बगलगीर है। इसमें कवि जन–मनोभाव केंद्रीय भूमिका का निर्वहन कर रहे थे। हम अवगत हैं कि जनता के मनोभावों की निर्मित की सामाजिक–ऐतिहासिक प्रक्रिया होती है जो जनता की जीवन–स्थितियों का प्रतिफलन होती है। किसी भी पराधीन समाज या राष्ट्र की जनता की जीवन–स्थितियों की कल्पना सहज ही की जा सकती है। इन अकल्पनीय स्थितियों में मनोभावों का काव्य–रूप प्रकटीकरण मात्र विरेचन प्रक्रिया का अंग नहीं है। इसमें जनता के संघर्ष की जिजीविषा का लेखा–जोखा होता है। पराधीन देश के नागरिकों की सबसे बड़ी हानि आत्म–सम्मान की होती है। आत्म–सम्मान की रक्षा का भाव नागरिकों में संगठन और कौमी एकता को स्थापित करता है। आत्म–सम्मान की रक्षा की सांगठनिक चेतना में मुक्तिकामी स्वर–बीज अंकुरित होते हैं जो कला और क्रिया, दोनों में रूपों में प्रकट होते हैं। कलारूप का आशय हम यहाँ कविता से और क्रिया–रूप को सामाजिक–राजनैतिक आन्दोलन के रूप में ग्रहण करेंगे। इस सन्दर्भ में प्राथमिक तौर पर दो बातों को स्पष्ट करना आवश्यक है। पहली बात यह कि जब हम 'आधुनिक कविता' कहते हैं इसमें आधुनिकता से हमारा क्या अभिप्राय है? और दूसरी बात यह है कि स्वाधीनता आंदोलन से आधुनिक हिंदी कविता का क्या अंतर्संबद्धता है? आधुनिकता के अभिप्राय में हम भाववाद के जगह पर वस्तुवाद या भौतिकता, धर्म के जगह पर विज्ञान और ईश्वर की जगह पर मनुष्य– इन तीन बुनियादी बातों को ध्यान में रखेंगे (समाजविज्ञान के लोग अन्य लक्षणों का उल्लेख भी कर सकते हैं)। अर्थात् जिस व्यक्ति के विचारों या साहित्य के भीतर तार्किकता हो; बौद्धिकता हो, जो वैज्ञानिक चेतना से संपन्न हो, जो मनुष्य और मनुष्यता की ओर केन्द्रित हो और, उसे हमें आधुनिक मान लेना चाहिए। किसी भी समाज, देश और मनुष्य के भीतर स्वाधीनता की भावना तभी जग सकती है जब सबसे पहले उसे यह बोध हो कि वह पराधीन है और यह बोध बिना आधुनिक चेतना जाग्रत नहीं हो सकता है । आधुनिकता के इस निहितार्थ अट्ठारह सौ सत्तावन का स्वाधीनता संग्राम पराधीनता बोध से मुक्त होने पहला बड़ा प्रयास था। हमने गुलामी के विरुद्ध एक संघर्ष शुरू किया, एक चेतना ने जागृत हुई और इसके पार्श्व में आधुनिक–चेतना का व्यापक प्रभाव था । इस चेतना के कारण ही अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति हेतु समस्त कारक तत्व इकट्ठा हो गये । इस क्रांति का पूर्वाभास इंग्लैंड के एक मजदूर नेता को 1851 ई. में ही हो गया था, जिसका नाम था– अर्नेस्ट जोन्स। इसी वर्ष भारत पर उसने एक कविता 'द न्यू वर्ल्ड' (एक नई दुनिया) शीर्षक से लिखी । इस कविता को जेल में रहते हुए जोन्स ने अपने खून से लिखा था । इस कविता को समस्त विवरणों के साथ डॉ. रामविलास शर्मा ने 'सन् सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद' नामक पुस्तक में अनुवाद समेत इस प्रकार दिया है,

> "Victorious deluge ! from a hundred heights,
> Rolls the fierce torrent of a people's rights,
> And Sepoy soldiers, waking, band by band,
> At last remember they've a fatherland !
> Than flies the huxtering judge, the pandering peer,
> The English pauper, grown a nabob here !
> Counting-house tyranny, and pedlar-pride,
> While blasts of freedom sweep the country wide !

(विजयी सैलाब! सैकड़ों पर्वतों से जनता के अधिकारों की दुर्धर्ष नदी बहती है।/सिपाही जागते हैं, एक बाद दूसरी पलटन जागती,/अंत में उन्हें याद आ गया है की उनकी भी एक मातृभूमि है।/तब वहाँ से भागते हैं पैसे के लोभी जज, ऐयाश लार्ड,/वे मुफलिस अंग्रेज जो यहाँ आकर नवाब बन गये थे।/अत्याचारी महाजन और घमंडी व्यापारी भागते हैं,/जब सारे देश में स्वतंत्रता का दुंदुभिघोष फैल जाता है ।)"[1]

***सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, हरियाणा।**

इस कविता में भारत की सेना ब्रिटिश फ़ौज को खदेड़ रही है, ऐसी वह कल्पना करता है। यह कविता एक स्वप्न कथा है। इस कविता में एक पराधीन देश के प्रति दूसरे देश के पराधीन मजदूर नागरिक का सहज भातृत्व और मुक्ति–सन्देश है। अंग्रेजी शासन की लूट और बर्बरता को रेखांकित करते हुए कविता की भूमिका में ऐतिहासिक और मर्मस्पर्शी बात जोंस द्वारा कही गयी है 'ऑन इट्स कॉलोनीज द सन नेवर सेट, बट द ब्लड नेवर ड्राई' अर्थात् अंग्रेजों के साम्राज्य में सूरज कभी अस्त नहीं होता किंतु यह भी सच है कि उनके साम्राज्य में धरती पर खून भी नहीं सूखता। जोंस की कल्पना के अनुरूप अंग्रेजी शासन की बर्बर व्यवस्था के विरुद्ध अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति खड़ी हो गयी। अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति का व्यापक प्रभाव हुआ। यदि अट्ठारह सौ सत्तावन या समूचे स्वाधीनता आंदोलन को अगर सिर्फ यह मान लिया जाए कि वह सिर्फ और सिर्फ एक राजनैतिक चेतना थी, ऐसी धारणा एकांगी ही मानी जाएगी। हम अंग्रेजों के विरुद्ध राजनैतिक रूप से लड़ रहे थे, यह बिल्कुल सही बात है और चूँकि एक बड़ा शत्रु हमारे सामने था तो हम एक साथ, एक जगह हो कर लड़ रहे थे। लेकिन, इसके साथ सामाजिक चेतना का जो प्रादुर्भाव हुआ वह भी उतना ही महत्वपूर्ण है क्योंकि बिना सामाजिक जागृति के कोई भी स्वाधीनचेता आंदोलन सफल नहीं हो सकता है। दुनिया भरके आंदोलनों के ज़मीन का अध्ययन करने से सामजिक–मुक्ति और राजनैतिक–मुक्ति के अंतरावलंबन के अंतः सूत्र स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं। कई आलोचकों और विचारकों ने इस ओर पहले भी इंगित किया है। स्वाधीनता आन्दोलन में अनुस्यूत सामाजिक और राजनैतिक मुक्ति की निरंतरता का प्रभाव आधुनिक हिंदी कविता पर भी है। इस प्रवृत्ति को लक्षित करते हुए ही नामवर सिंह ने छायावाद को परिभाषित किया, ''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।''[2] ये दोनों मुक्ति धाराएँ अट्ठारह सौ सत्तावन से एक साथ चल रही थीं। इस प्रक्रिया के मूल में एक विलक्षण मानवीय और सामाजिक भावात्मक–वैचारिक गठबंधन जनता के बीच स्थापित हो जाना था। इस प्रक्रिया को साहित्यिक अवधारणा या मूल्य के रूप में 'जनता के जीवन–संघर्षों का साधारणीकरण' कह सकते हैं। ऐसा कहने का ठोस कारण है कि जब भी कोई बड़ा आंदोलन खड़ा होता है तो जो भी सामाजिक वैमनस्यता, धार्मिक–जातिगत–वर्गीय भेदभाव और कुरीतियाँ होती हैं वे आंदोलन की गतिकी में स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं। अट्ठारह सौ सत्तावन ने भी बहुत सारी कुरीतियों को समाज से विलोपित किया और एक 'नेशनहुड' या राष्ट्रीयता की भावना का उन्मेष किया। इसीलिए रामविलास शर्मा ने अट्ठारह सौ सत्तावन को हिंदी नवजागरण की धुरी कहा है। इस आंदोलन ने एक व्यापक साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का निर्माण किया। इससे भारतीय जनमानस में आत्म–सम्मान और अधिकार के भाव का बीजवपन हुआ। 'पयामे–आज़ादी' की चर्चा के बिना आधुनिक हिंदी कविता की विचार–भूमि तरतीब नहीं प्राप्त कर सकती है। 'पयामे–आज़ादी' कविता में वे सभी तत्व हैं जिसके आधार पर इसे राष्ट्रीय चेतना निर्माण की प्रथम हिंदी कविता कह सकते हैं। जिस गौरवबोध और अधिकार भाव के संचरण के साथ–साथ कौमी एकता का राग इसमें मिलता है, वही इसे अनूठा बनाता है। इतनी मुखरता के साथ पहली बार अजीमुल्ला खाँ कह रहे थे कि 'हम हैं इसके मालिक हिंदुस्तान हमारा है'। इस कविता की भाषा, भाव–प्रवणता और वैचारिकता पर विचार करते हुए यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि काश! परवर्ती हिंदी कविता 'पयामे–आज़ादी' के रास्ते पर चली होती तो इसका रंग व प्रभाव और भी गहरा होता। 'पयामे–आज़ादी' के रचयिता अजीमुल्ला खाँ रईस परिवार से संबंधित नहीं थे। उनके पिताजी एक राजमिस्त्री थे। एक हवाला मिलता है कि अंग्रेजी अधिकारियों ने इनके पिता को छत से धक्का देकर गिरा, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी थी। यह कविता (तराना) अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति का घोषणा–पत्र है। अजीमुल्ला खाँ अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के सूत्रधारों में से एक थे। इंग्लैंड के मजदूर नेता अर्नेस्ट जोंस की कविता (जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है) और 'पयामे–आज़ादी' को मिलाकर पढ़ने से अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति के परिवेश और परिस्थिति को समझा जा सकता है । जेल में बंद अर्नेस्ट जोंस कल्पना करता है कि जो चाटुकार हैं; जो भ्रष्ट जज हैं; वे सब भाग रहे हैं और भारतीयों को यह पता चल गया है कि उनका एक फादरलैंड है, उनकी अपनी एक जमीन है, और हिंदुस्तान अंततः आज़ाद हो जाता है।

अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति से पहले जोंस की कविता भारत में क्रांति हेतु निर्मित परिवेश को बयान कर रही थी। 'पयामे–आज़ादी' और अर्नेस्ट जोंस की कविता 'द न्यू वर्ल्ड' में अद्भुत भाव–साम्य मिलेगा। अजीमुल्ला खाँ ने इंग्लैड में पढ़ाई अवश्य की थी लेकिन जोंस से उनकी कोई मुलाकात हुई थी, इस पर संशय है। वस्तुतः दुनिया के किसी भी कोने में बसा आधुनिक व्यक्ति प्रत्येक स्तर पर मनुष्य की मुक्ति में विश्वास रखता है। कोई ऐसा व्यक्ति आधुनिक नहीं हो सकता जो सबकी मुक्ति में विश्वास न रखता हो। यदि ऐसा नहीं है, तब ऐसे मनुष्य की आधुनिकता पर एक स्वाभाविक संदेह अवश्य ही होना चाहिए; उस व्यवस्था और विचारधारा पर भी संदेह होना स्वाभाविक ही है। 'पयामे–आज़ादी' राष्ट्रीय भावधारा की सामाजिक और राजनैतिक चेतना के साथ राष्ट्रीय चेतना के निर्माण की पुष्टि करती है। इसमें एक झंडे के नीचे सभी जातियों, समूहों, धर्मों और मान्यताओं के लोगों को एकत्रित दिखाया गया है। जिस 'एकछत्र–राज' पदबंध का प्रयोग हमारा लोक करता है, वह छत्र 'पयामे–आज़ादी' में झंडे के रूप दर्शाया गया है। 'पयामे–आज़ादी' शीर्षक का निहितार्थ ही समस्त कार्य–उद्योग की भूमिका है; यहीं पर कलारूप और क्रिया–विधि का एकीकरण रूपायित होता है। अजीमुल्ला खाँ का तराना भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और कौमी एकता का घोषणा–पत्र माना जाना चाहिये । यह तराना इस प्रकार है, "हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,/पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।/ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,/इसकी रूहानियत से, रौशन है जग सारा;/कितना कदीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,/करती है जरखेज़ जिसे, गंगो–जमन की धारा।/ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,/नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा;/इसकी खानें उगल रही, सोना, हीरा, पारा,/इसकी शानो शौकत का, दुनिया में जयकारा ।/आया फ़िरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,/ लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा;/ आज शहीदों ने है तुमको, अहले वतन पुकारा,/तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।/ हिन्दू, मुसलमां, सिख हमारा भाई–भाई प्यारा,/ ये है आजादी का झन्डा, इसे सलाम हमारा/ये है आजादी का झन्डा, इसे सलाम हमारा।"[3] यहाँ पर संदेह और संशय की कोई गुंजाइश नहीं बची है कि अट्ठारह सौ सत्तावन से पहले सामाजिक–वैचारिकी और क्रियाविधि की अंतर्दृष्टि का विकास हो चुका था। कविता इस वैचारिकी और क्रियाविधि का अवलम्ब बन रही थी।

भारतेंदु–युग की साहित्यिक–चेतना का विकास ही अट्ठारह सौ सत्तावन की छाया हुआ। यह अचानक और अकारण नहीं था कि भारतेंदु–युग में 'भारत' शीर्षक का प्रयोग बहुधा होने लगा। भारतेन्दु के 'अंधेर नगरी' तथा 'भारत–दुर्दशा' (1881) और प्रेमघन के 'भारत–सौभाग्य' (1888) के प्रकाशन में गौण समयावधि का अंतराल है। किन्तु, इसमें राजनैतिक और सामाजिक चेतना के निर्माण के नजरिये से लघु अवधि में भी सुदीर्घ संघर्ष की कार्य–योजना दिखेगी। आधुनिक कविता या साहित्य मूल गुण–धर्म में आलोचनात्मक है। इस आलोचनात्मक विवेक की निर्मिति इस युग में होती है। अंग्रेजी हुकूमत और शासन व्यवस्था की गहरी आलोचना 'अंधेर नगरी' और 'भारत–दुर्दशा' में मिलेगी। 'अंधेर–नगरी' में बाज़ार का दृश्य इसका प्रमाण–है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि बाज़ार का यह दृश्य काव्य–केन्द्रित है। ध्यातव्य है कि अंधेर नगरी में 'चूरन साहब लोग जो खाता सारा मुल्क हजम कर जाता है' जैसा कथन किसी पढ़े–लिखे या संभ्रांत व्यक्ति ने नहीं कहा है अपितु अनपढ़ और आम नागरिक अंग्रेजी शासन व्यवस्था की आलोचना कर रहे हैं। अन्योक्ति और व्यंग्य सत्ता की आलोचना की सबसे कारगर विधायें हैं। आधुनिक हिंदी कविता में भी इस शैली का क्रमिक विकास होता गया है। अंग्रेजीराज और सामंतवाद की आलोचना या विरोध के लिए प्रत्येक युग के कवियों ने इस विधा का खूब प्रयोग किया है, इस विधा और काव्य–पद्धति का प्रयोग आज भी कवि प्रतिरोध–सर्जना और व्यवस्था की विसंगति को उजागर करने के लिए कर रहे हैं। अट्ठारह सौ सत्तावन की प्रभावाभिव्यंजना और पराधीनताबोध की पीड़ा के कारण 'अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी, पै धन विदेस चली जाए यह अति ख्वारी' जैसी पंक्ति लिखी जाती है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि भारतेन्दुकालीन कविता ब्रजभाषा के प्रभाव में ही थी, लेकिन जहाँ भी अंग्रेजीराज की आलोचना दिखती है वहाँ पर कविता और नाटक की काव्य–पंक्तियाँ खड़ी बोली का आश्रय लेती हैं। अट्ठारह सौ सत्तावन के बाद का साहित्य राजनैतिक और सामाजिक जागरण की मुखरता का साहित्य है इसलिए ही बालकृष्ण भट्ट

ने 'साहित्य को जन समूह के हृदय का विकास' कहा है। यह मान्य तथ्य है कि बिना सामाजिक जागरण के जनसमूह के हृदय का विकास संभव नहीं है। सन'57 की घटना के उपरांत जनभागीदारी और यत्र–तत्र एकल प्रयासों से स्थापित सामाजिक और राजनैतिक संगठनों का उभार होता है। इन संगठनों ने कवियों और लेखकों को अंग्रेजीराज की आलोचना का बल और साहस दिया। स्वाधीनता आंदोलन के ज्वार के साथ–साथ कविता में भी राजनैतिक–सामाजिक जागरण का स्वर प्रबल होने लगा। बालमुकुंद गुप्त की एक कविता 'कर्जन–फुलर' है जिसकी चर्चा हिंदी साहित्य में लगभग नहीं होती है। कविता इस प्रकार है, "मास नवम्बर कर्जन लाट। उलट चले शासन की ठाट।/फुलरजंग को गद्दी देकर। चल दिए अपना सा मुँह लेकर।/फुलरजंग ने की वही जंग। सब बंगाल हो गया दंग।/लड़कों ने की खूब लड़ाई। गुरखों की पलटन बुलवाई।/किया मातरम् बंदे बंद।/और सभाएँ रोकी चंद।/ अंत तलक लड़कों से लड़े।/आखिर को को उलटे मुँह पड़े।/ पकड़ा पूरा एक न साल।/ आप गये रह गया अकाल।"[4] इसमें बंगाल विभाजन का तीखा प्रतिरोध में है। कविता 'वंदेमातरम्' के उद्घोष और सभाओं पर पर लगायी गयी पाबंदी की सरकारी नीति का प्रतिरोध करती है। इस कविता में हिंदी प्रदेश के बाहर की घटनाओं पर खड़े जनांदोलनों की वैचारिक छाप है और राष्ट्रीयता की चेतना एवं सामूहिकता के सरोकारों का प्रतिबिम्बन है। बालमुकुंद गुप्त 'शिवशंभु के चिट्ठे' के कारण अधिक लोकप्रिय हैं किन्तु इनकी कविताएँ ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शीर्ष नेतृत्व और उसकी नीतियों की आलोचना करती हैं। 'प्रिंस आफ वेल्स', 'मिन्टो–मार्ली' शीर्षक जैसी कविताएँ स्वाधीनता आंदोलन की उष्मा को विस्तारित करती हैं। स्वाधीनता आदोलन के साथ चल रही हिंदी कविता सामाजिक–मुक्ति के दायित्व को गंभीरता से नियमित कर रही थी। पराधीनता और भेदभाव, जाति–धर्म का कोई भी स्वरूप यहाँ स्वीकारणीय नहीं था । धार्मिक कट्टरता राष्ट्रीय एकता में एक बड़ी बाधा थी। इस कुत्सित भावना और विचार से समाज की विभेदनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिलने से सामाजिक एकता खंडित होती और अंततः स्वाधीनता आंदोलन कमजोर होता; इसके लिए आवश्यक था कि समाज में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना का प्रयास–प्रचार किया जाये। सामाजिक–जागरण के प्रयासों में धर्म के ऊपर मनुष्य–भाव को स्थान देने का उपक्रम आरंभ हुआ और धार्मिक जड़ता और उन्माद की आलोचना कविता में उद्भासित होने लगी।

जिस प्रकार भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की राजनीति की चरणबद्ध प्रक्रिया हिंदी कविता दिखायी पड़ती है, उसी प्रकार सामाजिक जागरण की चरणबद्ध प्रक्रिया भी हिंदी कविता में उपस्थित है। सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन को मिलाकर ही स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी कविता की मुक्कमल तस्वीर बनती है। भारतेन्दु–युग में विस्तृत 'जनसमूह के हृदय' में द्विवेदी–युग में 'ज्ञान–राशि का कोष' संचित किया जाने लगा। इसीलिए रामविलास शर्मा ने द्विवेदी–युग को हिंदी साहित्य का 'ज्ञान–कांड' कहा है। यही संचित कोष आचार्य शुक्ल के यहाँ जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब बन जाता है। जाहिर है जनता की चित्तवृत्तियाँ जिस कोष से निर्मित होती हैं, वे विशद सामाजिक–राजनैतिक घटनाओं का अर्जन हैं। द्विवेदीयुगीन कविता पर यह आरोप लगता है कि वह इतिवृत्तात्मक है; स्थूल और कलात्मक रूप से शिथिल कविता है। इस युग की कविता एक सरल रेखा–सी प्रतीत होती है। एकबारगी इन आरोपों और तथ्यों से हम सहमत भी हो जाते हैं। यह सत्य भी है कि इस युग की कविताएँ शिल्प और संरचना की दृष्टि अपनी पूर्ववर्ती और अनुवर्ती युग की कविताओं से अपेक्षाकृत सरल हैं। किंतु इस युग की कविताओं पर विचार करते हुए हमें कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। यहाँ पर आकर हिंदी कविता में विषय–बहुलता दिखायी पड़ती है; सरल–सी प्रतीत होने कविताओं की आंतरिक संरचना में समूहबद्धता का विशेष गुण प्रवाहित होता हुआ मिलेगा। इस युग में स्वाधीनता के जनांदोलन से साहचर्य करती हुई कविता जनकंठी हो गयी। इस युग में ही रीतिकाल के भव्य–प्रासाद से कविता बहिर्गमन कर जनप्रिय होती है। इन कविताओं ने टोलियों से लेकर हजारों–लाखों की संख्या में आंदोलन में भागीदार हुई जनता को समूहबद्ध और स्वरबद्ध करने अपूर्व भूमिका निभायी। इस युग की कविताओं को समूह–गान की कविता भी कहा जा सकता है। जनांदोलन को एक स्वर और एक लक्ष्य करने में जटिल संरचना में आबद्ध कविताएँ बहुत कारगर नहीं हो पाती हैं; भले ही वे साहित्य के कलात्मक प्रतिमानों पर कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हों। अपनी संरचना में अत्यंत सरल प्रतीत

होती कोई कविता किसी विशेष परिवेश में अपना अद्वितीय प्रभाव छोड़ती है; उदाहरण और सन्दर्भ के लिए गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' की कविता 'हमारा प्यारा हिंदुस्तान', माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा', रामनरेश त्रिपाठी की 'मातृभूमि की जय' आदि कविताओं को देखा जा सकता है। इस समूहगान की काव्यधारा की कुछ बुनियादी शर्तें हैं, जिसमें छूआछूत, जाति–पाँत, ऊँच–नीच, धार्मिक भेदभाव का त्याग निहित हो । भारतीय समाज की इन समस्याओं को द्विवेदी–युग के कवियों ने 'नरक–निदर्शन' की श्रेणी की रखते हुए इसकी गंभीर आलोचना की है, "हम सब एक पिता के पूत।/हा! विशाल मानव–मण्डल में, उपजे उद्धत ऊत,/मान लिये इन मतवालों ने, भिन्न–भिन्न मत–भूत।/ सामाजिक बल को लग बैठी, छल की छूत अछूत,/जल कर जाति–पांति ने तोड़ा, सुख–साधन का सूत।/ प्रभुता पाय दहाड़ रहे हैं, सबल रुद्र के दूत,/ पिण्ड पड़ी कुटिला कुनीति की, रोष–भरी करतूत।/ भड़क रही तीनों नरकों में, अड़ की आग अकूत,/'शंकर' कौन बुझावे इस को, बिन विवेक–जीमूत।"[5] उन्हें इस बात का भान हो चुका था कि बिना सामाजिक समानता के समूहबद्धता संभव नहीं है और बिना सामूहिक चेतना के राजनैतिक मुक्ति दिवा–स्वप्न ही कही जायेगी। इस युग के कवियों में कालबोध और देशबोध के कारण वर्गीय चेतना भी स्पष्ट रूप से लक्षित की जा सकती है। इस विचार–भूमि के आलोक में देखने से यह ज्ञात होता है कि अट्ठारह सौ सत्तावन की स्मृति और इसकी क्रांतिकारी अंतर्धारा समाप्त नहीं हुई थी। वस्तुतः राजनीति और साहित्य में इसकी उपस्थिति सदैव विद्यमान रही है। सुभद्राकुमारी चौहान के यहाँ द्विवेदी–युग की काव्य–प्रवृत्ति का विस्तार है। अट्ठारह सौ सत्तावन की प्रभावजीविता को व्यंजित करने वाली रानी लक्ष्मीबाई पर केन्द्रित उनकी कविता को भला कौन भूल सकता है, "चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी/बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी/खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी ।"[6]

आंदोलनों के इतिहास से गुजरने पर ज्ञात होता है कि जनांदोलनों का उभार अनेक सामाजिक और वैयक्तिक बुराईयों को समाप्त का करता है। द्विवेदी–युग की आंदोलन–उन्मुख कविता ने सामंतवाद और साम्राज्यवाद से उत्पन्न समस्याओं को प्रत्यक्ष करने का महनीय कार्य किया, जिसकी नींव पर आधुनिक हिंदी साहित्य का छायावाद नामक स्वर्ण–भवन निर्मित हुआ। छायावाद राष्ट्रीयतावादी काव्यांदोलन का अगला चरण है। जिसमें वर्तमान के साथ–साथ इतिहास, स्मृति और कला का उत्कर्ष मिलता है। इस समय तक भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में अनेक वैचारिक सरणियों और समूहों का आगमन हो गया था। कांग्रेस के भीतर ही अनेक मतवाद प्रचलित थे। इसी कालखंड में ही क्रांतिकारी धारा सर्वाधिक प्रखर दिखती है। स्वाधीनता की ललक और संगठनों की पहुँच ग्रामीण और सुदूरवर्ती इलाकों तक पहुँच गयी थी। स्वाधीनता आंदोलन जो सामाजिक–राजनैतिक जागरण लेकर आया था, इसका प्रभाव छायावादी काव्य के भीतर आना स्वाभाविक ही है। इस दौर में संघर्ष के कई स्तर लक्षित किये जा सकते हैं। राजनीति के साथ–साथ समाज, संस्कृति, विचारधारा आदि के अनेक स्तर और प्रभाव समूह थे। अपनी युगीन बहु–स्तरीयता को अभिव्यक्त करने के लिए कविता का कला रूप भी संश्लिष्ट होता गया। छायावाद की कविता ने प्रकृति के विराट का आलम्बन लिया जिससे कि वह समग्रता में समस्त युगीन सन्दर्भों और प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त कर सके। इस समय की कविता अर्थ–बहुलता की कविता है। किंतु, इस अर्थ–बहुलता एवं संश्लिष्टता में कविता का केन्द्रीय स्वर कहीं भी शिथिल नहीं होता है। जाहिर है कि छायावाद का केन्द्रीय स्वर 'मुक्ति का स्वर' है– समाज, साहित्य, संस्कृति, मनुष्य, राजनीति आदि सभी स्तरों पर। निराला और प्रसाद जैसे कवियों ने अपनी आरम्भिक रचना–प्रक्रिया में व्यापक बदलाव किया। निराला अभिधा की 'चूम चरण मत चोरों के तू, गले लिपट मत गोरों के तू' से 'प्रिय स्वतंत्र–रव अमृत मंत्र नव' की लक्षणा पद्धति की ओर आये। जयशंकर प्रसाद ने ब्रजभाषा की राह छोड़कर खड़ी बोली का रास्ता अख्तियार किया। प्रसाद अपने नाटकों में स्वाधीनता की भाव–प्रवणता को गझिन करने के लिए गीतों का सहारा लेते हैं। उन्होंने पंचचामर छंद (शिव–तांडव का छंद) में स्वतंत्रता के भाव को बहुत ही ओजपूर्ण स्वर दिया है। इस छंद का चुनाव ही इस कविता की महत्ता को व्यंजित करता है, "हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती/ स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती/अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो/ प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढे चलो"[7] इस कविता में प्रयुक्त 'प्रबुद्ध' 'स्वयंप्रभासमुज्ज्वला' 'स्वतंत्रता' और 'दृढ़–प्रतिज्ञ' शब्दों को कुंजी की तरह प्रयुक्त

करने पर कविता का अर्थ–गाम्भीर्य स्वतः ही प्रकट हो जाता है। बौद्धिकता, आत्मबोध और प्रतिबद्धता स्वतंत्रता के मार्ग के अनिवार्य अंग है। पंचचामर छंद इस भाव को उत्सर्जित और उल्लसित करता है। प्रसाद जिसे 'स्वयंप्रभासमुज्ज्वला' कह रहे हैं यही भाव निराला के यहाँ 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना' के रूप में प्रकट होता है।

छायावाद सामंतवाद और साम्राज्यवाद से सीधे संघर्ष की कविता है। इस संघर्ष हेतु प्रसाद और निराला ने मिथकीय चरित्रों और आख्यानों का प्रयोग अधिक किया है। इसके दो स्पष्ट कारण हैं; पहला यह कि मिथकों के प्रयोग से अर्थ–बहुलता आती है, और दूसरा यह कि मिथकों और आख्यानों के माध्यम से तत्कालीन समस्याओं को जनता तक संप्रेषित करने में आसानी होती है क्यों कि जनता इससे पूर्व में ही परिचित होती है। गाँधी ने भी इस पद्धति का प्रयोग करते हुए जनता तक अपनी बात को आसानी से पहुँचाया था। गाँधीजी 'पाप', 'चोरी', 'मोक्ष' आदि अन्य परम्परागत आध्यात्मिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन, इन शब्दों की वे नवीन या समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप व्याख्या करते हैं। भारतीय जनमानस की इस मनोभूमि को समझते हुए विचारकों, राजनेताओं और कवियों ने भी इस शैली का प्रयोग किया है। 'राम की शक्तिपूजा' ऐसी ही कविता है, जिसमें राम–रावण के युद्ध के माध्यम से भारतीयों और अंग्रेजों के संघर्ष को दिखाया है। अर्थ–बहुलता के कारण अपने ऊपरी आवरण में यह कविता राम–रावण की युद्ध कथा लगेगी। परंतु, इसके भीतर प्रवेश करने पर स्वाधीनता आंदोलन का गहन संघर्ष, समस्याएँ और इसके अंतर्विरोध सामने आते जायेंगे। हमारा स्वाधीनता आंदोलन असफलताओं और निराशाओं के दुर्गम रास्तों से होकर भी गुजरा है। इसमें सन'30 से 36 का समय भी बहुधा निराशाओं का था। कांग्रेस की गतिविधियाँ भी शिथिल थीं तथा इसी समय भगत सिंह और उनके साथियों को फाँसी हो गयी। इससे क्रांतिकारी धारा को गहरा धक्का पहुँचा। इस नैराश्ययुक्त परिवेश पर निराला ने लिखा है–'है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार;/खो रहा दिशा का ज्ञान'। एक शिथिल और निराशाजनक परिवेश में दिशाहीन होने का जोख़िम विद्यमान ही था। निराला की कविता 'वर दे, वीणावादिनी वर दे!' एकबारगी सरस्वती वंदना प्रतीत होगी और आज भी अनेक अवसरों पर इसी भाव के साथ इसे गाया जाता है। कविता की पद्धति मिथकों वाली है; किन्तु इसके अंतर्वस्तु के गोशे–गोशे में स्वाधीनता की स्वर लहरी गुंजरित हो रही है, "वीणावादिनी वर दे!/प्रिय–स्वतंत्र–रव अमृत–मंत्र नव/भारत में भर दे!/काट अंध–उर के बंधन–स्तर/बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर; कलुष–भेद–तम हर प्रकाश भर/जगमग जग कर दे!"[8] इस कविता का शिल्प प्रार्थना और भक्ति का है। कवि को प्रिय है स्वतंत्रता की अनुगूँज और इसको ही अमृत मंत्र की तरह भारत में भरने की कामना करता है। यह कविता राजनैतिक–मुक्ति के साथ–साथ वैयक्तिक–सामाजिक मुक्ति का अनुपम उदाहरण है। परंपरागत भारतीय की सामाजिक व्यवस्था ने मनुष्य के हृदय में अज्ञान और जड़ता के अनेक स्तरों का निर्माण किया था। कटुता, भेद–भाव, कलह आदि अनान्य समस्याएँ विद्यमान थीं; इन सबको काटने, हरने के लिए ज्ञान की अविरल धारा की चाह कविता में उपस्थित है। मनुष्य की मुक्ति के बिना देश की मुक्ति की परिकल्पना संभव नहीं है और स्वातंत्र्यचेता मनुष्य सबसे पहले अवांछित सामाजिक जड़ताओं से सभी मनुष्यों की मुक्ति की कामना करता है–यह राजनैतिक मुक्ति का पहला चरण है। नवजागरण की जो राग–ध्वनि निराला के यहाँ फूटती है; वहाँ कवि को सबकुछ नया चाहिए– 'नव गति, नव लय, ताल–छंद नव'। कहीं–कहीं नवता और मुक्ति प्राबल्य निराला को भक्ति और प्रार्थना के शिल्प से बाहर लाकर आह्वान करवाता है; कवि के पैर जल्दी–जल्दी बढ़ने लगते हैं, " आज अमीरों की हवेली/किसानों की होगी पाठशाला,/ धोबी, पासी, चमार, तेली/ खोलेंगे अँधेरे का ताला/ एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।"[9]

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन जनता का आंदोलन था। जनता जहाँ कहीं भी इस त्रिकोण या इसके किसी एक पक्ष से संघर्ष करती दिखती ये कवि जनता के साथ हो जाते थे। मुक्ति आन्दोलनों में भागीदारी या सर्वांगीण मुक्ति हेतु प्रयास प्रगतिवाद की केंद्रीय विशेषता है। उन्नीस सौ छियालीस के नौ सेना क्रांति पर केदारनाथ अग्रवाल ने 'बम्बई आल्हा का रक्तस्नान' शीर्षक खंडकाव्य लिखा है (इसे लम्बी कविता भी कहा जा सकता है)। यह खंडकाव्य ओज और वीरता के लिए बहुप्रचलित छंद आल्हा में लिखा गया है। नौसेना क्रांति को अब भी अधिकतर इतिहासकार 'बॉम्बे म्युटिनी' कहते हैं, जबकि यह असमानता, अन्याय और पराधीनता के विरुद्ध

'रॉयल इंडियन नेवी' के सत्तर जहाजों पर तैनात लगभग बीस हजार सैनिकों की क्रांति थी। इसका केंद्र बम्बई शहर था और शीघ्र ही इसकी लपट कराची, कलकत्ता, मद्रास और विशाखापत्तनम तक फैल गयी। उल्लेखनीय बात है कि इन सैनिकों ने अपनी जहाज पर कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग का झंडा लगा रखा था। इन सैनिकों के समर्थन में कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा समर्थित मजदूर यूनियन भी खुलकर सामने आ गयी। ये सैनिक सामान्य भारतीय किसान–मजदूर परिवारों से संबद्ध थे। केदारनाथ अग्रवाल ने सैनिकों, मजदूरों और जनता की इस एकता को महनीय बताते हुआ लिखा है, "यादगार माँ उनके साथिव! एकु इमारत किहेव तयार।/जौन अमर राखै कीरति का जेहिका द्याखै सबु संसार।।/ वहि कै ऊपर तीनिव झंडा खून में भीज दिहेव फहराय ।/तीनिव दल के अनुयायिन का एकुइ तीरथ दिहेव बनाय।।/ अंत मँ साथिव! एकु कंठ से चालिस कोटि करौ गुंजार।/ जै नौसैनिक! जै जनता जै! जै जै भारतभूमि हमार।।"[10] इस खंडकाव्य के आरंभ में भारत में बम्बई शहर का वर्णन करते हुए पूँजीवाद के खेल को स्पष्ट कर दिया गया है, जहाँ 'कोऊ थैलीसाह बनो है कोऊ बनो मुनाफाखोर' और 'चाँदी स्वाना का छिन छिन का उतरा अऊर चढ़ी का भाव' सामान्य घटनाक्रम है। भारत में पूँजीवाद सामंतवाद की ओट और सरपरस्ती में ही फैला–फूला है। जितने भी सामंत, जागीरदार और राजवाड़े थे उन्होंने आंशिक कायांतरण के द्वारा सामंतवाद और पूँजीवाद के साथ तालमेल बिठाते हुए यथास्थितिवाद को रणनीतिक ढंग से बनाये रखा। जाहिर है कि परिवर्तन की यह सायास–प्रक्रिया साम्राज्यवाद के लिए प्रीतिकर ही थी। छायावाद के बाद का समय केवल साम्राज्यवाद और सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष का नहीं रह गया था, इसमें पूँजीवाद ने एक नया आयाम जोड़ दिया था, जिससे विमुखता असंभव थी। प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा पत्र में भी यहाँ विवेचित समस्याओं को शामिल किया गया था, "इस सभा का उद्देश्य अपने साहित्य और दूसरी कलाओं को पुजारियों, पंडितों और अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संसर्ग में लाया जाय, उनमें जीवन और वास्तविकता लाई जाय, जिससे हम अपने भविष्य को उज्ज्वल कर सकें। हम भारतीय सभ्यता की परम्पराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की बड़ी निर्दयता से आलोचना करेंगे। और आलोचनात्मक तथा रचनात्मक कृतियों से सभी बातों का संचय करेंगे। जिससे हम अपनी मंजिल पर पहुँच सकें। हमारी धारणा है कि भारत के नए साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए, और वह हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनैतिक पराधीनता का प्रश्न।"[11] प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा–पत्र ने रोटी, सामाजिक अवनति और राजनैतिक पराधीनता के प्रश्न को एक साथ उठाया था, इससे यह भी स्पष्ट है कि तीनों प्रश्न समान रूप से जनता के समक्ष उपस्थित थे। आज हम देखते हैं कि राजनीति का प्रश्न एक हद तक स्वाधीनता के साथ उत्तरित हो गया किंतु रोटी और सामाजिक समतुल्यता का प्रश्न कमोबेश उन्हीं रूपों में चुनौती बनकर खड़ा है। सामाजिक जागरण का प्रश्न अपनी उच्चतम अवस्था में राजनैतिक जागरण का प्रश्न बन जाता है। अब रोटी और सामाजिक समतुल्यता हेतु संघर्ष पूँजीवाद और सामंतवाद से है जिससे हिंदी कविता का सतत संघर्ष आज भी चल रहा है।

संदर्भ–सूची :–

1. शर्मा, रामविलास; सन् सत्तावन की राज्यक्रांति और मार्क्सवाद; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; पृ:34–35।
2. सिंह, नामवर; छायावाद; राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली; पृ: 17।
3. खां, अजीमुल्ला; उद्धृत– देस हरियाणा (सं. सुभाषचंद्र); अंक दृ37; पृ: 8।
4. गुप्त, बालमुकुंद; उद्धृत– देस हरियाणा (सं. सुभाषचंद्र); अंक दृ23–25; पृ:73।
5. शंकर, नाथूराम शर्मा; नरक निदर्शन / नाथूराम शर्मा 'शंकर' – कविता कोश (kavitakosh.org)
6. चौहान, सुभद्राकुमारी; स्वतंत्रता पुकारती (सं. नंदकिशोर नवल); साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली; पृ: 198।
7. प्रसाद, जयशंकर; हिमाद्रि तुंग श्रृंग से / जयशंकर प्रसाद – कविता कोश (kavitakosh-org)
8. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी; रागविराग; लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद; पृ: 74।
9. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी; निराला संचयिता (सं. रमेशचंद्र शाह); वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; पृ: 146।
10. अग्रवाल, केदारनाथ; आल्हा बम्बई का रक्त स्नान; साहित्य भंडार, इलाहाबाद; पृ: 32।
11. उद्धृत–शर्मा, रामविलास; प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; पृ: 157।

✿★✿

माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं में नैराश्य की प्रतिक्रिया का अध्ययन

कृष्णानन्द राय*

प्रस्तावना : भारतीय समाज में गुरू का सर्वोच्च स्थान है, जो शिक्षा के माध्यम से समाज को विकासोन्मुख बनाता है और वह मानव समाज का एक ऐसा प्राणी है जो आदिकाल से ही ज्ञान का संचय करता रहा है। शिक्षक समाज की धुरी होता है जिसके परितः सर्वत्र संस्कार विद्यमान होते हैं। साथ ही शिक्षक को एक आदर्श तथा प्रतिमान माना जाता है। शिक्षक अपने ज्ञान एवं अनुभव से छात्रों में अच्छे गुणों का सृजन कर सकता है। एक अच्छे शिक्षक का गुण यह है कि उसे विषय वस्तु अथवा अपने क्षेत्र का सर्वोत्तम ज्ञान हो। शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और वस्तुतः वही हमारी सन्तति के भविष्य का संरक्षण है। प्रत्येक नई पीढ़ी का कुछ ज्ञान सामाजिक विरासत से प्राप्त होता है और कुछ वह स्वयं अनुभव से प्राप्त करता है। ज्ञान की वह परम्परात्मक श्रृंखला ही शिक्षा है जिसके द्वारा मानव ने अपनी मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक प्रगति की है। शिक्षा ने ही मानव को पशु स्तर से ऊँचा उठाया है और श्रेष्ठ सांस्कृतिक प्राणी बनाया है। आज शिक्षक में नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र का निर्माता है तथा समाज का एक अति महत्त्वपूर्ण उत्तरदायी नागरिक है। छात्रों को शिक्षक से बड़ी–बड़ी आशायें होती हैं। छात्रों के जीवन में अपने वाली अनेक समस्याओं का समाधान उसे करना पड़ता है तथा छात्र के आचरण व क्रियाकलापों पर शिक्षक के मन–मस्तिष्क की गहरी छाप पड़ती है। शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है तथा इसी कारण समाज में सर्वाधिक सम्मान शिक्षक को दिया जाता है।

इन दिनों शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में जिस शब्द का काफी इस्तेमाल हो रहा है वह है ''गुणवत्ता युक्त शिक्षा'' परन्तु गुणवत्ता युक्त शिक्षा के लिए गुणवत्ता युक्त शिक्षकों का होना अनिवार्य है परन्तु विगत एक दशक से शिक्षक प्रशिक्षण और शैक्षिक योजनाओं से जुड़े रहने के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रायः अधिकांश शिक्षकों में गुणवत्ता का स्तर दिन–प्रतिदिन घटता जा रहा है। यह कटु सत्य है इसमें शिक्षकों के प्रति आक्षेप, आरोप अथवा अपमान की भावना लेशमात्र भी नही है। गुणवत्ता की समस्या नये पुराने, महिला–पुरूष तथा शहरी–ग्रामीण शिक्षकों में कमोवेश समान रूप से विद्यमान है। ऐसा नहीं है कि योग्य शिक्षकों की नितांत कमी है पर समग्र रूप से तुलना करने पर इनका अनुपात बहुत कम है। गुणवत्ता स्तर में कम का एक दूसरा पहलू भी है। प्रायः सभी शिक्षकों में दक्ष शिक्षकों की बेहद कमी है जिसकी माध्यमिक स्तर पर विशेष आवश्यकता है। योग्य शिक्षकों में भी अधिकांश शिक्षक किसी एक विषय में ही पारंगत होते हैं। विषयगत योग्यताओं के अलावा अन्य क्रिया कलापों जैसे खेल–कूद, साहित्य, कला, संगीत आदि सृजनात्मक क्षेत्रों में भी रूचि रखने वाले शिक्षकों की काफी कमी है। प्रारम्भिक शिक्षा में खासतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों में पायी जाने वाली चारित्रिक विकृतियाँ, धूम्रपान, मद्यपान, समाज विरोधी व्यवहार, यौन अपराध के अधिक दोषी है।

अध्ययन का महत्त्व : ख्याति लब्ध ऐसे शिक्षक जिनके ऊपर भारत का अतीत निर्भर रहा है और आगे भी जिनके ऊपर भारत का भविष्य निर्भर है, जो भारत के भविष्य के कर्णधारों के निर्माता हैं, समाज को जिनसे बहुत सारी अपेक्षाएं हैं, ऐसे शिक्षकों की गरिमा, मान–सम्मान और आदर समाज में बना रहे इसके लिए समाज तथा सरकार को विद्यालयों में उन्हीं शिक्षकों का चयनकरना होगा जो बहुत ही विद्वान, कर्मठ, उच्च शिक्षण अभिवृत्ति, श्रेष्ठ, मानसिक योग्यता एवं मूल्यों वाले हैं। नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया मानसिक तनाव की एक अवस्था है जिसकी उत्पत्ति इच्छा की पूर्ति में बाधा या विशेष उपस्थित होने के कारण या निश्चित उद्देश्य के अभाव के कारण होती है। नैराश्य शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'फ्रस्ट्रा' से हुई है जिसका अर्थ होताहै ''इन वेन''। डिक्शनरी के आधार पर इस शब्द का साधारण अर्थ ''मानसिक रूप से हार जाना'' होता है। नैराश्य के कई स्वरूप हैं। उनमें कुछ निम्न है :–

***प्रवक्ता, श्याम कालेज आफ एज्यूकेशन, बेगू सराय, बिहार।**

1. नैराश्य का सम्बन्ध व्यक्ति के संवेगात्मक जीवन से रहता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने अंदर तनाव का अनुभव करता है।
2. नैराश्य एक गति प्रदान करने की शक्ति है। यह शक्ति व्यक्ति को लक्ष्य से दूर भागने के लिये प्रेरित करती है।
3. सभी नैराश्य का स्वरूप एक समाज नहीं होता है। प्रत्येक नैराश्य एक दूसरे से स्वरूप में विभिन्नता रखती है। नैराश्य सरल प्रकृति, जटिल प्रकृति व अस्थायी या स्थायी तथा अधिक घातक या कम घातक होती है।
4. नैराश्य से निपटने के लिए व्यक्ति की नकारात्मक या सकारात्मक दोनों में से कोई भी प्रकृति हो सकती है। इन दोनों में से व्यक्ति कौनसी प्रतिक्रिया अपनायेगा, यह व्यक्ति के व्यक्तित्व व नैराश्य के प्रति जटिलता पर निर्भर करता है।

जब दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी प्रेरणाएं एक साथ व्यक्ति के सम्मुख उपस्थित होती हैं तो वह यह निश्चय नहीं कर पाता है कि किसको संतुष्ट करे व किसको नहीं, क्योंकि वह एक साथ सभी को संतुष्ट नहीं कर पाता। अतः वह नैराश्य या विफलता अनुभव करने लगता है। कभी–कभी यह भी होता है कि जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं या प्रेरणाओं को संतुष्ट करने का प्रयास करता है तो अनेक ऐसी बाधाएं उत्पन्न होती हैं जो उस प्रेरणा की संतुष्टि में असहायक होती हैं तथा ऐसी अवस्था में व्यक्ति नैराश्य का अनुभव करता है। विफलता एक प्रकार की मानसिक अवस्था है, जो प्रेरणा की असंतुष्टि के कारण होती है। उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने ''माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का अध्ययन'' करने का निर्णय लिया। इस अध्ययन से उन तथ्यों को स्पष्ट करने तथा उनकी सत्यता की जांच करने में सहायता मिलेगी जो अध्यापन को अच्छा बनाने में सापेक्ष सिद्ध हो सकते हैं।

अध्ययन का औचित्य : नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया चर पर पूर्व में अनेक शोधकर्ताओं यथा – शर्मा, मानवी (2011), जैन, विनोद (2014), मेहरा, आनन्द (2018), पी. जेम्सन (2000) आदि ने अध्ययन सम्पादित किए, लेकिन ''माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का एक अध्ययन'' पर अभी तक कोई कार्य प्रकाश में नहीं आया। यह कार्य एक नवाचार शैक्षिक लक्ष्य पर विद्यालय उपयोगी, समाज उपयोगी एवं शिक्षकों के लिए फलदायी होगा, जिससे हम शिक्षकों में पाये जानेवाली नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के स्तर पर पता लगाने में सक्षम हो सकेंगे। अतः शोधकर्ता ने इस शीर्षक पर कार्य करने का निर्णय लिया।

समस्या कथन : ''माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों में नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का एक अध्ययन''

अध्ययन के उद्देश्य :

1. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ :

1. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

परिसीमन :

1. प्रस्तुत अध्ययन बिहार राज्य के बेगूसराय जिले तक सीमित है।
2. प्रस्तुत अध्ययन में 200 माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का चयन न्यादर्श के रूप में किया गया है।
3. 200 शिक्षकों में शहरी (100) एवं ग्रामीण (100) शिक्षकों का चयन किया गया है।

शोधविधि :– प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि अनुसंधान की यह एक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

न्यादर्श :– प्रस्तुत अध्ययन में न्यादर्श के रूप में बिहार राज्य के बेगूसराय जिले के 200 माध्यमिक स्तर के शिक्षकों (100 शहरी + 100 ग्रामीण) का चयन किया गया है। जिसमें 50 शहरी एवं 50 ग्रामीण पुरूष शिक्ष एवं 50 शहरी एवं 50 ग्रामीण महिला शिक्षक चयनित किए गये हैं।

न्यादर्श चयन विधि :– शोधकर्ता ने प्रस्तुत अध्ययन में यादृच्छिक प्रतिचयन विधि (Randam Sampling Method) का प्रयोग किया है।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :–अध्ययन में दत संकलन हेतु डॉ. बबी.एम. दीक्षित एवं डॉ. डी.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया मापनी (2010) का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी :'– प्रस्तुत शोध अध्ययन में आँकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकी तकनिकों, मध्यमान (M), प्रमाणित विचलन (SD) एवं CR-Value द्वारा किया गया है।

समंकों का सारणीयन एवं विश्लेषण :– प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्त्री ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है –

परिकल्पना संख्या –1

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका संख्या 1

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की गणना।

अध्ययनित न्यादर्श (शिक्षक एवं शिक्षिकाएं)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता के स्तर	
					.05 स्तर	0.01 स्तर
शहरी	100	91.25	7.52	3.71	–	सार्थक अन्तर हैं।
ग्रामीण	100	95.52	8.64			

$(df=N_1+N_2-2=100+100-2=198)$

उपर्युक्त तालिका संख्या 1 में माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमान क्रमशः 91.25 एवं 95.52 प्राप्त हुए तथा मानक विचलन क्रमशः 7.52 एवं 8.64 प्राप्त हुए हैं। मध्यमानों एवं मानक विचलनों की गणना के आधार पर क्रान्तिक अनुपात मान (C.R.-Value) 3.71 प्राप्त हुआ है। 198(df) स्वतंत्रता के अंश पर 0.05 सार्थकता स्तर का मान क्रांतिक अनुपात मान की तालिका में 1. 97 तथा 0.01 सार्थकता स्तर का मान 2.60 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त मान दोनों सार्थकता स्तरों पर अधिक है, अतः यह निर्धारित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में सार्थक अन्तर है।

दण्डारेख (ग्राफ) संख्या 1

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों का दण्डारेखीय प्रदर्शन

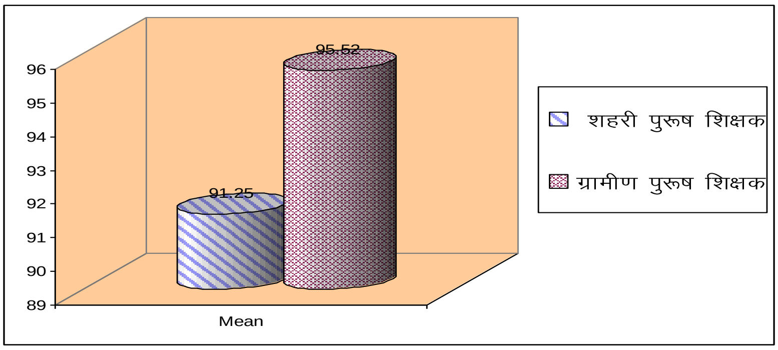

तालिका संख्या 2

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की गणना

अध्ययनित न्यादर्श (शिक्षक एवं शिक्षिकाएं)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता के स्तर	
					.05 स्तर	0.01 स्तर
शहरी	100	86.24	7.52	2.45	सार्थक अन्तर है।	सार्थक अन्तर नहीं हैं।
ग्रामीण	100	89.64	6.34			

$(df=N_1+N_2-2=100+100-2=198)$

उपर्युक्त तालिका संख्या 2 में माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमान क्रमशः 86.24 एवं 89.64 प्राप्त हुए तथा मानक विचलन क्रमशः 7.52 एवं 6.34 प्राप्त हुए हैं। मध्यमानों एवं मानक विचलनों की गणना के आधार पर क्रांन्तिक अनुपात मान (C.R.-Value) 2.45 प्राप्त हुआ है। 198(df) स्वतंत्रता के अंश पर .05 सार्थकता स्तर का मान क्रांतिक अनुपात मान की तालिका में 1.98 तथा .01 सार्थकता स्तर का मान 2.63 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त मान सार्थकता स्तर .05 स्तर पर अधिक तथा .01 स्तर पर कम है, अतः यह निर्धारित शून्य परिकल्पना आंशिक रूप से अस्वीकृत की जाती है तथा निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में आंशिक रूप से सार्थक अन्तर है।

दण्डारेख (ग्राफ) संख्या 2

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों का दण्डारेखीय प्रदर्शन

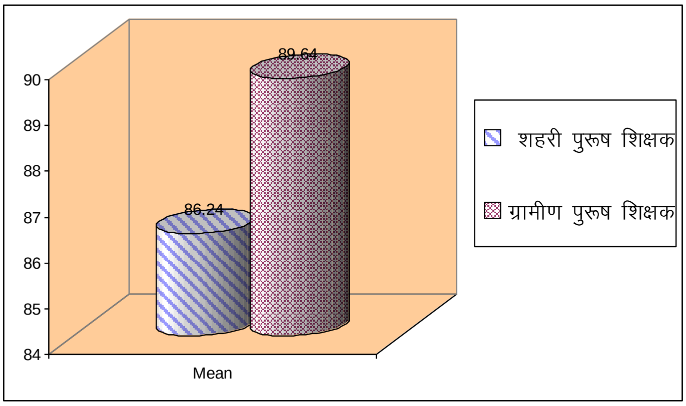

तालिका संख्या 3

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों के अन्तरों की सार्थकता की गणना

अध्ययनित न्यादर्श (शिक्षक)	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता के स्तर	
					.05 स्तर	0.01 स्तर
शहरी	100	95.34	7.20	3.74	—	सार्थक अन्तर हैं।
ग्रामीण	100	90.25	6.34			

$(df=N_1+N_2-2=100+100-2=198)$

उपर्युक्त तालिका संख्या 3 में माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमान क्रमशः 95.34 एवं 90.25 प्राप्त हुए तथा मानक विचलन क्रमशः 7.20

एवं 6.34 प्राप्त हुए हैं। मध्यमानों एवं मानक विचलनों की गणना के आधार पर क्रांन्तिक अनुपात–मान (C.R.-Value) 3.74 प्राप्त हुआ है। 198(df) स्वतंत्रता के अंश पर .05 सार्थकता स्तर का मान क्रांतिक अनुपात मान की तालिका में 1.98 तथा .01 सार्थकता स्तर का मान 2.63 दिया गया है। गणना द्वारा प्राप्त मान दोनों सार्थकता स्तर पर अधिक है, अतः यह निर्धारित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है तथा निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में सार्थक अन्तर है।

दण्डारेख (ग्राफ) संख्या 3

माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया के मध्यमानों का दण्डारेखीय प्रदर्शन

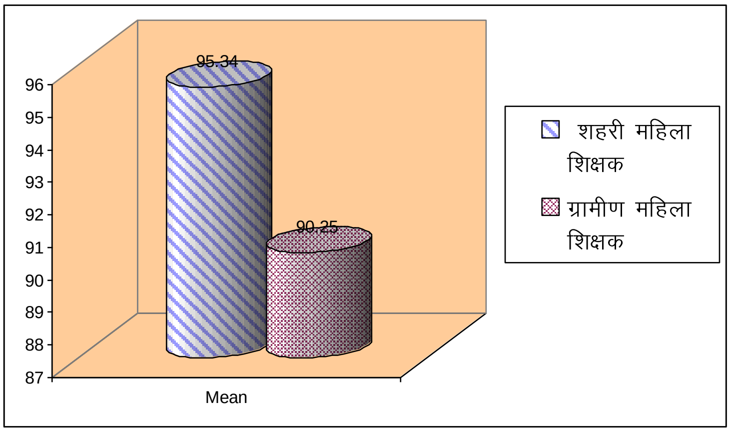

निष्कर्ष :

1. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण शिक्षक एवं शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में दोनों सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 में सार्थक अन्तर पाया गया, अतः निर्धारित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की गई।
2. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण पुरूष शिक्षकों की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में सार्थकता स्तर 0.05 में सार्थक अन्तर पाया गया, अतः निर्धारित शून्य परिकल्पना आंशिक रूप से अस्वीकृत की गई।
3. माध्यमिक विद्यालयों के शहरी एवं ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की नैराश्य के प्रति प्रतिक्रिया में दोनों सार्थकता स्तर 0.05 एवं 0.01 में सार्थक अन्तर पाया गया, अतः निर्धारित शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की गई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. पाठक, पी.डी. (1986) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, पृष्ठ संख्या 441।
2. भटनागर, ए.बी. एवं भटनागर मीनाक्षी (2004) ''शिक्षण व अधिगम का मनोविज्ञान'', आर.लाल, बुक डिपो, मेरठ, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ संख्या 31, 54।
3. भार्गव, महेश (1993) ''आधुनिक मनोविज्ञान परीक्षण एवं मापन'' द्वितीय संस्करण, भार्गव बुक हाऊस, राजामण्डी, आगरा–2, पृष्ठ संख्या 24।
4. माथुर, एस.एस. (1993) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, पृष्ठ संख्या 21, 22, 23।
5. मेहता, रोहित (1999) ''शिक्षा मनोविज्ञान'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, पृष्ठ संख्या 39।
6. यादव, आर.के., जैन, एल.एल. एवं मित्तल, एस.एन. (1997) ''सांख्यिकी विधियाँ'', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस 23, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 281–348, 587–656।
7. राय, पी.एन. (1981) ''अनुसंधान परिचय'', चतुर्थ संस्करण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशन, आगरा।

‘यहां राम हैं’ एवं ‘सिर्फ तुम’ की भावमयता

डॉ. सुनील कुमार मानस*

डॉ. प्रमोद कुमार श्रीवास्तव 'अनंग' जी एक प्राध्यापक होने के साथ–साथ, एक सहृदय इंसान, आलोचक एवं रचनाकार हैं। उनकी आलोचनात्मक पुस्तकों में 'पत्रकारिता की विजययात्रा', 'लोक की भूमिका', 'स्मृति उपवन', 'डॉ. राही मासूम रजा के उपन्यास', 'अभिज्ञान कुंभ', 'गर्भ संस्कार : उत्कृष्ट उपन्यास' आदि उपलब्ध हैं। इसके साथ दो गजल संग्रह– यहां राम हैं' और 'सिर्फ तुम' प्रकाशित हैं। इन गजल–संग्रहों में 'अनंग' जी की मनोवैज्ञानिक उमंग दिखाई देती है। मनोवैज्ञानिक उमंग लगभग प्रारंभिक दौर के रचनाकारों में अधिक होती है, जिसमें विषय के वैविध्य भी अधिक होते हैं। यह एक प्रकार से सीखने की प्रक्रिया का भी द्योतक है। अगर इन संग्रहों में गजलों एवं कविताओं को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि रचनाकार अपनी सीखने की प्रक्रिया के दौर से गुजर रहा है और इस गुजरने में जो समाज, राजनीति, शिक्षा, संस्कृति, परंपरा, मान्यता, नैतिकता आदि के प्रतिमान हैं– वे अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। उनके पहले ग़ज़ल संग्रह 'यहां राम हैं' में 101 और दूसरे काव्य संग्रह 'सिर्फ तुम' में 111 गज़ले एवं कविताएं संग्रहित हैं। इस तरह से कुल 212 गजल एवं कविताएं इनमें प्रकाशित हैं। कुछ रचनाकार कलम के भी डिक्टेटर होते हैं, बना तो सीधे–सीधे नहीं तो दरेरा देकर लिखने वाले। विचार तो इस दरेरेपन में भी स्पष्ट हो जाते हैं किंतु काव्य की भावमयता कमजोर हो जाती है– ऐसी कुछ कमजोरियाँ इस संग्रहों में हमें दिखलाई देती है।

इस संग्रहों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे रचनाकार को प्रकाशित करने की– जल्दी है। जिसके चलते भाव की प्रवाहमयता बनाने एवं शब्दगत–प्रूफ–शोधन का काफी अभाव दिखता है। कविता में जहाँ कहीं भी एक शब्द गलत हो जाता है, वहाँ उस कविता की आत्मा भी झकझोरित होती है। पाठक का मन उसके पढ़ने से भागने लगता है, पर दबाव रखते हुए मैंने दोनों गज़ल संग्रहों को पढ़ा। पढ़ा क्या, लड़ा। लड़ने की प्रक्रिया भी काफी विचित्र होती है। कुछ ऐसी ही विचित्रताओं से होकर मैं गुजरता भी रहा, पर रचनाकार के– जो भाव हैं, और भाव क्या, विचार हैं बल्कि यूं कहूँ तो ज्यादा अच्छा होगा कि भाव और विचारों की आवा–जाही है। भाव कभी विचार में तब्दील हो जाते हैं तो कभी विचार भाव में। बहुत सचेत होकर भाव और विचार के इस क्रम में अपने को तटस्थ रखने की कोशिश कर पाया हूँ। कुल मिलाकर उपरोक्त संग्रह अनंग जी के कोमल एवं वय–भाव के संचरण की परिणति है। इनमें संवेदना के बहुत से रंग हमें दिखाई देते हैं। राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के विविध सरोकारों से लेकर के व्यक्ति विशेष के मनोभावों की भी गहरी छाप– इसमें दृष्टिगोचर होती है। उनकी रचना–दृष्टि में धूमिल, दुष्यंत कुमार, मुक्तिबोध, वशिष्ठ अनूप जैसे बड़े रचनाकारों की गहरी छाप भी है। कविताओं एवं गजलों की भावमयता को जैसे उन्होंने अपने शब्दों में पिरोने की कोशिश की है, वह उतनी बेहतर नहीं नजर आती, जितने कि वह अपने मूल में है।

अनंग जी की सबसे बड़ी विशेषता है– समकालीनता से उनका जुड़ाव। इस जुड़ाव के चलते ही उनकी गजलों में समकालीन संवेदना के बहुत से रंग दिखलाई पड़ते हैं, जो हमारा ध्यान खींचते हैं, हमें आकर्षित करते हैं। इस आकर्षण के पीछे उनकी रचनाओं में, जो प्रेम हैं, वैसे ये जो प्रेम है– समाज की गहरी प्रतिबद्धता को भी ध्वनित करता हैं क्योंकि जो समकालीन समाज है उसमें अब प्रेम की जगह नहीं रह गई है। इसीलिए प्रेम की जगह बनाने के लिए समाज को बदलने की गहरी छटपटाहट इन रचनाओं में व्यंग के रूप में हमें दिखलाई देती हैं। यह व्यंग ही बाजारवाद की मानसिकता से बचने–बचाने का उपक्रम है, जिसके अंतर्गत राजनीति की गुंडागर्दी से छुटकारा पाना है, समाज को स्वस्थ बनाने का रास्ता तैयार करना है, और जब ऐसा होगा, तभी प्रेम अपना विस्तार करेगा।

'यहां आराम हैं' संग्रह में शीर्षक की सार्थकता थोड़ा कम समझ में आती है। पूरा संग्रह भी राम को लेकर उतना फलीभूत नहीं दिखलाई देता, जितना कि समाज की विसंगति को लेकर दिखाई देता है। यह विसंगति ही इस संग्रह के केंद्र में है, जो स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक–सामाजिक भाव–भूमि को दर्शाता है। हो सकता है यह जोर ही राम पर आस्था रखने वाले विश्वास का रूपक बनकर प्रस्तुत हुआ हो, और इसी आधार पर रचनाकार ने इस संग्रह का नाम– यहां राम हैं' रखा हो। इस संग्रह की कुछ गजलों का अवलोकन करना आवश्यक है– हम मोहब्बत के प्यासे हैं क्या चाहिए/दिन दुपहरी, सुनहरी यहां शाम है। (पृ.–18), हो कहीं भी गलत, रोकना चाहिए/ गर समाधान हो, टोकना चाहिए। (पृ.–21), मजा आयेगा जी लो, जिंदगी अपनी फकीरी में/धरा रह जाएगा सुख भी, तुम्हारी ही तिजोरी में। (पृ.–24), आपको लग रहा है, उजाला हुआ/वह समाचार का बस, मसाला हुआ (पृ.–26),

---

***प्रधान संपादक– आलोचना दृष्टि एवं सहायक प्राध्यापक, सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी (गुजरात)।**

गला है, तपा है, वह जूझा है लेकिन/ मगर मंजिलों, पर कोई चढ़ रहा है रहा है। (पृ.–49), अंधेरे में केवट, कहीं सेवरी है/ है राजा घमंडी, मेरे राम आओ। (पृ.–53), मेरी आंख के आंसुओं की कहानी/ सुनोगे सदा, ताना–बाना बनाकर। (पृ.–62), बाजारों की चकाचौंध में, गोबर होली भूल गया/खरी–खड़ी वह बोल रहा है, मीठी बोली भूल गया।।(पृ.–70), मैं आर्यावर्त, में जंबूद्वीप/मैं ही वसुधा की बानी हूँ।(पृ.–83), नजर न लग जाए, मैं कम देखता हूँ/ बहुत दर्द में उनके, गम देखता हूँ (पृ.–121)। इस तरह से उनके इस ग़ज़ल संग्रह में संवेदनात्मक सूत्र के विविध रूप–रंग हमें दिखलाई देते हैं, जो एक रचनाकार के हृदय की राजनीतिक और सामाजिक पीड़ा को भी ध्वनित करते हैं। अनंग जी इसकी भूमिका में लिखते हैं कि 'समय तीव्र गति से भागा जा रहा है। ऐसे में कुछ भी ज्यादा देर तक स्थिर नहीं हो पा रहा है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है।'... ऐसे में हमारा दायित्व है कि यदि हम समाज को दिशा दें। शायद वे इस संग्रह के माध्यम से समाज की एक नई पुनर्रचना ही करना चाहते हैं।

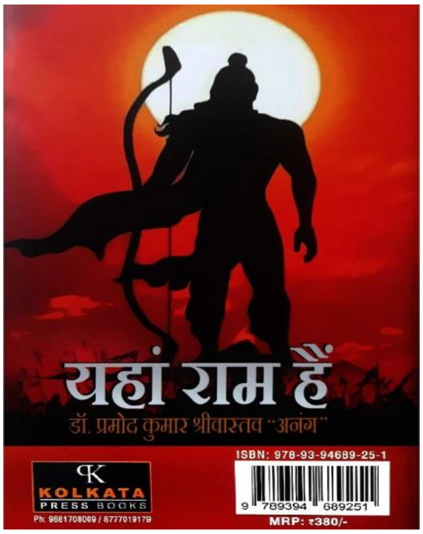

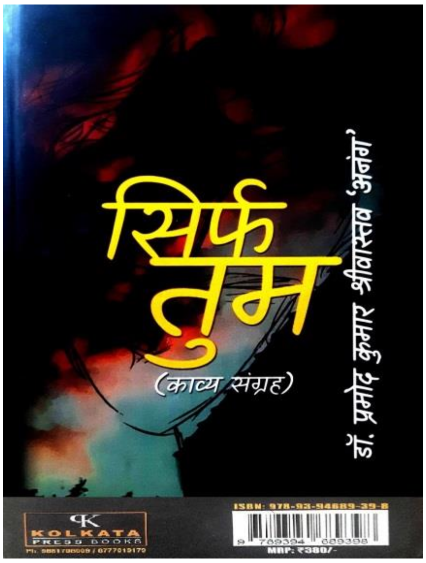

दूसरे संग्रह **'सिर्फ तुम'** में रचनाकार एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव में पहुंचता है। इस पड़ाव में प्रेम के रंग कुछ अधिक गहरे हुए हैं। 'सिर्फ तुम', 'हम बिछड़ने लगे', 'दवा कीजिए', 'आशीष' जैसी कविताओं में प्रेम के एवं जीवन–व्यापार के विविध रंग हैं। इसमें– राजनीतिक–सामाजिक घातों–प्रतिघातों के विविध रंग हैं, भारत के सोच–विचार के विविध रंग हैं, बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के मनोवैज्ञानिक–भाव के विविध रंग हैं, गांव से लेकर शहर तक के विविध रंग हैं, एक आम व्यक्ति के जज्बात के विविध रंग हैं, खाली पेट से लेकर के सूखी रोटी तक के विविध रंग हैं, मौन, दिल की आवाज से लेकर इंकलाब तक के विविध रंग है, सादगी सौगात से लेकर कयामती–वारदातों के विविध रंग हैं, इन तमाम रंगों से रंगा पड़ा है– यह संग्रह। अपने पूर्व संग्रह की अपेक्षा यह अधिक समृद्ध है। इसकी भूमिका (दो शब्द) में कही गई बात से लेकर कविताओं एवं गजलों में संवेदनात्मक गहराई की सघनता अधिक दिखलाई देती है, जिसके कुछ सूत्रों से रूबरू होना आवश्यक है– अरे तुम ही तो हो/ मेरे जीवन प्रवाह की पहली जलप्रपात। (पृ.11), मैं जो हूं/वो हूँ कि नहीं/या वह जो है/वही है?(पृ.17), अद्भुत मित्र मिताई इनकी, कलयुग के ये राजा हैं/नेता कहते हैं सब इनको, बिना बैंड के बाजा है।(पृ.19), नेता और घड़ियाल में/हुई एक दिन बात/हम दोनों हैं एक से/अद्भुत है यह साथ(पृ. 27), ये लोकतंत्र की हत्या है, यह कैसी वतन फरोशी है/देखो घर–घर में आग लगी, फिर भी कैसी खामोशी है।(पृ.60), गेहूं पैदा करने वाला, रोटी को मोहताज है/संसद और विधानसभा में, आया खूब सुराज है।(पृ.109), बड़े प्रेम से, आदर से, जब कोई पास बुलाता है/सच कहता हूं मेरा जीवन, तभी धन्य हो जाता है।(पृ.135), पेट की आग, बुझाऊं कैसे/आग चूल्हे में जलाऊं कैसे।(पृ.151)

इस तरह से यह संग्रह अपने मनोभावों की अनुगूंज हम पर छोड़ता है। रचनाकार अनंग जी की सहृदयता का परिचय उनकी दो शब्द नामक भूमिका में दिखाई देता है वे लिखते हैं कि 'मैंने कुछ भी सहेजा सजाया नहीं। टूटते मूल्य, बिखरते स्वप्न, व्यवस्था का क्रूर हो जाना, दर्द, भूख, छटपटाहट, बेचैनी, असंतोष के दंश को झेलना कठिन हो रहा है। इसमें अपनापन, प्रेम, उत्साह, साहस, धैर्य आत्मविश्वास और परमसत्ता के प्रति श्रद्धा–शांति और सुखद भविष्य के प्रति विश्वास था.... संस्कृति, परंपरा, जीवन मूल्य और संवेदना पर पैनी निगाह रख कर इसके साथ पाठक को जोड़ना मेरा उद्देश्य रहा है।.... हमने दायित्व बोध को ध्यान में रखते हुए आपने जुड़ने का गिलहरी प्रयास किया'– ये सब बातें रचनाकार की विनम्रता की सूचक है। 'अनंग' जी की सहृदयता और निर्भयता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ कि वे अपनी इस सजग–यात्रा के माध्यम से ज्ञान की मशाल आगे लाते हैं। निश्चित रूप से उनके मन में, और चिंतन में समाज सुधार की गहरी–चिंता है।

★

किन्नर-विमर्श के परिपार्श्व में
समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचय

डॉ. बाबूलाल बैरवा*

समकालीन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्शों की ही भांति किन्नर विमर्श आज किन्नरों के जीवन की हकीकतों को परत–दर परत खोलता चला जा रहा है। जहाँ हमारा संपूर्ण समाज स्त्री एवं पुरुष इन्हीं दो वर्गों को समाज की धुरी मानता है वहीं इन दोनों से पृथक एक ऐसा वर्ग भी है जो न तो पूर्ण स्त्री है और न ही पूर्ण पुरुष। यह वर्ग है – किन्नर का। जिसे हमारे समाज में हिजड़ा, छक्का, खोजा और अरावली आदि नामों से जाना जाता है।

परिवार और समाज से परित्यक्त यह किन्नर समुदाय लगातार अपने हक तथा अपने वजूद के लिए लड़ता रहता है। समाज का यह वर्ग जो स्त्री एवं पुरुष के मध्यबिंदु पर खड़ा है, अपनी अपूर्णता के कारण समाज में हीन दृष्टी से देखा जाता रहा है। अपनी अपूर्णता के दर्द को तिल–तिल सहते ये किन्नर कभी समाज में अपने हक के लिए तो कभी अपने वजूद की पूर्णता के लिए ,कभी निज से तो कभी समाज से लड़ते रहते हैं। समकालीन हिंदी कहानियों में किन्नर जीवन की त्रासदी, अकेलेपन, परिवार से परित्यक्त होने का दर्द और समाज के तिरस्कार को सहते किन्नरों के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। साहित्य में किन्नरों के विषय में बहुकोणीय दृष्टीकोण परिलक्षित होता है। किन्नर विमर्श की प्रमुख कहानियों में 'बिन्दा महराज', 'खलिक अहमद बुआ', 'इ मुर्दन के गाँव', 'संझा', 'हिजड़ा', 'इज्जत के रहबर', 'कौन तार से बिनी चदरिया', 'रतियावन की चेली', 'संकल्प' एवं 'खुश रहो क्लिनिक' आदि हैं।

राही मासूम रजा द्वारा रचित **'खलिक अहमद बुआ'** कहानी में एक किन्नर के प्रेम, अपनत्व के बदले में उसे मात्र धोखा और अकेलापन ही मिलता है। खलिक अहमद बुआ जिस रूस्तम खां पर अपना सबकुछ लुटा देती है, वह उसे धोखा देता है। अंत में वह उस धोखे के बदले के रूप में रुश्तम खां को मार स्वयं फांसी पर चढ़ जाता है।

कुसुम अंसल द्वारा रचित **'इ मुर्दन के गाँव'** कहानी में किन्नर जीवन की त्रासदी का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया गया है। इस कहानी के पात्र बीलू का बचपन मात्र इस कारण बर्बाद हो जाता है क्योंकि वह किन्नर है। सिद्धार्थ एवं नीलिमा बीलू के दोस्त थे किंतु उसे नीलिमा के साथ खेलना अधिक पसंद था। लेकिन धीरे –धीरे उसके बाहर आने–जाने पर पाबन्दी, बच्चों के साथ खेलने–कूदने की पाबन्दी उसकी हर इच्छा पर लगाई गई पाबन्दी का असर यह होता है कि जब कभी उसे नीलिमा के साथ खेलने का अवसर मिलता है तब वह अपने अन्दर व्याप्त गुस्से को नीलिमा के सबसे प्रिय खिलौने पर उतार देता था। किन्नर होने का अभिशाप उसके बचपन को छीन लेता है और अंततः उसे अपने माँ–बाप से दूर मौसी के साथ विदेश जाना पड़ता है।

शिवप्रसाद सिंह रचित **'बिन्दा महराज'** एक ऐसे किन्नर की कहानी है जिसके जन्म के बाद उसके माता–पिता चल बसते हैं और जिसके कारण बिन्दा महराज का जीवन अनेक कठिनाइयों से भर जाता है । किन्नर शरीर से भले ही अपूर्ण हों किंतु उसके मन की भावनाएं, संवेदनाएं तथा अपनों के प्रति प्रेम की भावना किसी आम व्यक्ति की ही भांति विद्यमान रहती हैं। बिन्दा महराज अपना सम्पूर्ण प्रेम अपने चचेरे भाई के बेटे करीमा पर न्योछावर कर देते हैं। किंतु अंततः उसे उसके ममत्व के बदले अपने चचेरे भाई से अपमान ही मिलता है। यहाँ तक कि उसका चचेरा भाई उसे दर–दर की ठोकरें खाने के लिए घर से

***सहायक आचार्य–हिन्दी, स्व. पं. न. कि. श. राजकीय महाविद्यालय, दौसा।**

निकल देता है। यथा– " था ही कौन उसका अपना, जो पैरों में रेशमी बेड़ियाँ डाल कर रोक रखता। माँ–बाप एक प्राण–हीन शरीर उपजा कर चले गए। मर्द होता तो बीवी–बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता, बच्चों की किलकारियों से आत्मा के कण–कण तृप्त हो जाते। " बिन्दा महराज अपनी नई जिंदगी की तलास में निकल पड़ते हैं। ऐसे में जिस गाँव में वे नाच–गाकर अपना गुजर बसर करते थे, उसी गाँव के दीपू मिसिर के बेटे के प्रति उनका ममत्व जागृत होता है। संभवतः उस बच्चे में उन्हें अपने भाई के बेटे की छवि नजर आती होगी। मिसिर जी का बेटा भी उन्हें बुआ कहकर बुलाता है जिससे बिन्दा महराज का मन अपार स्नेह से भर जाता है। किंतु अचानक दीपू मिसिर के बेटे की मृत्यु हो जाती है। और बिन्दा महराज ओछी मानसिकता एवं अन्धविश्वास से ग्रसित गाँव वालों की आँखों का काँटा बन जाते हैं। लोग उसे डायन तक कहने लगते हैं। स्वयं पर लगाये गए इस लांछन से व्यथित बिन्दा महराज अन्दर ही अन्दर घुटते–तड़पते रहते हैं। परिणामतः वे अन्य किसी भी बच्चे को अपने समीप तक नहीं आने देते हैं।

भारतीय समाज में एक किन्नर की स्तिथि किसी अछूत से कम नहीं मानी जाती। व्यक्ति चाहे कितना भी विकसित हो जाये किंतु एक किन्नर के प्रति उनकी दृष्टी हीन ही रहती है। अपनों से परित्यक्त दर–दर भीख मांगने को विवश किन्नर जीवन के दर्द की अभिव्यक्ति इसी कहानी की एक अन्य किन्नर सलीमा के निम्न वाक्यों से होती है – "पता नहीं कब से हमारे जैसे किस्मत के मारे यहाँ रह रहे हैं। रह क्या रहे हैं, जून भुगत रहे हैं। हमारे समाज में न कोई जगह है, न पहचान हम सब अछूत से भी नीच समझे जाते हैं।" मन और शरीर के अन्दर का दर्द बद्री के जीवन में भी निरंतर उसे सालता रहा है। किन्नर बद्री के जन्म लेते ही, उसकी हकीकत को जानकर उसकी माँ सदमे के कारण मर जाती है। पिता दूसरा विवाह कर लेता है और बद्री पहले अनाथालय और बाद में बड़ा हो जाने पर अपना जीवन जया गुरु की कोठरी में बिताता है।

कादंबरी मेहरा द्वारा रचित **'हिजड़ा'** कहानी की रागिनी श्रीवास्तव जब 15 वर्ष की थी तभी उसकी माँ चेचक की बीमारी के कारण चल बसती है, पिता दूसरा विवाह कर लेता है और अंततः रागिनी अपनी बहन और जीजा के रहमोकरम पर जीने के लिए विवश होती है। रागिनी के जीजा को लोग बहुत भला आदमी मानते हैं। किन्तु जीजा की हकीकत सिर्फ रागिनी ही जानती है। पढाई के खर्च के बदले उसका जीजा उसका शारीरिक शोषण करता है। अपनी बेबसी के कारण ही रागिनी सब कुछ सहती है। वह कहती है – "मेरा क्या है मुझसे कोई शादी तो करेगा नहीं। ऐसे ही ठीक है । बस पढाई खत्म कर लूं । फिर कहीं दूर भाग जाउंगी। किसी गाँव में टीचर या सोशल वर्कर बन जाउंगी। सौ–दो सौ कुछ तो मिलेगा ही। " जो पीड़ा उसे अपने पिता, सौतेली माँ और जीजा से मिलती है, कदाचित उस पीड़ा का ही परिणाम था कि एक स्त्री होकर भी वह किन्नर या हिजड़ा बनने पर विवश होती है।

किरण सिंह द्वारा रचित **'संझा'** एक ऐसे किन्नर की कहानी है जो लगातार तीस वर्षों तक समाज से अपनी हकीकत छुपता फिरता है। संझा एक किन्नर के रूप में चौगांव के सबसे इज्जतदार आदमी वैद्य महराज के घर जन्म लेता है, और यहीं से संझा के नारकीय जीवन की शुरूआत हो जाती है। उसके माँ–बाप समाज के भय से उसे हमेशा घर की चारदीवारी में ही रखते हैं। संझा के तीन वर्ष की होने पर बीमार और संझा की चिंता में डूबी उसकी माँ की मृत्यु हो जाती है। अकेले वैद्य जी संझा की देखरेख में जी जान से जुट जाते हैं। एक किन्नर को सदा से ही समाज की प्रताड़ना, हीन दृष्टी आदि के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। किन्नर को मात्र किन्नर के रूप में ही देखा जा रहा है, उसके भीतर की संवेदना, प्रेम और अपनत्व आदि से समाज कोई सरोकार नहीं रखता।

किन्नर रूप में जन्म लेने वाले बालक को ना तो परिवार में कोई जगह मिलती है और न ही समाज में। ऐसे बालक को कभी अपनी इज्जत की वजह से तो कभी समाज के भय से और कभी–कभी ऐसे बालक के प्रति हीनता की भावना के कारण अक्सर माँ–बाप ऐसे बच्चों को त्याग देते हैं। अंजना वर्मा की कहानी **'कौन तार से बिनी चदरिया'** में सुंदरी एक किन्नर के रूप में बहुत ही संपन्न घर में जन्म लेती है।

उसकी माँ सदा उसे दूसरों की नजरों से छुपाये अपने पास ही रखती है। एक रात सुंदरी की माँ के सो जाने पर उसके घर वाले उसे खोजा को सौप देते हैं। इससे उसकी माँ बहुत ही दुखी रहती है। किसी भी माँ की संतान चाहे वह जैसी भी हो, फिर भी उसका प्रेम कभी समाप्त नहीं होता। फिर चाहे वह एक दूसरे से दूर हों या समीप। विडम्बनाएं भले ही उन्हें न मिलने दें, फिर भी एक दूसरे के प्रति लगाव बना ही रहता है। सुंदरी और उसकी माँ तथा बहन कभी–कभार चोरी–छुपे एक दूसरे से मिलते हैं तब उनके मन का दर्द आंसू बनकर बरस पड़ता है।

उम्र बढ़ने के साथ संज्ञा के विचारों एवं भावनाओं में भी परिवर्तन आता है। उम्र के साथ शरीर के हर अंग का विकास तो होता है किन्तु मात्र एक अंग की अपूर्णता उसके समूचे जीवन को बर्बाद करने के लिए काफी था। संज्ञा भी संसार देखना चाहती है। वह पिता की तरह जंगल जाकर औषधियां लाना चाहती है । किन्तु समाज के डर से वैद्य महराज उसे ऐसा नहीं करने देना चाहते। अपने अविकसित अंग की वास्तविकता जानकर संज्ञा का मानसिक संघर्ष दिनोंदिन बढ़ता चला जाता है।

एक दिन वह अपने अपूर्ण अंग को पूर्ण करने के प्रयास में बुरी तरह घायल हो जाती है। किन्नरों के प्रति समाज की मानसिकता, उनकी स्थिति के बारे में जानकर संज्ञा स्वयं को किसी अछूत के समान मानने लगती है। उसकी बढती उम्र के साथ ही लोगों के ताने से परेशान वैद्य जी उसका विवाह ललित महराज के दत्तक पुत्र कनाई से कर देते हैं, चूँकि कनाई नपुंसक था, इससे संज्ञा का भेद नहीं खुलता। किन्तु बसुकि द्वारा कनाई पर लगाये गए बलात्कार के आरोप से उसका भेद खुल जाता है साथ ही संज्ञा के किन्नर होने का भी। गाँव वाले संज्ञा को अपवित्र, पापिन और अछूत आदि कहते हुए उसे मारने पर उतारू हो जाते हैं। यथा –"चौगांव के लोगों में संज्ञा को नंगा करने की होड़ मची थी। उसकी माँ की सफेद धोती हवा में छोटे–छोटे टुकड़ों में उछल रही थी। " जिन गाँव वालों की सहायता के लिए संज्ञा दिनोंरात जंगल–जंगल भटकती औषधियां बटोरती थी, वे ही गाँव वाले उसे आज नंगा करने पर उतारू हो जाते हैं। भेद खुल जाने के बाद समाज के डर से जिस बंधन से सालों तक बंधी संज्ञा निरंतर मानसिक संघर्ष कर रही थी वह उस बंधन से पूरी तरह आजाद हो जाती है और पूरे गाँव वालों के काले कारनामों को एक – एक कर सबके सामने ला देती है और स्वयं को स्त्री या पुरुष से कहीं अच्छा मानती है।

डॉ. पद्मा शर्मा द्वारा रचित **'इज्जत के रहबर'** कहानी में किन्नर जीवन की वेदना, लोगों द्वारा किन्नरों के प्रति अपमान, शोषण आदि का चित्रण हुआ है। अक्सर किन्नरों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे अपनी संख्या बढ़ाने के लिए जबरन लोगों का अंग–भंग करके उन्हें हिजड़ा बनाते हैं। इसी प्रकार के आरोप के बारे में जब श्रीलाल सोफिया से पूछते हैं तो वह कहती है – "नहीं लाल जी हमारी संख्या तो ईश्वर बढाता है। खुदा न करे वह और अधिक संख्या बढ़ाये। हमें कितना कष्ट है इस योनि में होने का, ये तो हम ही जानती हैं। "

शून्य से शिखर तक पहुंचे एक किन्नर के संघर्ष की कहानी है **'खुश रहो क्लिनिक'**। चाँद दीपिका द्वारा रचित इस कहानी में जैसा की हमेशा से होता आया है कि किन्नर के रूप में जन्मे अपने संतान को किन्नरों के हवाले कर देना या उसे छोड़ देना दर–दर की ठोकरें खाने तथा भीख मांगने के लिए वैसा ही ऋषि के साथ भी होता है। ऋषि का जन्म एक संपन्न परिवार में होता है किन्तु उसका किन्नर होना उसके लिए अभिशाप साबित होता है और उसके पिता उसे किन्नरों के हवाले कर देते हैं। उसकी माँ सदा अपने बेटे के लिए तड़पती रहती है। ऋषि जिस माहौल में जाता है, वहां उसका दम घुटने लगता है। किन्नरों के डेरे को देख उनकी स्थिति, उनके दर्द तथा समाज का उनके प्रति संवेदनहीनता आदि का पता चलता है। यथा– "न किसी का किसी से सम्बन्ध न खून का रिश्ता, सभी ठुकराए हुए, हालात के मारे हुए, चोरी–चकारी पकड़ कर लाये हुए लोग जो न स्त्री थे न पुरुष थे। फिर भी स्वेच्छा से स्त्री–पुरुष के चोले पहन विचर रहे थे। जो समाज का अनचाहा भाग होकर भी उसका भाग न थे। उन्हें समाज जन्म देता था, पर काटकर देर–सबेर अपने से फेंक भी देता था। जहाँ माता–पिता अपने होकर भी अपने न थे बच्चे अवांक्षित लावारिश थे।'' किन्नरों के जिस समूह में वह लाया गया था, वहां उसे भी अन्य सभी के साथ

बधाई मांगने के लिए विवश किया जाता है और ऐसा न करने पर उसे मारा–पीटा जाता है। यहाँ तक कि उसे भूखा भी रखा जाता है। किन्तु ऋषि बधाई मांगने नहीं जाता और पढाई करने की अपनी जीद पर कायम रहता है। अंततः उसका पालक पिता अर्थात डेरे का उस्ताद मझोले कद वाला व्यक्ति उसे पढाता है। अपनी योग्यता और मेहनत के बल पर ऋषि एक काबिल डॉक्टर बनता है और निःस्वार्थ भाव से गरीबों की सेवा और किन्नरों की सहायता करता है।

ललित शर्मा द्वारा रचित **'रतियावन की चेली'** कहानी में पार्वती का भी दर्द वही है जो अधिकतर किन्नरों की होता है। जन्म के बाद रतियावन द्वारा जबरन पार्वती को घर से ले जाया जाता है और पार्वती पहुँच जाती है, ऐसी दुनिया में जहाँ उसकी स्थिति और भी दयनीय हो जाती है। हिजड़ों के साथ–साथ दर–दर नेग के नाम पर भीख मांगना, बदमाश हिजड़ों द्वारा मार–पीट किया जाना, कभी भर पेट तो कभी कई दिनों तक भूखे पेट सोती रही। पार्वती से उसका अपना परिवार तो मिलता–जुलता है लेकिन वह जिस समाज की थी वे ही उसको प्रताड़ित करते थे।

विजेंद्र प्रताप सिंह द्वारा रचित **'संकल्प'** नामक कहानी एक ऐसे किन्नर की कहानी है जो अपने आत्मबल के सहारे ही अपने भाई और पिता का सहारा बनती है। जन्म के साथ ही माधुरी का संघर्ष शुरू हो जाता है। माधुरी के हिजड़ा रूप में पैदा होने से न केवल उसके बल्कि उसके समस्त परिवार को भी समाज का तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है। यथा : " उसका हिजड़े के रूप में जन्म लेना कोढ़ में खाज जैसा सिद्ध हुआ उसके परिवार के लिए। एक तो गरीबी दूसरी यह विपत्ति।" सात वर्षीया माधुरी के सर से माँ का साया सदा के लिए समाप्त हो जाता है, उस पर नवजात बहन और मानसिक संतुलन खो चुके पिता की समस्त जिम्मेदारी माधुरी के सर पर आ जाती है। बड़ी होने पर माधुरी हिजड़ा समाज से भी संपर्क बनाती है और माधुरी से मधुर बनती है। एक बार जबरन एक पुलिस द्वारा उसका बलात्कार किया जाता है। बलात्कार पीड़ित माधुरी को डॉक्टर से जब यह मालूम पड़ता है कि ऑपरेशन के द्वारा वह स्त्री बन सकती है। वास्तव में माधुरी एक बुचर हिजड़ा थी। इसके बाद तो माधुरी जी जान से पैसे जुटाने में लग जाती है और ऑपरेशन करा के एक पूर्ण स्त्री बनती है और उसके जीवन को अभिशप्त बनाने वाला हिजड़ा शब्द सदा के लिए उसके जीवन से समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक दृष्टि से आज अनेक विमर्शों की चर्चा की जा रही है और समाज के अनेक उपेक्षित वर्गों पर साहित्य में चिन्तन हो रहा है किन्तु लिंग निरपेक्ष, समाज बहिष्कृत किन्नर समुदाय के विषय में कोई बड़ी चर्चा नहीं दिख रही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वाग्रहपूर्ण अवस्था में है, समाज की वैचारिकी अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे समाज ने अब इन्हें सही स्पेस देना शुरू कर दिया है और शीघ्र ही हम वह दिन भी देखेंगे, जब ये भी समाज में सामान्य लोगों की भांति अपने मानवाधिकारों के साथ जीवन–यापन कर सकेंगे।

संदर्भ–ग्रंथ–सूची :–

1. चाँद दीपिका – खुश रहो क्लिनिक।
2. ललित शर्मा – रतियावन की चेली।
3. विजेंद्र प्रताप सिंह – संकल्प।
4. बिन्द कुमार चौहान – किन्नर विमर्श, शिक्षा–समाज और साहित्य।
5. मिलन विश्नोई – किन्नर विमर्श, साहित्य और समाज।
6. महेन्द्र भीष्म – किन्नर कथा।

वर्तमान संदर्भ में कबीर की प्रासंगिकता

नमन कृष्ण*

शोध सार :– कबीर ने समाज को वैज्ञानिक ढंग से समझा और समय की नस को सही तौर पर पहचान की। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों, विकृतियों और विसंगतियों के खिलाफ लड़ने और आवाज उठाने का साहस उन्हें अपने जीवन के अनुभवों से मिला। उन्होंने जीवन भर जिन सामाजिक विषमताओं के खिलाफ संघर्ष किया वह आज भी अपना स्वरूप विकराल बनाए हुए हैं। कबीर की युगवाणी आज भी वर्ग विहीन, शोषण मुक्त समाज तथा समाज को संकीर्णताओं और कूपमंडूकता की परिधि से बाहर निकालने में प्रासंगिक हैं।

बीज शब्द :– कबीर, समाज, विकृतियों, विरोध, संघर्ष, प्रासंगिकता।

घर फूंक तमाशा देखने का साहस, अखंड आत्मविश्वास और मोह, माया स` विरक्ति यही वे तीन सम्मिलित तत्व है; जो कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। ज्ञान की लपलपाती लुकाठी लेकर समाज के चौराहे पर खड़ा हुआ संत लोगों को चुनौती दे रहा है। जिसमें घर फूंक तमाशा देखने का का साहस हो, वह उसका अनुसरण करे। मध्य युग में कबीर की वाणी ने जो अलख जगायी है, वह आज भी उतना महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है, जितना तत्कालीन युग में था। समय चाहे जो भी रहा हो, कबीर की प्रासंगिकता अनायास ही उठ खड़ी हो जाती है, क्योंकि समय चक्र के रूप में घूमता है और उनके समय की विसंगतियां और आज की विसंगतियां कहीं–न–कहीं सादृश्यता रखती है। वर्तमान समय की विसंगतियां तदयुगीन विसंगतियों से ज्यादा व्यापक और जटिलता लिए हुए हैं।

उनकी प्रासंगिकता उनके जीवनकाल से परिलक्षित होती है। कबीर दास के माता–पिता का पता नहीं था। इसलिए सामाजिक उपेक्षा की पीड़ा उन्हें बाल्यकाल से ही झेलनी पड़ी। हिंदू और मुसलमान दोनों ने उनकी उपेक्षा की, परंतु कबीर समाज से लड़ने और समाज को बदलने की शक्ति लेकर अवतरित हुए थे। उन्होंने हिंदुओं को छोड़ा न मुसलमानों को छोड़ा और दोनों की संकीर्णओं पर प्रहार करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा– "हिंदू मुएँ राम, मुसलमान खुदाइ।"

वास्तव में कबीर दास मानवता और प्रेम के पुजारी थे। एकीकरण की भावना उनमें कूट–कूट भरी थी। वह हिंदू और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बांधने के पक्षधर थे। वर्तमान समय में चल रहे अविश्वास के दौर में कबीर के जीवन से प्रेरणा की आवश्यकता है।

पूरे समय कबीर सत्य के पथ प्रदर्शक रहे। जब पुत्र ने माया से आसक्ति दिखाई तो कबीर ने पुत्र के लिए कहा– ''बूड़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल।"

कबीर दास का जीवन आरोह– अवरोह के संघर्षों से भरा था, किंतु वे कभी समाज को नई दिशा देने से पीछे नहीं हटे। अपनी मृत्यु के समय भी इन्होंने संपूर्ण समाज को संकीर्णताओं और कूपमंडकताओं की परिधि से बाहर निकालने का प्रयास किया। उस समय यह प्रथा प्रचलित थी की जिसकी मृत्यु मगहर में होती है; उसे नरक मिलता है और जो काशी में मरता है; उसे स्वर्ग मिलता है। समाज को वास्तविकता का संदेश देने वाले कबीर जीवन भर काशी में रहे और मरते समय मगहर चले गए और उन्होंने लोगों को सचेत करते हुए कहा भी–

"का काशी का ऊसर मगहर, राम हृदय बसि मोरा।
जो काशी तन तजिहं सरीरा, रामहिं कौन निहोरा।। "

***भूगोल विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उ.प्र.।**

कबीर दास की समाजवादी विचारधारा को विम्बावत्मक स्वरूप प्रदान करते हुए डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है, "कबीर समाज सुधारक पहले थे, कवि बाद में।" कबीर मूलतः भक्त हैं परंतु उनकी भक्ति केवल आत्म भक्ति तक सीमित रही हो ऐसी बात नहीं है उसमें अंतः संघर्ष के साथ लोक संघर्ष और निवृत्ति के साथ प्रवृत्ति भी है। वे समर्थ का परवाना लाए थे हंस उभारने के लिए। कबीर ने यह सब कुछ धर्मोप्रदेशों के माध्यम से किया है।[1] कबीर का प्रादुर्भाव उस समय हुआ था जब संपूर्ण समाज संकीर्णताओं और कूपमंडूकता से जकडा हुआ था। पुरानी परंपराओं का लबादा ओढ़े संपूर्ण समाज 'येन केन प्रकारेण' आगे बढ़ रहा था। कबीर सूर्य की भांति ऐसे कूपमंडूक समाज में अवतरित हुए। समानता, भेदभाव के मुद्दे पर रविंद्र कुमार लिखते हैं – ''ऐसी स्थिति में संत कवियों की वैचारिक संघर्ष चेतना उनकी जनतांत्रिक अवधारणा समानता और भाईचारे के आदर्श आज हमारे लिए संघर्ष का एक नया मार्ग प्रस्तुत करते हैं।''[2] कबीर ने समाज की विसंगतियों को पहचाना जन मन में व्याप्त हिंसा की भावना को समझा फिर मानव समाज को सुधारने का संकल्प लिया है उन्होंने लोगों से कहा –

"पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुँआ, पंडित भया ना कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।"

कबीर दास ने संकीर्ण समाज को, धर्मांधता में सिमटे समाज को नूतन आलोक दिखाने का प्रयास किया। इस संदर्भ में उन्होंने समाज में व्याप्त रूढ़ियों पर जमकर प्रहार किया। डॉ० नगेंद्र के अनुसार, "भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीरदास ऐसे महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं जिन्होंने शताब्दियों की सीमा का उल्लंघन कर दीर्घकाल तक भारतीय जनता का पथ आलोकित किया और सच्चे अर्थों में जनजीवन का नायकत्व किया "।[3] उन्होंने मुसलमानों को सचेस्ट करते हुए कहा की–

"कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लियो बनाए।
ता चढ़ि मुल्ला बाग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।"

कबीर दास ने माया को ही सांसारिक विषय– विकार का आधार माना परंतु माया से दूर रहने का रास्ता भी दिखाया है। उन्होंने मानव को समझाते हुए कहा–

"का माँगू कछु थिर न रहाई, देखत नैंन चला जग जाई।
इक लाख पूत सवा लख नाती, ता रावण घर दिया न बाती।।"

कबीर दास की दार्शनिकता में आत्मा– परमात्मा का भी विलक्षण रूप दिखाई देता है उन्होंने मानव जीवन को हर भंगुर माना और आत्मा–परमात्मा को सर्वशक्तिमान माना है। उन्होंने क्षणभंगुर जीवन के लिए कहा– ''ऐसा यह संसार है, जैसा सेमल फूल।"

परमात्मा के विषय में उन्होंने कहा–

"कहें कबीर जे उदिक समान ते न मुए हमारी जान।।"

कबीर दास 'करतल भिक्षा तरु तर वास' सिद्धांत के प्रतिपालक थे। इसलिए वे घुमक्कड़ परंपरा को अपना कर लोगों को समझाने का पूर्ण प्रयास किया और अपने मन की भावना को उन्हीं के शब्दों में समझाने की कोशिश की। उन्होंने भाषा को उसी रूप में समझा और स्वीकार किया जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थी। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था वह वाणी के डिक्टेटर थे जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा उसी रूप में कहलवा दिया बन गया तो सीधे–सीधे नहीं तो दरेरा देकर। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्यिक– रसिक काव्यानंद का आस्वादन करने वाला ना समझे तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता है।"[4] वर्तमान समय का उपभोक्तावाद, पूंजीवाद कई तरह की जटिलताएं पैदा कर रहा है। यह विश्व शांति पर नव– साम्राज्यवाद पैदा कर विश्व शांति के मार्ग में खतरा पैदा कर रहा है वही व्यक्तिगत स्तर पर मानव को भोग विलास की वस्तुएं का गुलाम बना रहा है। इस संदर्भ में कबीर के विचारों को देखें तो पाते हैं कि कबीर ने माया को अपनी दार्शनिक विचारधारा का एक सोपान माना और माया के विषय में यहां तक कह डाला–

"माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिए कर डोले, बोले मधुरे बानी।।"

कबीर ने माया को ही सांसारिक विषय विकार का आधार माना, परंतु माया से दूर होने का रास्ता भी दिखाया। मानव को समझाते हुए कहा

"का माँगू कुछ थिर न रहाई, देखत नैंन चला जग जाई।
इक लाख पूत सवा लाख नाती, ता रावन घर दिया न बाती।। "

निष्कर्ष :– कबीर दास ने अपनी बात को समझाने के लिए प्रतीकों और विंबो का प्रयोग किया। उन्होंने अन्योक्तियों के माध्यम से जनता–जनार्दन का मार्गदर्शन किया। वास्तविकता तो यह है कि कबीर के जीवन का एकमात्र उद्देश्य समाज को सही राह पर लाना और मानव को वास्तविकता का भान कराना था। उनकी मंगल कामना हर समय उचित प्रतीत होगी, क्योंकि उसमें परमार्थ छिपा है। वे समाज के सुधारक थे; महाकाव्य लिखना उनका उद्देश्य ना था, लेकिन जनमानस की सहज बोली में ज्ञानवर्धक प्रेरक बातों से कविता की कटोरी में उन्होंने बहुत रस इकट्ठा किया है। कबीर पहले समाज सुधारक हैं ; फिर संत और अंत में कवि हैं।

संदर्भ–सूची :–

1. रविंद्र कुमार सिंहः संत काव्य की प्रासंगिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2006, पृष्ठ 16।
2. डॉ०शिवकुमार शर्माः हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 20 वाँ संस्करण, 2012, पृष्ठ 152।
3. नगेंद्र (संपा.)हरदयाल (सह संपा.) : हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, सैतीसवां संस्करण, 2011, पृष्ठ 118।
4. डॉ० शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2012, पृष्ठ 155–156।

महाकवि बाणभट्ट के काव्यों में सामाजिक और आर्थिक-चिंतन

अमित कुमार महलावत*

शोध सार :– महाकवि बाणभट्ट का समय छठी शताब्दी था। इस समय उत्तर भारत में शक्तिशाली वर्धनवंश का शासन था समहाकवि बाणभट्ट के मुख्यग्रन्थ कादम्बरी, चंडीशतक एवम् हर्षचरित हैं। इन ग्रंथो के अध्ययन से तत्कालीन समाज की सामाजिक और आर्थिक–चिंतन, वर्णव्यवस्था, जाति प्रथा, आश्रमव्यवस्था, पुरुषार्थ, विवाह आदि संस्कार, राजव्यवस्था आर्थिक संसाधन, जीविकोपार्जन का आधार इत्यादि का ज्ञान होता है। समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक जीवन का आधार थी।

भूमिका :– महाकवि बाणभट्ट कालीन समाज में मानव वर्णाश्रम व्यवस्था में रहकर जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति करता था सतत्कालीन समाज में जाति प्रथा का प्रचलन था। जातियां उपजातियों में विभक्त थी। हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारो का समावेश जीवन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य था। सामाजिक व्यवस्थाओं में जीवन में इन सभी प्रथाओं, रीतियों को मानना आवश्यक था। महाकवि बाणभट्टकालीन समाज में राजा, राज्य का श्रेष्ठी होता था और राजा का धर्म राजधर्म होता था। जो सभी धर्मों में प्रधान होता था। उदाहरण के लिए महाभारत के शांतिपर्व में वर्णित एक श्लोक को दृष्टिपात करते हैं। यथा– सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधानाः, सर्वे धर्माःपाल्यमाना भवन्ति।/ सर्वस्तयागो राजधर्मेषु राजम्, स्यास गे चाहुर्धर्ममग्यं पुराणम्।।

(क) महाकवि बाणभट्ट के काव्यों में सामाजिक चिंतन :– उस समय भारतीय हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था, सोलह संस्कार एवं पुरुषार्थ का अत्यधिक महत्त्व था। महाकवि बाणभट्ट ने जाति प्रथा को हिन्दू समाज का एक प्रमुख अंग बताया है। इस समय चार वर्णों के अनेक जातियों में बिखरने से जातियों व उपजातियों की संख्या में उतरोत्तर वृद्धि हुई जिनमें अनेक कुप्रथाओं ने जन्म लिया।

(क) वर्णव्यवस्था :– वर्ण शब्द का अर्थ वरण करना या चुनना होता है प्राचीन भारतीय मनीषियों ने अर्थोपार्जन के लिए वृत्ति शब्द का प्रयोग किया है जिसका अभिप्राय वर्ण से है। अर्थात किसी विशेष व्यवसाय का वरण करना या चुनना जिससे जीवीकोपार्जन किया जा सके।

वृत्ति भी मानव जीवन के आर्थिक क्रियाकलापों से सम्बद्ध थी। परम्परागत तौर पर देखा जाए तो वैदिक काल से ही चार वर्णों का आविर्भाव हो चुका था जिनमें अलग –अलग रीति –रिवाज एवं धार्मिक अनुष्ठानों का महत्त्व था। इन सभी के नैतिक कर्तव्य भी अलग–अलग थे। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी कृत्तियों में इन चारों वर्णों यथा – (1) ब्राह्मण (2) क्षत्रिय (3) वैश्य (4) शूद्र, के कर्त्तव्य और दायित्त्व यथा स्थान उल्लेखित किये गए है। महाकवि बाणभट्ट ने अपनी कृति हर्षचरित में भी यथा अवसर वर्णों का विस्तार किसी न किसी माध्यम से किया है। इसमें क्षत्रिय वंश के राजा हर्षवर्धन राजधर्म की रक्षा का पूर्ण दायित्त्व् वहनकर अपनी नैतिक जिमेदारी समझ कर करते हैं तथा राज्य की रक्षा कर अपने राज धर्म का परिचय देतें है और महाकवि ने इसी ग्रन्थ के चतुर्थ उच्छ्वास में राजा प्रभाकर वर्धन एवं रानी यशोमती के द्वारा राजधर्म के कर्त्तव्यों का पालन करते हुये राजा के द्वारा अपनी बहिन राज्यश्री के विवाह संस्कार का वर्णन भी किया है। तदोपरांत सप्तम् उच्छ्वास में सेना, अर्थात् क्षत्रिय वर्ण के वीरतापूर्ण कृत्यों को उद्घाटित किया है।

(ख) आश्रम व्यवस्था :– महाकवि के इसी ग्रन्थ के अष्टम उच्छ्वास में विन्ध्याटवी के आश्रम तथा दिवाकर मिश्र के आश्रम का सुन्दर चित्रण मिलता है। वहीँ दूसरी ओर महाकवि बाणभट्ट की एक अन्य अनुपम कृति कादम्बरी में भी गृहस्थ आश्रम के साथ–साथ सन्यास आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम का सुन्दर विवेचन मिलता है। महाकवि ने कादम्बरी में जाबाली आश्रम का अत्यन्त ही रोचक वर्णन किया है वही दूसरी ओर हर्षचरितं में राजकुमारों की शिक्षा ब्रह्मश्रम में पूर्ण होती है।

(ग) संस्कार :– महाकवि बाणभट्ट ने अपने मुख्य ग्रन्थों में सामाजिक व्यवस्था में उस समय प्रचलित सोलह संस्कारों का भी वर्णन यथा स्थान किया है यथा अपनी एक अन्य कृति पार्वती –परिणय पर (किंचित विद्वानों को

***(शोध –छात्र) संस्कृत –विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर (राज.)**

हालाँकि कवि की कृति होने का संदेह है।) जिसमें भी विवाह संस्कार का सुन्दर परिदृश्य उद्घाटित होता है जिसमें पार्वती एवं शिव के परिणय बन्धन से जुडी प्रथा एवं रिवाजों का सुंदर समावेश भी हुआ है।

उस समय के समाज में सोलह संस्कारों का विशेष महत्व था तथापि समाज में उपनयन, समावर्तन और विवाह संस्कारों का भी अत्यंत महत्व था। तांत्रिकों का भी समाज में यत्र –तत्र प्रचार था। समाज में सहिष्णुता व्याप्त थी। उल्लेख है की ब्राह्मण दिवाकर ने बौध धर्म अपनाया तो किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई उनके आश्रम में एक साथ अर्हत (जैन) बौध, केश्लुन्चक,श्वेताम्बर आदि नास्तिक धर्मावलम्बी और औपनिषद, पौराणिक, धर्मशास्त्रिय, याज्ञिक, शैव कापालिक, कणाद आदि वैदिक मतानुयायी भी रहते थे यथा दिगम्बर, जैनों के दर्शन को अपशकुन माना जाता था। धर्म के नाम पर पाखण्ड अधिक था। चण्डिका मंदिर में पशु बलि दी जाती थी। इससे तत्कालीन समाज में व्याप्त प्रथाओं की जानकारी मिलती है।

इसके आलावा समाज में पञ्च महायज्ञ, दान, भक्षाभक्ष्य, विविधसंस्कार, स्त्री धर्म क्षत्रियों तथा राजाओं के कर्त्तव्यों, व्यवहार (अपराध, दण्ड सम्पति विभाग, विभिन्न विवादों का निपटारा) आपद धर्म, कर्मफल शांति, सन्यास आदि प्रमुख है।

कुछ ग्रन्थों में धार्मिक अनुष्ठान यथा व्रत, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, जनकल्याणार्थ मंदिर, धर्मशाला, तड़ाग आदि का निर्माण, तीर्थ, काल आदि का भी वर्णन है।

महाकवि बाणभट्ट की कृतियों में आर्थिक चिंतन :–

हमारी भारतीय संस्कृति में भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति का एक समान ही महत्त्व है। इस तथ्य से सभी भली भांति परिचित है कि भौतिक उन्नति का एक ही मार्ग है। अर्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति क्योंकि व्यक्ति के सभी भौतिक सुखों की प्राप्ति अर्थ से ही संभव है। उस अर्थ का नाम भी सार्थक है यथा–

"अर्थ्यते सर्वेःइति अर्थः"।

इस सन्धर्भ में महर्षि चाणक्य का विचार है कि प्राणियों की सुख–समृद्धि का मूल है धर्म।

यथा– सुखस्य मूलं धर्मः धर्मस्य मूलं अर्थः (चाणक्य सूत्र 1.1–2)

इस धर्म का भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों में व्युत्पतिलभ्य अर्थ निम्न प्रकार है यथा–

1 .धारणात् धर्म मित्याहुः। 2 .धार्यते अनेनेति धर्म :

धर्म का मूल अर्थ (धन) है। जिसका अवर्णनीय महत्त्व है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अर्थ के बिना उन्नति संभव नहीं है। चाहे राजा,प्रजा, गृहस्थ, सन्यासी, मूर्ख, विद्वान्, व्यापारी कृषक, नट या कोई भी हो जीवन यापन नहीं कर सकता। शूद्रक ने मृच्छकटीकम् में चारुदत्त के द्वारा उद्घाटित वाक्य में कहा है "दरिद्रता अथवा मृत्यु दोनों में से मुझे मरना रुचिकर प्रतीत होता है क्योंकि मृत्यु का कष्ट अल्प समय तक होगा परन्तु दरिद्रता कभी न समाप्त होने वाली वेदना है।

इसी प्रकार धर्मशास्त्रियों ने द्वितीय अवस्था को धनार्जन योग्य अवस्था बताया है क्योंकि गृहस्थ धर्म और काम पुरुषार्थ की सिद्धि बिना अर्थ के संभव नहीं है। कामन्दकीय नीतिसार में भी कहा गया है–

अर्थःजीविकोपकरणम्।

तथा – उद्योगिनम् पुरुष सिंहमुपेति लक्ष्मीः

राजा हर्ष के राजदरबार में आरट्ट,कम्बोज,भरद्वाज,पारसिक,सिंधु आदि देशों से घोड़े लाये थे। जिससे ये ज्ञात होता है की राजा हर्ष के समय इन देशों के मध्य व्यापार होता था। (हर्षचरित, द्वितीये उच्छ्वास, प्रष्ठ ां 108) महाकवि बाणभट्ट के मित्रों से जानकारी मिलती है कि उस समय किस–किस वृत्ति के लोग निवास करते थे यथा –विषवैद्य, बंदी, ताम्बुलदायक, वैद्य, पुस्तकवाचक, सोनार, लेखक, चित्रकार, मृदंगवादक, गायक, वंशी–वादक गंधर्वशास्त्र का ज्ञाता सेवक, शैलावी, ऐन्द्रजालिक, मिट्टी का खिलौना बनाने वाला इत्यादि लोग अर्थोपार्जन कर अपनी जीविका निर्वाह करते थे एवं अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं से समाज को अंलकृत करते थे। (हर्षचरित प्रष्ठ सं.168 –169) भास्कर वर्मा द्वारा हर्ष के पास कुछ उपहार भेजे गये थे जिनमें मुख्यतःकार्दरंग द्वीप की ढालें, बेंत के आसन,कृष्णागुरु के तेल,वस्त्रादि थे जिसमें से कुछ वणिक से ख़रीदे गये थे। इससे ज्ञात

होता है कि बाणकालीन समाज धन–अर्जन करता था। इसके अलावा हर्षचरितं के चतुर्थ उच्छ्वास में राज्यश्री के स्वर्ण आभूषणों का भी उल्लेख इस ग्रन्थ में आया है यथा ''समुद्र द्वारा दूसरी लक्ष्मी सदृश उत्त्पन्न की गई (राज्यश्री) जिसके कानों में मोती की बालियां (कर्णभूषण) विराजित थी। (हर्षचरितं चतुर्थ उच्छ्वास प्रष्ठ सं 299) महाकवि ने कादम्बरी ग्रन्थ में भी महाश्वेता एवं कादम्बरी के आभूषणों (कर्ण आभूषणों) का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर श्रृंगार रस में अभिहित किया है।(कादम्बरी प्रष्ठ सं 649)

इससे तात्पर्य है कि उस समय आभूषण भी अर्थ (धन) का ही पर्याय थे। उस समय समाज में प्रचलित चार पुरुषार्थ निम्न प्रकार थे यथा– (1) धर्म (2) अर्थ (3) काम (4) मोक्ष, पूर्व तीन पुरुषार्थ मानव जीवन यापन के प्रमुख अंग थे एवं अंतिम (मोक्ष) जो जीवन के बाद प्राप्त करना होता था किन्तु चतुर्थ (मोक्ष) पूर्वोत्तर तीनों से सम्बंधित था जिसकी आवश्यकता जीवन पूर्ण होने पर की जा सकती थी।

इन्ही में से एक प्रमुख अर्थ था। अर्थ से आशय धन से था अर्थात् जीवीकोपार्जन हेतु धन की आवश्यकता होती है एवं धन का संग्रह हर युग में रहा है यथा वैदिक काल में गो (धेनू) को धन माना गया एवं इसके बाद अन्य पशुधन, भू धन, रत्न,आभूषण, अनाज को भी अर्थ का स्थान दिया गया था। महाकवि बाणभट्ट के समय मुद्रा भी प्रचलन में आ गई थी। इनकी रचना कादम्बरी एवं हर्षचरितं से मिले तथ्य ये बताते हैं कि बौद्धकालीन राज सिंहासन एवं वहाँ कि मूर्तियों की वेशभूषा, परिधान, केश सज्जा व आभूषणों से राजाओं की आर्थिक स्थिति की सामान्य जानकारी प्राप्त होती है। इस समय के साहित्य एवं ग्रन्थों के सर्वेक्षण से जानकारी मिलती है कि उस समय देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। कृषि लोगों की जीविका का मुख्य आधार थी। ह्वेनसांग (चीनी लेखक)ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि उस समय अन्न तथा फलों का उत्पादन अत्यंत मात्रा में होता था।

हर्षचरितं के अनुसार श्रीकंठ जनपद में चावल, गेंहू, ईख, आदि के अलावा फल भी उगाये जाते थे। भूमि का अधिकांश भाग सामंतों के हाथ में था। इस समय कन्नौज व्यापार का केंद्र था। जिससे इस समय अर्थव्यवस्था फली–फूली और लोग आत्मनिर्भर हो गये। हर्षचरितं के दूसरे अध्याय में हर्ष के प्रशासनिक और सैन्य संगठन के आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने की जानकारी मिलती है।

निष्कर्षतः ये कहना उपयुक्त होगा कि महाकवि बाणभट्ट कृत हर्षचरितं एवं कादम्बरी ग्रंथो में राष्ट्र में निर्वासित लोगों, राजकार्य में संलग्न राजदरबारियों, राजा एवं जनता के अन्तर्सम्बन्धों के बीच प्रचलित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक माहौल का अत्यंत सुंदर और विशद वर्णन पदे–पदे मिलता है, इसके अलावा चंडीशतकं (एक स्तुति परक ग्रन्थ है) पार्वती– परिणय, में भी यत्र–तत्र सामजिक और आर्थिक चिंतन का विन्यास हुआ है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची :–

1. कादम्बरी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, लेखक आचार्य शेषराज'रेग्मी संस्करण दृ २०७७ प्रष्ठ संख्या 27।
2. चंडीशतकम्, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (संपादक), फतहसिंह जोधपुर प्रष्ठ संख्या ११।
3. हर्षचरितं, कृष्णदास अकादमी (सं.) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीये संस्करण, सन 2017 प्रष्ठ संख्या–118,190,241।
4. पार्वती –परिणय, श्रीवाणी विलास मुद्रा यन्त्रालये, शब्दलोक प्रकाशन, पारिजात प्रेस वाराणसी, प्रष्ठ संख्या 126
5. हर्षचरित :एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार –राष्ट्र भाषा –परिषद पटना, संस्कृत द्वितीय, विक्रमाब्द –2021 प्रष्ठ संख्या 479
6. बाणभट्ट की आत्मकथा, पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशन, नई दिल्ली, 1946 प्रष्ठ संख्या 6,8,14
7. हर्षचरितं एक सांस्क्रतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना प्रकाशन वर्ष वि. सं 2021 प्रष्ठ संख्या 10,24।
8. संस्कृत कवि दर्शन, डॉ भोला शंकर व्यास प्रथम संस्करण, चौखम्बा विद्याभवन, चौक बनारस, 2012, प्रष्ठ संख्या –8।
9. कादम्बरी एक सांस्क्रतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2014, प्रष्ठ संख्या 79।
10. कामंद्कीयनीतिसारः खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई प्रष्ठ सं 221

अध्यात्मरामायणदृष्ट्या रामस्य स्वरूपविचारः

डॉ. नीरजकुमारभार्गवः*

भगवान् नारायण एव स्वभक्तानां रक्षणाय दुष्टानां विनाशाय च श्रीरामरूपेण संसारे प्रादुर्बभूव।तस्य चरित्रं तत्र तत्र ग्रन्थेषु विस्तरेण वर्णितम्। किन्तु अध्यात्मरामायणे भगवतः श्रीरामस्य यथा निरूपणं विद्यते तथा अन्यत्र नास्ति। अत्र भगवतः श्रीरामस्य ब्रह्मरूपेण वर्णनं वर्तते। भगवान् रामः एव ब्रह्मस्वरूपः अस्ति। स एव अस्य जगतः कर्ता भर्ता संहर्ता च वर्तते। अत एव अध्यात्मरामायणे भगवता शिवेन, भगवत्या सीतया, जगतः स्त्रष्ट्रा ब्रह्मणा, भगवत्या कौशल्यया, ब्रह्मर्षिणा विश्वामित्रेण, श्रीरामभक्तेन सुतीक्ष्णेन, परमर्षिणा अगस्त्येन, श्रीमता जटायुना च भगवतः श्रीरामस्य स्वरूपं प्रतिपादितम्। अतोऽत्र प्रबन्धे भगवतः श्रीरामस्य स्वरूपं प्रस्तूयते।

भगवान् शिवः श्रीरामस्य स्वरूपं प्रतिपादयन्नाह –

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यमूर्तिम्।
आनन्दसान्द्रममलं निजबोधरूपं सीतापतिं विदिततत्त्वमहं नमामि[1]।।

अर्थात् अहं विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुम्, एकम्, मायाश्रयम्, विगतमायम्, अचिन्त्यमूर्तिम्, आनन्दसान्द्रम्, अमलम्, निजबोधरूपम्, सीतापतिं विदिततत्त्वं नमामि। अत्र विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु इत्यत्र आदिपदेन तिरोभावानुग्रहयोः ग्रहणं कार्यम्। एवञ्च विश्वस्य उद्भवस्य स्थितेः प्रलयस्य तिरोभावस्य अनुग्रहस्य च हेतुं कारणमित्यर्थः। एवञ्च अनेन रामस्य जगज्जन्महेतुत्वम्, जगत्स्थितिहेतुत्वम्, जगल्लयहेतुत्वम्, तिरोभावहेतुत्वम्, अनुग्रहहेतुत्वम् इति लक्षणं सूचितम्। एकमित्यस्य असहायं सहकारिकारणरहितमित्यर्थः, अद्वितीयमित्यर्थो वेति। मायाश्रयमित्यस्य मायाधारमित्यर्थः। विगतमायमित्यस्य विगता माया आवरणशक्तिरूपा यस्य यस्मात् वा तमित्यर्थः, मायारहितमिति यावत्। अचिन्त्यमूर्तिमित्यस्य अचिन्त्या अगोचरा मूर्तिः यस्य तमित्यर्थः, अविषयमिति यावत्। आनन्दसान्द्रमित्यस्य आनन्दस्वरूपमित्यर्थः। अमलमित्यस्य रागादिदोषरहितमित्यर्थः। निजबोधरूपमित्यस्य नित्यबोधस्वरूपमित्यर्थः। सीतापतिमित्यस्य मायापतिमित्यर्थः। विदिततत्त्वमित्यस्य विदितं तत्त्वं यस्य तमित्यर्थः, ज्ञाततत्त्वमिति यावत्।

भगवान् महादेवः प्रोवाच श्रीरामस्य स्वरूपम् –

रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः[2]।।

अर्थात् यः परात्मा, प्रकृतेः अनादिः, आनन्दः, एकः, पुरुषोत्तमः अस्ति, स च स्वमायया इदं कृत्स्नं जगत् सृष्ट्वा नभोवदन्तर्बहिरास्थितः स रामः इति। अत्र परात्मा इत्यनेन रामस्य ब्रह्मरूपत्वं बोधितम्। प्रकृतेरनादिरित्यनेन मायादोषरहितत्वं सूचितम्। आनन्द इत्यनेन आनन्दस्वरूपत्वं प्रोक्तम्। एक इत्यनेन सजातीयविजातीयभेदरहितत्वं बोधितम्। पुरुषोत्तम इत्यनेन क्षराक्षराभ्यां परत्वं बोधितम्। स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा इत्यनेन जगज्जन्मादिकारणत्वं सूचितम्। नभोवदन्तर्बहिरास्थित इत्यनेन सर्वव्यापकत्वं सूचितम्। अन्यत्रापि प्राह भगवान् महादेवः श्रीरामस्य स्वरूपम् –

त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात्त्वं सर्वकारणम्[3]।।

अनेनापि भगवतः श्रीरामस्य जगज्जन्मादिकारणत्वं सूचितं भवति। भगवती सीता प्रोवाच श्रीरामस्य स्वरूपम्–

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्[4]।।
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्। सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्[5]।।

अर्थात् रामं ब्रह्म विद्धि, तच्च सच्चिदानन्दम्, अद्वयम्, परम्, सर्वोपाधिविनिर्मुक्तम्, सत्तामात्रम्, अगोचरम्, सर्वव्यापिनम्, आत्मानम्, निर्मलम्, निर्विकारम्, निरञ्जनम्, अकल्मषम् शान्तम्, स्वप्रकाशम्।

अत्र सच्चिदानन्दम् इत्यत्र कर्मधारयसमासो विद्यते, एवञ्चास्य सत्, चित्, आनन्दम् इत्यर्थः। ततश्च तस्य स्वरूपमस्ति सत्, चित्, आनन्दम् इति। अत्र अद्वयमित्यस्य अद्वैतम् इत्यर्थः। परमित्यस्य उत्कृष्टमित्यर्थः।

*** सहायकाचार्यः, संस्कृतदर्शनविभागः ,रामकृष्णमिशन्विवेकानन्दशैक्षणिकशोधसंस्थानं बेलुडमठः, हाबडा।**

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमित्यस्य अन्तःकरणाद्युपाधिशून्यमित्यर्थः। सत्तामात्रमित्यस्य सत्तारूपमित्यर्थः। अगोचरमित्यस्य मनोवचसोरप्यविषयमित्यर्थः। सर्वव्यापिनमित्यस्य सर्वव्यापकमित्यर्थः। आत्मानमित्यस्य आत्मस्वरूपमित्यर्थः। निर्मलमित्यस्य रजोहीनमित्यर्थः। निर्विकारमित्यस्य षड्भावविकारहीनमित्यर्थः। निरञ्जनमित्यस्य अविद्यातत्कार्य—रूपतमोहीनमित्यर्थः। अकल्मषमित्यस्य रागादिकल्मषहीनमित्यर्थः। शान्तमित्यस्य निरीहमित्यर्थः। स्वप्रकाशमित्यस्य तत्त्वविद्यया अविद्यानिवृत्तौ स्वयमेव प्रकाशमानमित्यर्थः। पुनरप्याह

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोत्याकाङ्क्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित्।
आनन्दमूर्तिरचलः परिणामहीनो मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति[6]।।

अत्र रामो न गच्छति इत्यनेन चरणाद्यवयवशून्यत्वमुक्तम्। न तिष्ठति इत्यनेन आधारशून्यत्वं सूचितम्। नानुशोचतीत्यनेन दुःखरहितत्वं बोधितम्। नाकाङ्क्षते इत्यनेन इष्टसाधनताज्ञानशून्यत्वमुक्तम्। न त्यजति इत्यनेन इष्टसाधनताज्ञानशून्यत्वं सूचितम्। न करोति किञ्चिदित्यनेन कृतिसाध्यविज्ञानशून्यत्वं सूचितम्। आनन्दमूर्तिरित्यनेन आनन्दस्वरूपत्वं सूचितम्। अचल इत्यनेन कूटस्थत्वं प्रोक्तम्। परिणामहीन इत्यनेन कूटस्थमेव दृढीकृतम्। मायागुणान् अनुगतो तथा विभातीत्यनेन अस्य जगतः विवर्त्तोपादानत्वमुक्तम्।

ब्रह्माप्युवाच श्रीरामस्य स्वरूपम् —

मायया गुणमय्या त्वं सृजस्यवसि लुम्पसि। जगत्तेन न ते लेपः स्वानन्दानुभवात्मनः[7]।।

अत्र मायया गुणमय्या त्वं सृजसीत्यनेन जगज्जन्मकारणत्वम्, अवसीत्यनेन जगत्स्थितिकारणत्वम्, लुम्पसीत्यनेन जगल्लयकारणत्वं च सूचितम्। स्वानन्दानुभवात्मन इत्यनेन च स्वस्वरूपापरोक्षेण सर्वत्र मिथ्यादर्शनेन तदभिमानरहितत्वं सूचितम्।

भगवती कौशल्या प्राह श्रीरामस्य स्वरूपम् —

देवदेव नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर। परमात्माऽच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः।।
त्वमेव मायया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च। सत्त्वादिगुणसंयुक्तस्तुर्य एवामलः सदा[8]।।

अर्थात् त्वं भगवान् राम एव स्वशक्त्या ब्रह्मरूपेण विश्वं सृजसि, विष्णुरूपेण अवसि, रुद्ररूपेण हंसि च। अपि च त्वं सत्त्वादिगुणसंयुक्तः असि अमलः तुर्यश्चासि। अनेन भगवतः श्रीरामस्य जगज्जन्मकारणत्वम्, जगत्स्थितिकारणत्वम्, जगल्लयकारणत्वं स्पष्टमेव सूचितम्। अथ यदि रामस्य जगज्जन्मादिकारणत्वं प्रोच्यते चेत् तस्य कर्मबद्धत्वात् परमात्मत्वं न स्यात्, अत एव "सत्त्वादिगुणसंयुक्तः तुर्यः एवामलः सदा" इति, तुर्यः एव इत्यस्य साक्षीवेत्यर्थः, अत एव स अमलः. मायागुणास्पृष्ट इति। अथ यदि रामस्य जगज्जन्मादिकारणत्वं तर्हि कथं तस्य अमलत्वमिति प्रतिपादयितुमाह —

करोषीव न कर्त्ता त्वं गच्छसीव न गच्छसि। न श्रृणोषि श्रृणोषीव पश्यसीव न पश्यसि[9]।।

अनेन भगवतः श्रीरामस्य कृतिमत्त्वाभावः, गमनवत्त्वाभावः, श्रवणकर्तृत्वाभावः, दर्शनकर्तृत्वाभावश्च सूचितः, अपि चानेन उपलक्षणविधया सर्वदोषरहितत्त्वाभावः बोधितः।

अथ प्राणादिमतः भगवतो रामस्य कुतो गमनादिकं नास्तीत्युच्यते —

अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादि श्रुतिरब्रवीत्। समः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न लिप्यसे[10]।।

अर्थात् भवान् प्राणादिशून्य अस्ति, अत एव स शुद्धः अस्ति, रागादिदोषरहितः अस्ति, अत एव स समः अस्ति, शत्रुमित्रविवेकशून्यः अस्ति, अत एव स सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्नपि न कर्मभिः लिप्यसे।

ऋषिः विश्वामित्रोऽप्याह श्रीरामस्य स्वरूपम् —

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण एष स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनूं लोकविमोहिनीं यो धत्ते परानुग्रह एष रामः[11]।।

अर्थात् अयं रामः सर्वजीवेभ्यः परत्वात् परात्मा इत्युच्यते, पुरु शयनात् पुरुषः कथ्यते, सर्वदाविद्यमानत्वात् पुराण इत्युच्यते, स्वप्रकाशत्वात् स्वयंज्योतिः इत्युच्यते, अविनाशित्वात् अनन्तः इत्युच्यते, सर्वकारणत्वात् आद्यः इति च कथ्यते। एवम्भूतः भगवान् श्रीरामः परानुग्रहे लोकविमोहिनीं मायातनूं धत्ते। अथ एवम्भूतस्य रामस्य सृष्टिस्थितिलयकर्तृत्वं कथमिति प्रतिपादयितुमाह —

अयं हि सृष्टिस्थितिसंयमानामेकः स्वमायागुणबिम्बितो यः।
विरिञ्चिविष्णवीश्वरनामभेदान् धत्ते स्वतन्त्रः परिपूर्ण आत्मा[12]।।

अर्थात् अयं भगवान् राम एव सृष्टिस्थितिसंयमानां स्वतन्त्रः कर्ता, एकः परिपूर्णः आत्मा चास्ति, अयमेव स्वमायागुणेषु रजःसत्त्वतमःसु बिम्बितः सन् विरिञ्चिविष्णवीश्वरनामभेदान् धत्ते। तत्र रजोगुणोपहितचैतन्यमेव ब्रह्मा,

सत्त्वगुणोपहितं विष्णुः, तमोगुणोपेतं रुद्रः इति कथ्यते। अनेनापि श्रीरामस्य जगज्जन्मादिकारणत्वं परमात्मत्वं च सूचितम्। पुनरप्याह

जगतामादिभूतस्त्वं जगत् त्वं जगदाश्रयः। सर्वभूतेषु संसक्त एको भाति भवान् परः[13]।।
ओङ्कारवाच्यस्त्वं राम वाचामविषयः पुमान्। वाच्यवाचकभेदेन भवानेव जगन्मयः[14]।।

अनेन जगतां कारणत्वम्, जगदाधारत्वम्, सर्वान्तर्यामित्वम्, ओङ्कारवाच्यत्वम्, इन्द्रियागोचरत्वम्, जगन्मयत्वं च सूचितम्।

एवमेव श्रीरामभक्तेषु प्रमुखः सुतीक्ष्णः प्राह रामस्य स्वरूपम् –

विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुरेकस्त्वं मायया त्रिगुणया विधिरीशविष्णू।
भासीश मोहितधियां विविधाकृतिस्त्वं यद्वद्रविः सलिलपात्रगतो ह्यनेकः[15]।।

अर्थात् त्वं विश्वस्य सृष्टिलयसंस्थितिहेतुः, एकः, त्वमेव त्रिगुणया मायया विधिरिति, शिव इति, विष्णुरिति भासि। त्वमेव पिहितबुद्धीनां विविधरूपेण प्रतिभाति, यथा सलिलपात्रगतः एक एव रविः अनेकः प्रातिभाति।

अत एव सप्तर्षिष्वन्यतम अगस्त्यः प्राह – त्वं रजोगुणतो ब्रह्मा जगत्सर्गस्य कारणम्।
सत्त्वाद्विष्णुस्त्वमेवास्य पालकः सद्भिरुच्यते।लये रुद्रस्त्वमेवास्य त्वन्मायागुणभेदतः[16]।।

अर्थात् रजोगुणेन त्वमेव ब्रह्मा सन् जगतः सर्गस्य कारणम्, सत्त्वगुणेन त्वमेव विष्णुः सन् अस्य जगतः पालनं करोषि, त्वमेव तमोगुणोपेतः सन् रुद्ररूपेण अस्य जगतः लयस्य कारणं भवसि। अनेन भगवतः श्रीरामस्य अस्य जगतः जगज्जन्मकारणत्वं जगत्स्थितिकारणत्वं जगल्लयकारणत्वं च सूचितम्।

एवमेव श्रीरामभक्तेषु प्रमुखः जटायुः प्राह रामस्य स्वरूपम् –

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम्[17]।।

अर्थात् – अगणितगुणम्, अप्रमेयम्, आद्यम्, सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम्, उपरमपरमम्, परात्मभूतम्, रामचन्द्रम्, सततम् अहं प्रणतोऽस्मि। अत्र अगणितगुणमित्यनेन अनन्तशक्तिसम्पन्नत्वं सूचितम्। अप्रमेयमित्यनेन देशकालापरिच्छेद्यत्वं बोधितम्। सगलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुमित्यनेन जगज्जन्मादिकारणत्वमुक्तम्। उपरमपरममित्यनेन प्रपञ्चस्य विरतौ परमार्थरूपत्वं प्रतिपादितम्। परात्मभूतमित्यनेन परमात्मस्वरूपत्वं प्रोक्तम्।

अत्र निष्कर्षः – अध्यात्मरामायणे शिवब्रह्मादिना भगवतः श्रीरामस्य स्वरूपं प्रतिपादितम्। तदनुसारं सत्त्वम्, चित्त्वम्, आनन्दम् इत्यादीनि श्रीरामस्य स्वरूपलक्षणानि सन्ति। जगज्जन्मादिकारणत्वं च श्रीरामस्य तदस्थलक्षणानि सन्तीति प्रतिफलति। भगवान् राम एव परब्रह्मरूपः।

सन्दर्भग्रन्थाः :–

1. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / प्रथमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –60।
2. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / प्रथमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –76।
3. अध्यात्मरामायणम् / अयोध्याकाण्डम् / प्रथमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –23।
4. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / प्रथमोध्यायः / श्लोकसंख्या – 91।
5. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / प्रथमोध्यायः / श्लोकसंख्या – 92।
6. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / प्रथमोध्यायः / श्लोकसंख्या – 103।
7. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / द्वितीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –14।
8. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / तृतीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –27।
9. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / तृतीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –28।
10. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / तृतीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –29।
11. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / पञ्चमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –49।
12. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / पञ्चमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –50।
13. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / पञ्चमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –52।
14. अध्यात्मरामायणम् / आदिकाण्डम् / पञ्चमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –53।
15. अध्यात्मरामायणम् / अरण्यकाण्डम् / द्वितीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –30।
16. अध्यात्मरामायणम् / अरण्यकाण्डम् / तृतीयोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –27।
17. अध्यात्मरामायणम् / अरण्यकाण्डम् / अष्टमोऽध्यायः / श्लोकसंख्या –40।

वेदेमन्त्रचिकित्सायाः मीमांसा

राम नारायण शर्मा*

येन हि यज्ञयागानामनुष्ठानं निष्पन्नतामुपैति देवतानाञ्च स्तुतिविधानं भवति स मननात् मन्त्र इत्युच्यते। मननात् त्रायते इति मन्त्रः। मन्त्राणां मानसिकवाचिकभेदाभ्यां द्विविधत्वं स्वीक्रियते सायणभाष्ये।

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मंत्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः।। (ऋग्. सायण भाष्य. 10.147.1)

हे "अग्ने "नः अस्मान् युष्मद्रक्षितान् "यः "अघायुः मारणादिरूपपापेच्छावान् "अररिवान् अदाता अस्मद्दानप्रतिबन्धकः इत्यर्थः।। रातेश्छान्दसस्य लिटः क्वसुः।। "अरातीवा स्वयमदानवान्। ' छन्दसि वनिपमिच्छन्ति' इति मत्वर्थीयो वनिप्।। शत्रुत्वमाचरन् यः शत्रुः "द्वयेन मानसवाचिकभेदेन द्विविधेन मन्त्रेण। न ददामीति मानसो मन्त्रः। निन्दाद्यारोपेण दाननिवारणं वाचिको मन्त्रः। यद्वा। मायाहेतुकेन विरुद्धरूपेण द्विविधेन मन्त्रेण। यो विरुद्धमाचरति तन्न संकीर्तयति यच्च प्रियं बूते तन्न करोति अन्यत् करोत्यन्यद्वदतीत्येवं मन्त्रस्वरूपद्वैविध्यम्। पूर्वं मानसवाचिकभेदेन इदानीं वाचिककायिकभेदेनेति विवेकः। ईदृशेन मन्त्रेण यः शत्रुः "मर्चयति भर्त्सयति विधेयीकरोति वा अस्मान्। मन्त्राः मङ्गलकारकाः भवन्ति यथोक्तम्–

मङ्गलान्येव सततं प्रजानामभिवर्धयेत्। सर्वे गृहस्थाः सेवेरन् दानानि च तपांसि च।।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यं च नियतात्मनाम्।ददतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते।।(काश्यपसंहिता 8.3)

वेदेषु मन्त्राणां वर्णनं समुपलभ्यते। मननात् त्रायत इति मन्त्रः मननत्राणधर्मणो मन्त्राः। "यज्ञो मन्त्रः। इज्यतेऽनेनेति यज्ञकरणसाधनभूतो मन्त्रः। **"मन्त्रः स्तुतिः शास्त्राद्यात्मका गुप्तभाषणं वा।''**

अग्निपुराणे मन्त्ररूपौषधकथनं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्याये मन्त्राणां महिमा भणिता।

आयुरारोग्यकर्तार ओंकारद्याश्च नाकदाः। ओंकारः परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा चामरो भवेत्।।
गायत्री परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक्। ओं नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः।।

(अग्निपुराण अ. 284)

तन्त्रशास्त्रे उक्तं यत्– **मोचयन्ति च संसाराद् योजयन्ति परे शिवे। मननत्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः।।**

परमशिवप्रोक्तस्य तन्त्रागमस्य साधनाविधिर्भवति मन्त्रयोगः। भारतीयदर्शने निगमस्य (वेदस्य), आगमस्य (तन्त्रस्य) परमप्रमाणं स्वीक्रियते। यथा दृ प्रयोगो विद्यते दृ वेदाः प्रमाणम्, आगमाः प्रमाणम् इति। आगच्छति बुद्धिमारोहति यस्माद्भ्युदयनिः श्रेयसोपायः स आगमः। तत्रागमस्य रहस्यमयसाधनाविधेः नाम भवति मन्त्रयोगः। नामरुपात्मकविषयेण जीवो बन्धनयुक्तो मवति। नामरुपात्मकप्रकृतिवैभवद्वारा अविद्याग्रस्तो भवति जीवः। अतः स्वस्य सूक्ष्मप्रकृतिप्रवृत्योः अनुसारेण नाममयशब्दावलम्बनेन भावमयरुपावलम्बनेन यत् योगसाधनं क्रियते तन् मन्त्रयोग इत्युच्यते।

अक्षहृदयज्ञं अक्षाणां अक्षाभिमानिदेवताया। हृदयवद्वशीकरणार्थो मन्त्रः अक्षहृदयम्।।

(महाभरत आ. प. 3.70.36)

मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि सन्ति। तदुक्तम्–

भवति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम्। यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः।।

भक्ति– शुध्दि– आसन् दृपञ्चाङ्गसेवन–आचार–धारण– दिव्यदेशसेवन्– प्राणप्रक्रिया मुद्रा– तर्पण– हवन् दृबलि याग दृ जप–ध्यान– समाधीत्यादीनि षोडशाङ्गानि शास्त्रेषु वर्णितानि।

'बलिशान्तिष्टकर्माणि ग्रहशान्तये। मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यंस्तत्रादौ सार्वकार्मिकः।।
अरिष्टामपि मन्त्रैश्च बध्नीयान्मन्त्रकोविदः। सा तु रज्ज्वादिभिर्बद्धा विषप्रतिकरी मता।।'

(सुश्रुत संहिता)

*** शोधच्छात्र, वेद विभाग, श्री वेङ्कटेश्वर वेदविश्वविद्यालयः, तिरुपति।**

अस्मिन् मुख्यतया कर्मत्रयं क्रियते। यथा दृनित्यकर्म, नैमित्तिककर्म, काम्यकर्म च। तेषु कर्मसु मन्त्राणां प्रयोगेनैव अनिष्टपरिहारः विधीयते।

अथर्ववेदे त्रिप्रकारकी मन्त्रचिकित्साः समुपलभ्यन्ते। आधिभौतिकी आध्यात्मिकी आधिदैविकी चार्थभेदकत्वात्। मन्त्राणां अर्थाः त्रिविधाः भवन्ति। ते आधिभौतिकं, आधिदैविकं, आध्यात्मिकञ्चेति। आधिभौतिकार्थस्य साहाय्येन आधिदैविकस्य, आधिदैविकेन आध्यात्मिकस्य च ज्ञानं भविष्यति।

मन्त्रचिकित्सायां गायत्रीमन्त्रः सः प्रथमतः ऋग्वेदे दृश्यते, तदनन्तरम् इतरवेदोपनिषत्सु प्रस्तापितः। अयं प्रमुखमन्त्रः। गायत्री छन्दसि लिखितः यः कोऽपि मन्त्रः गायत्रीमन्त्रः इत्येवं प्रतीतिरप्यस्ति। सैषा गायत्री वेदमाता, देवीसरस्वत्याः स्वरूपिणी। अतिश्रेष्ठमन्त्रेषु गायत्रीमन्त्रः अपि अन्यतमः। अनेन मन्त्रेण सवितृदेवस्य आवाहनं क्रियते इत्यतः अयं मन्त्रः सावितृमन्त्रः इत्यपि प्रसिद्धः। अयं च मन्त्रः महर्षिणा विश्वामित्रेण दृष्टः। ऋग्वेदेन सहितः समग्रवेदभागः ब्रह्ममुखात् विनिसृतः इत्ययं विषयः ज्ञायते।

आवैदिककालात् अयं अभिप्रायः वर्तते यत्, गायत्रीमन्त्रस्य वर्ग–जाति–लिङ्गानां सीमा नास्ति इति। एवं यः कोऽपि इमं मन्त्रमुच्चारयितुं (पठितुम्) शक्नोति। इत्येवं अनेके धर्मशास्त्रज्ञाः स्वाभिप्रायं मण्डयन्ति। ऋग्वेदस्य तृतीयमण्डलस्य, द्विषष्टिसूक्तस्य, दशमं वर्तते अयं मन्त्रः। **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।** (ऋग्. 3.52.10)

अथर्ववेदेऽपि– स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मचर्यसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।।

मूलार्थस्त्वेवमस्ति यत्– भूम्याकाशान्तरिक्षमभिव्याप्य स्थितः तेजोमयः, दिव्यरुपी, पूजितः सः परब्रह्म (सतितृदेवः) अस्माक बुद्धिं, विवेकं च तेजोमार्गे ज्ञानमार्गे च प्रेरयतु।

भूः– भूमिः भुवः आकाशः, स्व– अन्तरिक्षम तत्–सः सतितु– सतितृनामकः परमात्मा,वरेण्यम्– पूजितः, भर्गः तेजोमय, देवस्य, देवम्, धीमहि– तमुद्दिश्य ध्यानं कुर्मः, धियः– बुद्धिः, विवेकश्च, यः यावान् नः अस्मान्, प्रचोदयात् प्रचोदनं कुर्यात्।

"सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। ये जपन्ति सदा तेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित्।।
तया होमश्च कर्तव्यः सततं सिद्धिमिच्छता। यवैस्तिलैः समिद्भिश्च व्रीहिभिः सर्षपैस्तथा।।"

वेदेषु प्रथमः ऋग्वेदः, तस्य अंशाः यजुर्वेदादि–वेदत्रयेष्वपि अन्तर्गताः, अतः अस्य मन्त्रस्य उल्लेखः सर्वेष्वपि वेदेष्वस्ति। भगवदीतायाम्, अनेकासु उपनिषत्सु शङ्कराचार्याणां कृतिषु, एवं भागवतेऽपि गायत्रीमन्त्रस्य प्रभावो वर्णितः।

सन्दर्भग्रन्थाः :–

1. वैदिक पुस्तकालयः अजमेर, अथर्ववेदसंहिता।
2. चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, ऋग्वेद सायणभाष्यम्।
3. चौखम्बा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, ऋग्वेदभाष्यभूमिका।
4. चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, कौशिकगृह्यसूत्रम् (अथर्ववेद)।
5. चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस, काश्यप संहिता।
6. गीताप्रेस गोरखपुर – अग्निपुराण।
7. गीताप्रेस गोरखपुर – महाभारत।
8. चौखम्बा ओरियन्टल वाराणसी, सुश्रुतसंहिता।
9. राय, रामकुमार, चौखम्बा ओरियन्टल दिल्ली – अथर्वपरिशिष्ट।

✵★✵

Need for Inclusive Education for Empowerment of Children with Special Needs

Dr. Sudheer Kumar Tiwari*

Abstract: - Inclusive education is not limited to the needs of children with special needs, but it focuses on the needs of all children, which is a powerful medium to make human outlook effective and thereby improve the social, economic system of the society can be made effective. In this way, inclusive education is basically a positive approach of acceptance of diversities, which simultaneously ensures its need and challenges for the progress of the society. Under the present study, research literature related to inclusive education, needs of students with special needs and attitude of teachers/students towards inclusive education have been reviewed by the researcher.

Key words: - Students with special needs, Inclusive education, approach.

Inclusive education accommodates the special needs of students with special needs in the teaching-learning process and maintains the pace of education. "Inclusive education helps each child to develop his/her own potential along with social equality, which enables students with special needs to face the challenges of life" (Verma, 2014; Chowdhary, 2010; Bharti, 2014). This education system will help each student to develop his/her own potential along with social equality. In inclusive education, all round development of all the students is the measure of success of the teacher, but in this the responsibilities of the teacher increase. Attitude of teachers on basic facilities to students with special needs was found to be average. Most of the teachers have emphasized the need to provide more and more physical and curricular resources to make classrooms conducive to inclusive education" (Yadav, 2018; Malkar, 2017; Chaddha, 2016). Effective planning and efforts are needed to achieve this goal in India. India is moving towards an inclusive approach through collaboration and support between trained teachers in regular and special education. In line with the tradition of a specialized education system, the government is promoting educational reforms that encourage an inclusive approach to education.

In present times, the notion of rejection and over-protection for students with special needs has been completely negated; because the feeling of extreme protection is motivated by pity and the feeling of rejection is motivated by hatred. Therefore, both hinder the socialization of students with special needs. Inclusive education strengthens the bond between teachers and students and creates an environment in which students get involved in school education as well as other social activities. It develops the abilities of all students so that they can perform at their best; because it is an education system that provides equal rights to all citizens through the creation of values, knowledge systems, culture, structures at all levels, that is, inclusive education in its broadest sense refers to accepting the diversity of students and providing appropriate support according to which the teacher should be able to meet the needs of students with special needs in the classroom. Thus, the success and quality of inclusive education depends on the training of teachers. Teaching in an inclusive classroom requires a teacher to have skills and knowledge that help to plan and implement broad-reaching classroom strategies on a regular basis. Norms of teacher-pupil ratio are not followed in the classroom, because of which teachers are unable to give extra attention to specific students. "Problems exist as a result of lack of infrastructure for special learners and lack

*** Assistant Professor, Regional Institute of Education (NCERT) Ajmer, Rajasthan-305004**

of specially trained teachers" (Shah, 2014; Nagpal & Sangeeta, 2012). This concept of inclusion should be imbibed from the primary level class itself and in this context the role of the teacher is crucial.

Inclusion is basically a positive attitude of acceptance of diversity. Disability does not take away from people physically as much as it affects them socially and psychologically, That is, "*Disability is socially constructed*" (Gatade, 2013; Kharlukhi, 2016). To realize the dream of discrimination free and equal life for persons with disabilities, there is a need for a comprehensive change in the institutional arrangements and legal provisions. If a community maintains physical, architectural, transportation or other barriers, that society is creating difficulties that oppress the person with a disability. On the other hand, if a community removes these barriers, individuals with disabilities can function at a higher level; but the biggest need is a change in our attitude towords persons with disabilities.

Being handicapped is not a curse, just need to make the environment accessible. "Accessible India Campaign is a strong step towards inclusive development" (Pathak, 2016). If persons with disabilities are provided with an accessible environment, they can develop themselves more effectively and overcome obstacles in their lives. It is not only the government's responsibility to provide an accessible environment to the disabled, but it is also responsibility of each every individual. A big step towards accessibility can prove to be a milestone in the direction of the welfare of the disabled. There is still a long way to go for inclusive education. We can say that inclusive education is possible only when all the infrastructure and facilities, such as funding for schools, providing training for teachers and curriculum adaptation support systems for students. "Primary school teachers have a positive attitude towards inclusive education, indicating a satisfactory positive impact of inclusive education" (Singh, 2005; Fernandes, 2010; Kaur, 2018; Jain & Yadav, 2017). Most of the teachers are in favor of inclusive education, because of which the implementation of inclusive education is effective and through this the all-round development of special students can happen. "Teachers need more training for teaching-learning of special students, so that their problem can be solved" (Singh, 2005; Fernandes, 2010; Kumar, 2011; Kaur, 2018; Jain & Yadav, 2017). Teachers' attitude towards inclusive education is positive, which is significantly related to environment, professional commitment and curriculum adaptation and helps in effective adaptation of students with special needs. This suggests that democratic organizational climate, high professional commitment, and necessary curriculum adaptation can all work together to develop a positive attitude among teachers towards inclusive education. Teachers perform school activities together and collaborate with each other in inclusive schools to meet the educational needs of diverse students. However, most elementary school teachers also recognized that inclusive education is an effective alternative to special education for educating special students; but some problems must be faced in imparting education in an effective way through inclusive means. Physically challenged students and their parents feel that the infrastructure provided for inclusive education is not sufficient to meet their needs, therefore survey is necessary on important points to provide necessary infrastructure to students in inclusive education. Availability of appropriately trained teachers, study materials and adaptive equipment in inclusive schools is essential to achieve the goal of inclusive education.

Educational implications: - It is known from the related literature review that inclusive education has played an important role in making teaching-learning simple and effective. Related literature available so far in the field of inclusive education; Such as Singh (2005), Chowdhary (2010), Fernandes (2010), Nagpal and Sangeeta (2012), Gatade (2013), Bharti (2014), Verma (2014) ,

Shah (2014), Kharkhuli (2016), Chaddha (2016), Pathak (2016), Jain and Yadav (2017), Malkar (2017) After the study of Kaur (2018), Yadav (2018), it was found that in the context of inclusive education, till now the work related to teaching-learning process has been done at primary and upper primary level only.

It is clear from the above findings that there have been many research works related to inclusive education; But there is a lack of research work related to secondary level special education teacher keeping in mind the needs of students with special needs at secondary level. It is also clear from the study of the above research works that the studies related to inclusive education in India are very limited, some meaningful and important work related to inclusive education has been done in the first and second decades of the twenty-first century, but there is a lack of research work in the context of studies related to teaching-learning process related problems, evaluation related problems, challenges of inclusive education and measures to make it effective at secondary level.

Conclusion: - Inclusive education is not just an approach but a means, especially for those who have the urge to learn something and who want to move forward despite all the obstacles the presenrt literature revier, research works related to inclusive education were analyzed and reviewed. It is clear from the review of the literature that there is a lack of studies related to inclusive education at the secondary level in India. Therefore, clarifying the relevance of the research, an attempt has been made by the researcher to prove the relevance of the research by highlighting the need of the research. Under the research work, problems related to teaching-learning process related to special education teachers of secondary level and students with special needs, evaluation related problems, inclusive education.

Reference :-

1. Kaur, S. (2018). Perspective of teacher towards Inclusive Education in relation to organizational climate, professional commitment and curricular adoption in government school of Chandigarh. Panjab University, Chandigarh.
2. Kharlukhi, B. (2016). A Study on Implementation of Inclusive Education at the Elementary Level in the Selected North-Eastern States. Indian Educational Review, 54(2), 98-103.
3. Gatade, S. (2013). Disability and Technology. Yojana. 57(04), 29-31.
4. Chaddha, A. (2016). Nature of Inclusive Education in India. Yojana, 60 (01), 35.
5. Chowdhary, R. (2010). The teaching-learning conditions for quality Education in Inclusive Schools. Journal of Indian Education, 36(1), 76-83.
6. Jain, C. and Yadav, A. (2017). Attitude of teachers towards Education of students with disabilities at higher secondary level. Pariprekshya, New Delhi, 24(2), 53-66.
7. Nagpal, R. and Sangeeta, (2012). Inclusion in Education: Role of Teachers. Journal of Indian Education, 38(1), 59-70.
8. Pathak, A. (2016). Sugamya Bharat Abhiyan Nirbadh Vatavaran aur Sashktikaran ki Rah. Yojana. 60(5), 28-29.
9. Fernandes, A. K. (2010). A critical study of Inclusive Education in the state of Goa. Department of Education, Shivaji University, Kolhapur.
10. Bharti (2014). Collaboration in Inclusive Education. The Primary Teacher, 34(3), 70-78.
11. Malkar, N. (2017). Implementation of Inclusive Education Programme under Sarva Shiksha Abhiyan An Evaluative Study in Barpeta District. Gauhati University, Assam.
12. Verma, A. K. (2014). Inclusive Education. Indian Modern Education, 35(2). 24-29.
13. Yadav, A. (2018). Classroom teaching-learning in Inclusive Education paradigm, Indian Modern Education, 39(1), 106-114.
14. Shah, J. A. P. (2014). Right to Education of the Disabled. Journal of Indian Education, 40(3), 5-29.
15. Singh, A. (2005). Effectiveness of Inclusive Education of Chhattisgarh: An Evaluative Study, Kalyan Maha Vidyalaya, Bhilai, Durg.

Theme : Integration of ICT in Teacher Education

Sub theme : Role of ICT in Pre service Teacher Education

Dr. Ravinder rathi*

Abstract :- Teachers and their Effectiveness Teaching is the most challenging profession, which demands a lot of hard work and dedication because it deals with the minds of pupils having various faculties. Hence, someone who is entrusted with nurturing the mind is definitely a person of great importance. It is he who ignites the inherent talents and moulds the character of students. The role of the teacher is of course to encourage and facilitate learning. The whole process of education is shaped and moulded by the human personality called teacher, who plays a pivotal role in any stream of education. The preparation of such an important functionary must conceivably get the highest priority. Teachers are expected to use the best practice and strategies to meet challenge demands of their career. If the teachers are well trained and highly motivated, learning will be enhanced. Pre service teacher training plays an important role in teaching.

Teacher training programs have a pivotal role in education system. In order to reach high standards in teacher training, trainers should encourage and supervise pre-service teachers to use effective teaching skills and strategies. With this in mind, the aim of this paper is study the effects of ICT in pre service teacher training.

Keywords:- Pre service, ICT, Training, Teacher Education, IT.

Introduction :- We are living in highly complex and rapidly changing world. With advancement in science and technology there is a growing realization amongst the developing countries that education is a potential means of development that does not deal only with the present but also with future .it is an attempt on the part of adult members of the society to shape the development of coming generation in accordance with its own ideals of life .it is an "effort to secure for everyone the conditions under which individuality is most completely developed education is a process of human enlightenments and empowerment for achievement of a better and higher quality of life .It is systematic process through which a child or an adult acquires knowledge experience skill and sound attitude for civilized and socialized society ,education is the only means .its goal is to make an individual perfect. Every society gives importance to education because it is a panacea for all evils.

Education enables an individual to facilitate one's duties and responsibilities to oneself, to the family, to the society and to the state and help him to measure a successful and meaningful life that inspires and guides the younger generation. Both the laypersons and professional educators believe firmly that the effectiveness of an academic programme is essentially determined by the standard of teachers as they interpret, imbibe and transmit knowledge and intellectual traditions from generation to generation. The importance of teacher within the process of education is of great value. "Of all the various factors, which influence the standard of education and its contribution to National Development, the standard, competence and characters of teachers are undoubtedly the foremost significant.

*** Principal B.K College of Education Bawani khera, Bhiwani**

Indian Education Commission 1964-66 within the words of Kothari D.S. "A right kind of teacher is one who possesses a vivid awareness of two missions. He not only loves his subject, but also loves whom he teaches. His success will be measured not in terms of percentage of the result alone, but by the quality of life and character of men and women whom he has taught". Effective education is often achieved through the efforts of well qualified, competent and effective teachers. Counting on the stress of the age, the tutorial aims and objectives change very rapidly. These demands have an immediate influence on the tutorial system.

Every country develops its system of education to satisfy the challenges of adjusting times. India being a developing country, the teachers have the good responsibility of making the scholars competent enough to face with their counterparts within the developed countries and to form the country economically independent. To retain the enrolled masses within the classroom, to form real education possible, to extend the extent of accomplishment, to tap the potentialities of the scholars and to enhance educational standards remarkably, the teacher shouldn't only be committed and devoted but even be competent and effective. To mould the scholars into ideal democratic citizen efficiently and skill, the teachers' should be exemplary, competent and effective and dedicated to the profession expertly and intellect.

Teachers need a continuing review of their attitudes and beliefs about learners and learning processes. They ought to motivate their students and show the willingness to style teaching and learning that's fit the needs. Effective teachers mainly specialize in pupils and adopt combinations of varied learning activities considering the tutorial context (Brown and Melentyre (1993) Doyle (1990) views the classrooms as busy and crowded places where students of different interests and abilities assemble to accomplish a wide variety of tasks. A large number of events may occur simultaneously which are unpredictable. To manage of these events, teacher requires professional competencies.

Teacher education is a programme that's associated with the event of teacher proficiency and competence that might enable and empower the teacher to satisfy the wants of the profession and face the challenges therein. It's documented that the standard and extent of learner achievement are determined primarily by teacher competence, sensitivity and teacher motivation. The National Council for Teacher Education has defined teacher education as – A programme of education, research and training of persons to show from pre-primary to secondary level. Consistent with Goods Dictionary of Education Teacher education means, all the formal and non-formal activities and experiences that help to qualify an individual to assume responsibilities of a member of the tutorial profession or to discharge his responsibilities more effectively. Teacher education encompasses teaching skills, sound pedagogical theory and professional skills. Teacher education is based on the theory that Teachers are made, not born in contrary to the assumption, Teachers are born, not made. Since teaching is considered an art and a science, the teacher has to acquire not only knowledge, but also skills that are called tricks of the trade. "The quality of a nation depends upon the quality of its citizens. The quality of its citizens depends not exclusively, but in critical measure upon the quality of their education, the quality of their education depends more than upon any single factor, upon the quality of their teacher."

Pre-Service Teacher Education :- Pre-service teacher education plays a critical role in defining the total educational system since it prepares its key elements teachers. The time spent by teachers during their pre-service teacher education programme lays the foundation from where they start conceptualizing the teaching learning process and thus, gradually develop an understanding of the whole scenario of the teaching A person desirous of adopting teaching as a profession is required

to undergo a well-designed pre service Teacher education programme Pre-service teacher education provides the teachers with initial professional competence in terms of content and process for effective transaction of curriculum Pre service teacher education is the education and training provided to student teachers before they undertake any teaching work it means, education of teachers before they enter into service as teacher During this period teacher education programmes, teaching practice goes side by side, while they are getting knowledge about theory papers Pre-service teacher preparation programmes with strong structure Course work and field experiences are crucial for preparing future teachers.

Pre service teacher preparation programmes, also called initial teacher training or initial teacher education, vary greatly across countries Pre service teacher education is a period of guided, supervised teaching. Pre-service teacher education is ideally suited to foster such a shift in thinking. It is located squarely between teachers' past experiences as students in classrooms and their future experiences as teachers in classrooms. From their experiences, teachers develop the ideas that will guide their future practices. It these ideas are not altered during pre-service teacher education, teachers' own continuing expenences will reinforce them, cementing them even more strongly into their understandings of teaching, and reducing the likelihood that these ideas might ever change. Pre-service teacher education is carried on for preparing different types of teachers Pre-service teacher preparation is a collection of unrelated courses and field experiences. Pre-service training provides strong knowledge base theoretically as well as practically.

These programmes are intended to support and enhance teacher learning, instill in them a greater degree of self-confidence The beginning teachers in this case learn from their practice and from the culture and norms of the unique school settings where in they have been placed and interact With these cultures The teacher education programme needs to allow the space where in a teachers personality could be developed as someone who is reflective, introspective and capable of analyzing his or her own life and the process of education at school so that after becoming a teacher,

Pre-service teacher preparation programmes, also called initial teacher training or initial teacher education, vary greatly across countries. The structure, coursework, and field experiences of pre-service programmes are important to think about when designing or reforming teacher training because all of them contributes to the extent of preparation. High-quality teachers need high-quality training, but many countries may have to consider cost-effectiveness decide on the specific combination of pre-service and in-service training experiences needed so as to deploy enough teachers for growing education systems.

Teacher training programs in all fields have crucial roles in training qualified prospective teachers for the education of future generations. With this in mind, training of a pre-service teacher is not easy as it is thought. It is highly complicated that it has many facts to be considered from loading students with theoretical knowledge to field experiences needed for meeting the theory with practice. These experiences enable students reflect their own practices to the field and monitor their own progress with the help of hand on experiences. By this way students can find real opportunities to see where they are in terms of reaching their potentials in their professional careers. Field experiences like school practicum are regarded to be an indispensable part of teacher training programs.

Teacher learning or training may be a continuous never-ending process which promotes teacher’s teaching skills, master novel knowledge; develop better or newer proficiency, which reciprocally assists in improving student’s learning. Researches and a few studies have shown

when teachers are good at class management students show far more interest within the classes and have better education outcomes comparatively to things when the teacher isn't so good at classroom management. "W.H. Kilpatric put it; ―Training is given to animals and circus performers, while education is to human beings".

Role of ICT in Pre Service Training :- Technology has impacted almost every aspect of life today, and education is no exception. Earlier, technology in education was a debatable topic amongst the society. Everyone had their own views on modernizing education and making it technology aided there were a huge number of Technological Development in Education positives and negatives to education technology But, gradually as technology was embraced by the educational institutes, they realized the importance of technology in education. Its positives outnumbered the negatives and now, positives and negatives to education technology. Technology and education are a great combination if used together with a right reason and vision. Technology has greatly expanded access to education Today, massive amount of information (books, audio, images, videos) are available at one's fingertips through the internet, and opportunities for formal learning are available online worldwide Technology has also begun to change the roles of teachers and learners.

In the traditional classroom, the teacher is the primary Source of information, and the learners passively receive it this model of the teacher as the sage on the stage has been in education for a long time, and teacher as the "sage on the stage" has been in education for a long time, and it is still very much in evidence today. However, because of the access to information and educational opportunity that technology has enabled, in many classrooms today we see the teacher's role shifting to the "guide on the side" as students take more responsibility for their own learning using technology to gather relevant information. Technology has the potential to enhance the quality of life of people. The past two decades have witnessed a dynamic shift in the way the computers have been used as a tool in the teaching-learning process. Today, the trend appears to be towards the creation of courses specifically aimed at computer literacy, as well as towards integrating computer technology in other content areas across the curriculum.

Further computer technology has increasingly been applied towards non-instructional (record keeping. grade averaging, communication, etc.) and pre-instructional (developing materials. researching instructional content. etc.) uses. This great change has brought forth a fresh perspective in the use of computers in the teaching-learning process. The recent advancement in information technology Innovations and computer usage is rapidly transforming work culture and teachers cannot escape the fact that today's teaching must provide technology supported learning. Effective adoption of new technologies in classroom settings requires teachers not only to have the knowledge about the technology but also to have experienced successful models of computer. Teachers, students and parents have a variety of learning tools at their fingertips. Some of the ways in which technology improves education over time are mentioned as follows:

1. Technology as a Tutor
2. Technology as a Teaching Tool
3. Technology as a Learning Tool

Teachers can collaborate to share their ideas and resources online:- During Pre service training Pupil teachers can communicate with others across the world in an instant, meet the shortcomings of their work, refine it and provide their students with the best. This approach definitely enhances the practice of teaching.

Teacher can develop valuable research skills :- Technology gives Pre service Teacher immediate access to an abundance of quality information which leads to learning at much quicker rates than before.

Students and teachers have access to an expanse of material :- There are plenty of resourceful, credible websites available on the internet that both teacher and students can utilize. The internet also provides a variety of knowledge and doesn't limit students to one person's.

With the help of Technology Teachers are able to track individual progress of students, teachers are encouraged to identify learning objectives and differentiate instruction based on the needs of their students. Teachers can design follow-up activities with the help of technology to evaluate students' learning outcome and the role of technology played an important role in methods of instruction, objectives of teaching.

Easily access to learning material :- with the help of technology teacher can easily find E-books, revision guides and past examination papers that are available on World Wide Web and teacher/students can take advantages of these to enhance knowledge domain.

Continuous learning: - With the assistance of information technology in education it's possible for Pupil teachers to keep on learning, irrespective of where they're even at home. This has greatly enhanced efficiency in the education area.

Sharing of knowledge: **-** Pupil teachers from everywhere the world can come together and may share the experiences, teaching technique, methods of evolutions the geographical distances are not more barriers, it has been made possible only through technology.

Learning aids: - By using audio and visual materials in teaching, we can put some practical aspect to the theory taught in class students can develop a far better understanding of topics being taught. Moreover technology provides all these learning aids in better way.

Distance learning: **-** Now its possible to attend a college overseas without even getting out of your home country and at your own convenience. With the help of online courses anyone can get the second degrees or additional certifications.

Proper record keeping: **-** Unlike in the past when records used to be kept manually and there were many cases of lost files, the use of information technology in education has made it possible for safe and proper record keeping.

Limitations Of Technology In Education

Access to inappropriate content: the most important concern to the utilization of technology is that how easy pornographic, violent, and other inappropriate materials are often easily accessed and viewed.

A disconnected Youth: The harmful effect of technology is that when people are attached to their Screens almost 24/7, which is causing a completely new set of social issues to crop up.

Cyber bullying Trap: Giving students access to anonymous accounts and endless contact avenues can only cause trouble. Cyber bullying has become a problem among children today. This harassment has no end. There are no thanks to monitor or discipline students who are involved in it.

Inevitable Cheating: quick access to information may seem sort of a great point , it can become a true problem during a test taking environment. Telephone have made cheating easier than ever.

A major Distraction: Attentiveness drops drastically in the classroom when students have their cell phones or other technologies out. the main target shifts from their teacher and education, to whatever they're looking at, playing, or doing on their phones.

Conclusion :- With technology, education has taken an entire new meaning that it leaves us with little question that our educational system has been transformed due to the ever advancing technology. Now we will prepare students for his or her lifelong learning which needs new approaches to education that incorporate technologies increasingly as a neighborhood of students' everyday lives. It's accepted that a well-rounded education may be a gateway to non-public success. It sets students on a path to lifelong learning that permits them to achieve ever changing world. Through education, individuals can expand their minds and embrace new ideas and opportunities, and at an equivalent time, build better lives for themselves and their communities. During a world where geographic boundaries are blurring, students also need the flexibility to attach with and collaborate with people anywhere at any time—communicating information in additional dynamic, engaging ways. In addition, it's necessary to think about the impact education plays in competitive economies, where once local industries now compete on a worldwide scale.

References :-

1. Allen, D. W. & Eve, A. W. (1968). Microteaching. *Theory into Practice*, *7*(5), 181-185.
2. Allen D.W. & Wang, W. (n.d.). *Microteaching - The New Microteaching: Simplified, Variants of Microteaching,Microteaching Models of Teaching Skills, Microteaching Courses.* Retrieved October 1, 2012, from http://education.stateuniversity.com/pages /2227/Microteaching.html.
3. Parmela S(2016) computer awareness among B.Ed. students teachers in relation to demographic variable .shanlex Journal of Education 4(2)26-29
4. Mory, E. H. (1992). The use of informational feedback in instruction - Implications for future research. Educational Technology Research and Development, 40(3), 5-20.
5. http://wwwimages.adobe.com/content/dam/
6. http://www.educationworld.com/a_tech/tech /tech004.shtml
7. http://www.academia.edu/335899/Impact_of _Technology_in_Education https://blog.kurzweiledu.com/2015/02/12/5- positive-effects-technology-has-on-teachinglearning/
8. http://timesofindia.indiatimes.com/home/edu cation/news/Role-of-technology-ineducation/articleshow/14989508.cms
9. A synthesis paper on technology in education; Lora Evanouski; Educational technology 501,professor pollard
10. http://www.edweek.org/ew/issues/technolog y-in-education/ http://edtechreview.in/news/681-technologyin-education - by SAOMYA SAXENA

೫★೩

Relevance of Motivational literature in Everyday Life

Itishree Barik*
Rudranarayan Mohapatra**

Abstract :- People in today's world move swiftly while juggling tasks left and right. Every person develops anxiety and sadness as a result of the imbalance between their academic and social lives. It can be difficult to find time to accomplish goals with all of these obligations, demands, hurdles and barriers. In that setting, motivation is essential for fostering an upbeat outlook, perseverance, courage and a desire to work hard. Literature contains many stimulating ingredients that can influence one's life. That must be grabbed accordingly. As a result, the primary goal of this research study is to briefly examine the motivational literature and its impact and influence on human everyday life. Motivational literature is an important source of education in human life that employs direct or implied morals. A wide variety of illustrations can be drawn from various narratives.

Keywords: Literature, motivation, learning, society, everyday life

1. **Introduction :-** The factor that affects every aspect of our daily lives is motivation. Motivation refers to the process of motivating and provoking a person to act in a certain manner. This is the process that guides you towards achieving goals, helps in starting the work. Broussard and Garrison broadly define motivation as "The attribute that moves us to do or not to do something." (Broussard and Garrison,2004) Motivation is the reason for changing or accelerating a person's actions and behaviors. In literature, this is a character's goal and the tendency to do something. According to Michal J.Jucius, "Motivation is a process of inducing, inspiring and emerging people to work willingly with zeal, initiative, confidence, satisfaction and an integrated manner to achieve desired goals. It is a moral boosting activity." (Michal, J. Jucius,2014)

India, one of the world's oldest civilizations, is referred to as the "country of cultures and traditions." India has a rich and distinctive culture and customs. Every community and sub community in our nation has its own culture, customs, religion, language and literature. The development and establishment of society are fundamentally influenced by literature.

In practically every element of daily human behavior, motivation is crucial. When we make a decision, our choice and the active energy and passion that drive people to work in a specific process to attain desired goals are undoubtedly influenced by our motivational state. Our personal and professional lives are both permeated by the idea of motivation. We usually discuss motivation when it comes to getting out of bed, writing a paper, doing duties around the house, picking up the phone and of course learning. We believe that the desire to learn actually exists and that it is significant as both a dependent variable (greater or lower levels of motivation as a result of particular educational activities) and an independent variable (motivational manipulations to enhance learning) (Cook and Artino,2016)

People in today's world move swiftly while juggling tasks left and right. Every person develops anxiety and sadness as a result of the imbalance between their academic and social lives. It can be difficult to find time to accomplish goals with all of these obligations, demands, hurdles, and barriers. It is a motivation that encourages people to put up a lot of effort and concentrate at work. Ignited Minds intrinsic motivations, in Kalam's words, "Push the skills among young students to attain a final stage of objective." They must put in a lot of effort and consistently replicate their own abilities

*** P.G. Department of Odia, Utkal University,Vani Vihar, Bhubaneswar-751004.**
**** P.G. Department of Odia, Utkal University,Vani Vihar, Bhubaneswar-751004.**

and efficacy towards the goal. It is very clearly expressed that every person has entered human civilization with a wealth of knowledge, skills, creativity, imagination, critical thinking, ideas and efficiency. (Barik et al., 2022)

Motivation is an illustration of a process because it sets people on the route to achieving their goals, improves performance, molds their personalities and directs them in the right direction. Books, articles, novels, memoirs, poetry and other works of art can provide inspiring examples of people who achieved success after reading motivational literature. The ability to connect human interactions and define what is right and wrong is one of the reasons that literature is highly valued and studied. The cornerstone of life is literature. It cultivates wonders, inspires a generation and feeds information. Even though it is dynamic, endless, multi-dimensional, literature contributes significant purpose to world we live in. It is a journey that is inscribed in pages and powered by the imagination of the reader. Ultimately, literature has provided a gateway to teach the reader about life experiences from even the saddest stories to the most joyful ones that will touch their hearts.

You need inspiration to keep moving forward towards your goals since they are the stepping stones to your ambitions. Not everyone is motivated from birth. Some people have a serious lack of motivation. The key ingredient that transforms a wise idea into swift action is motivation. It makes a good idea for a company and has a positive influence on the environment. The strange sensation of being unexpectedly inspired by a new idea can seem random and unpredictable. However, it has been proposed that a sense of inspiration is the result of our minds processing new information in the context of things we already know, much like discovering a single cooperative learning piece that connects two completed parts of a picture.

2. **Conceptual Background :-** Motivation describes the factors that influence people's decisions, willingness to engage in an activity for an extended period of time and level of effort. Motivation is a person's internal or external drive to start acting in a certain way. The word 'Motivation' derives from the Latin word "movere" a moving cause (Neta & Haas, 2016), which alludes to the processes involved in psychological motivation's activating characteristics. Sustaining motivation refers to the effort for continuing or persevering in doing something, whereas starting motivation was concerned with the reason for doing something and making a decision to do something. (Williams and Bueden,1997). When a character's ambitions are motivated by an urgent reason that drives them to do whatever it takes to attain them, motivation can also result in conflict. After that, readers can speculate and find out how far the character will go. Motivation is the act of stimulating oneself or others to take the desired course of action or to press the right button to achieve the desired results. (Stipek, D.J. 1996)

Literature, whether it is prose or poetry, may evoke feelings in the reader as well as provide information and wisdom. Literature is the expression of our life. It is a representation of language drawn from tragic human events. The ability to experience the world through the eyes of others and occasionally even inanimate objects makes literature a window into the thoughts, feelings and wants of others.

3. **Theoretical Framework :-** Real life motivations are determined by people's needs. Every goal has a motivation and every motivation has a need. For example, if one's goal is to one day own a house, one of their motivations may be to become more financially stable and behind that motivation is a desire for safety and security.

Abraham Maslow, a psychologist who studied motivation in everyday life, organized the most common needs and developed Maslow's Hierarchy of Needs: In his "A theory of human motivation". Psychological: These drives stem from the body's fundamental demands for sustenance such as food, water and shelter. The need to consistently feel safe from physical and emotional harm is known as safety and security. Love and sense of belonging are the driving forces behind the need to be a part of family or community in order to avoid to feeling alone. The drive to feel a sense of purpose in life both

personally and professionally is fueled by accomplishments and self-esteem. Self-actualization: The need to realize one's greatest aspirations and deepest wishes. (Maslow,1943)

4. **Motivation in Everyday life Through literature :-** It's possible that each reader will derive a different lesson or point of view from the text and that this is why we as humans seek to learn about and understand one another. Books also give us valuable life lessons that motivate us to do good deeds for our communities. They transport you into their world so you may experience what they go through and experience with the other characters in the novel. You can better understand other people's mind by reading inspirational or literary stories. Better mental and emotional comprehension is possible. You become kinder through stories. A.P.J. Abdul Kalam remarked in his book Wings of Fire that "A good book is a garden, an orchard, a storeroom, a counselor" when he was a teenager and a knowledge seeker with aspirations of a successful future. Its magic spell is so intricately woven that it can be read multiple times (Kalam & Tiwari, 2000). The narrative emphasizes the value of family, friends and relations in supporting one another in achieving goals and realizing ambitions. Kalam explores his early years and the effort, adversity, tenacity, serendipity and chance that eventually led him to oversee Indian space research, nuclear development and missile projects.

It exposes them to fresh perspectives and encounters. It offers them distinctive viewpoints. They can both learn and get away thanks to it. The biographies of great men encourage us to emulate them and provide us with inspiration. Books instruct us on morality and values as well as science and logic. They assist us in overcoming our flaws and molding us into the people we should be. Everyone should read literature as a result, they transport you into their world so you may experience everything that they, along with the other characters in the novel are going through. Literary or inspirational stories might help you comprehend the thoughts of those around you. They are more able to understand their thoughts and emotions. Reading makes you more sympathetic.

It has been considered an inspirational work by several critics. The same as it has grown to be highly regarded among Indian autobiographies. For young people and children, Wings of Fire is seen as an inspiring autobiography. In his opinion on Wings of Fire might be seen as an autobiography classification. This autobiography's narration can be seen as a narrative with strategies for nation building (Rastogi,2001). It is a motivating success story that illustrates Kalam's perseverance and determination while inspiring its reader. Despite coming from a middle-class background, it was only Kalam's dedication and hard work that ultimately made him the nation's foremost defense scientist (Kumar, 2016) to strive for excellence rather than frequently settling for the norm among the younger generation. He reminds them that we have a wealth of abilities, plenty of resources and unmatched talents, which together create the potential for brilliance in every subject and exhorts them to work hard for the best outcomes. In the minds of young people, Kalam has always been a cult character whom they adore as their role model. He has always been a source of inspiration for them (Jahan,2019).

Education develops conceptualizing, inferring, inventing, testing and thinking. Education should be connected with productivity; it means after completing education individual can earn and survive his life in society. Indian education system always gives important place to biographies and thoughts of great personalities which motivates to children and youths. Many personalities took birth in our motherland and motivate our youth and children (Trivedi,2017). Kalm gives motivational thoughts to children that: When learning is purposeful, creativity blossoms. When the creativity is blossoms, thinking emanates. When the thinking emanates, knowledge is fully lit. When knowledge is lit, economy flourishes. (Kalam, Wings of Fire, 2000).

Residents of Gandhi's ashram found inspiration in him as a leader. He set an example for his followers by living a strict lifestyle and practicing asceticism himself. Gandhi's inspirational leadership created beneficial changes among his ashram school students that were previously unheard of. He brought them mental, emotional and physical heights they had never imagined being able to reach.

(Balvantsinha,1962; Joseph,2012). He desired that each individual contribute to the overall well-being of the community. He wished to construct "Sarvodaya Samaj" by empowering the people at the grassroots so that they might experience Gram Swaraj in perpetuity. Therefore, they will adhere to the slogan of simple life and high thinking. As a result, everyone will have the opportunity to generate and earn enough money through honest effort to live a decent and dignified life (Kumar, 2017).

Swami Vivekananda's compassion for the underprivileged masses was a major factor in the development of his message of selfless service. He claimed that humanism is synonymous with global acceptance and tolerance, fraternity, freedom and equality and he is working to install all of these values in society (Ali,2021).

Literature not only provides access to the past, but it also offers clues about the present and the future. Every era contains unique individuals and within them distinct stages in our ever-evolving civilization. Each person before them was a creation of their own era. We as a species change every day and we wouldn't have any knowledge of the past without the timestamp that literature provides. Motivational literature allows us to travel back in time and learn about life on earth from those who came before us. We can gain better understanding of cultures and appreciate them more. We learn from the ways literature is recorded, such as manuscripts. We can learn about ancient history of Ramayana and Mahabharata through hieroglyphics and paintings. We now understand Egyptian culture through the symbols they left behind. This is in contrast to Greek and Roman culture which are more easily found due to their innate desire for accuracy and their writing. The Ramayana and the Mahabharata have been translated into numerous languages, which has improved how well outsiders comprehend Indian culture. There is nobody present who is unfamiliar with the Ramayana and the Mahabharata or Bhagavat Gita stories. Only translation may be credited for the epic's widespread global recognition. According to Max Muller, there is no book in the entire world that is as exciting, moving and inspirational as the Upanishad.

You need inspiration to keep moving forward towards your goals. Motivation can inspire others to make the things happen in their own life. It is an attractive trait. The benefits of motivation are visible in how we live our lives. Motivation is a vital resource that allow us to constantly responding to changes in the environment. Applying motivational literature allow us to change behavior, be creative, set goals, boost engagement. Motivational stories improve psychological thoughts. According to an American University researcher Christel Russel "By reading about the character while moving in a difficult time, maybe it can help the reader to solve the problem that happening now." It proves that reading motivational book one type of psychological treatment of own.

In his book "Autobiography of a Yogi", Paramhansa Yoganand discusses miracles, yogic teachings. This is a spiritual property given to human society by Paramhansa, a book of consciousness of a higher quality. The book is dedicated to helping man to express the beauty and magnanimity of human consciousness in his life. It has utility in the fields of philosophical theory education psychotherapy and others. Its purpose is to propagate knowledge with scientific methods by reading it, there is a way of the misercy of ignorance.

The inspirational events of Paramhansa Yoganand's life have beautifully captured, the meeting with the saints and the experiences created by it, through a state of youth since childhood. This is highly revealing for someone who is interested in spirituality or even just other perspectives on life and explains his life and his interactions with spiritual leaders from both the Eastern and Western worlds to the reader. The book starts with his family and childhood, then moves on to him discovering his teacher, becoming a monk and developing his Kriya Yoga meditation teachings. A person thirsting for knowledge, Bhagavat attainment can take many useful facts from it. It is helpful in the development of significant personality. "The power of the unfulfilled is the root of all man's slavery". (Yoganand, 2003)

It assists us in giving our own real-life meaning. When you read a work of literature, you can experience things that do not occur in your daily life and see yourself in various situations. Literature can help you improve your creativity and think outside the box. The most obvious reason for this is that literature by definition is a creative exercise that relies on the imagination and curiosity of its readers to function.

5. Conclusion :- Motivational literature plays a crucial role in our daily lives. They can help us understand the true purpose of life. They have the ability to communicate with us in ways that go beyond our conception. The majority of our questions have answers in them. They could be a fantastic source of inspiration for us. When we are feeling dejected, they might give us hope. They give us so many things that are essential for our prosperity. They enable us to understand life more fully. They teach us how to live our lives.

All motivational literature is positive and carries the moral sense of society, therefore it is different from other entertaining literature. Hence this literature will definitely help in fulfilling the need for inspiration to human being in daily life.

References:-

1. Broussard, S. C., & Garrison, M. E. B. (2004). The relationship between classroom motivation and academic achievement in elementary school-aged children. *Family and Consumer Sciences Research Journal,* 33, 106-120; doi: 10.1177/1077727X04269573
2. Jucius, Michal, J. (2014). Morale and motivation why study morale and motivation, Retrieved from https://www.academia.edu/8457038/Morale_And_Motivation_WhyStudy_Morale_And_Motivation.
3. Barik, I., Mohapatra, R., Jena, S. (2022). Ignited Minds Is a Unique Illumination in Neo-Inspirational Literature, *Journal of Positive School Psychology,6(4),* 12016-12020.
4. Cook, D.A., Artino, A R Jr. (2016). Motivation to learn: an overview of contemporary theories, *Med Educ, 50*(10),997-1014. doi:10.1111/medu.13074.
5. Kalam, APJ.A. and Tiwari, A. (2000) *The Wings of Fire,* Universities Press.Maslow, A H. (1943). A theory of human motivation, *Journal of Psychological Review,50*(4),370-396. doi:10.1037/h0054346.
6. Neta, M. & Hass, Ingrid J. (201ss6). Movere: Characterizing the role of emotion and motivation in shaping human behavior. In Nebraska Symposium on Motivation (pp. 1-9), doi:10.1007/978-3-030-27473-3_1
7. Williams, M., & Burden, R. L. (1997). Psychology for Language Teachers: A social constructivist approach. *Cambridge University Press.*
8. Rastogi, P. (2001). "Indian Subcontinent: Autobiography 1947 to Present". *Encyclopedia of Life Writing: Autobiographical and Biographical Forms*. Edited by Margaret Jolly. Routledge.
9. Kumar, S. (2016). Spirituality, Science and Achievements of APJ Abdul Kalam in Wings of Fire, *International Journal of English Research. 2*(5), 32-34.
10. Jahan, S. (2019). Igniting Minds: The Aura of National Consciousness in A. P. J. Abdul Kalam's Ignited Minds and Turning Points, *Research Journal of English,4*(1),280-284.
11. Balvantsinha. (1962). Under the Shelter of Bapu. Ahmedabad, Navajivan, Publishing House.
12. Joseph, P. (2012). Mahatma Gandhi's Concept of Educational Leadership, *International Journal of Economics Business and Management Studies, 1*(2), 60-64.
13. Kumar, R. (2017). Gandhi's Approach to Sarvodaya, *International Research Journal of Human Resources and Social Sciences, 4*(5), 152-158.
14. Ali, Sadek. (2021). Vivekananda view on Humanism, *Journal of People History and Culture, 7*(2),29-43.
15. Yoganand, P. (2003) Autobiography of a Yogi, New Delhi, India: *Sterling Publishers* Kalam, APJ.A. & Tiwari, A. (2000) Wings of Fire, *Universities Press*
16. Stipek, D. J. (1996). Motivation and instruction. In D. C. Berliner & R. C. Calfee (Eds.), *Handbook of educational psychology* (pp. 85–113). Macmillan Library Reference USA; Prentice Hall International.

Uncovering the Cyber-security Puzzle: Investigating the Obstacles Confronted by the Micro, Small and Medium Enterprises in West Bengal

Sohom Banerjee*

Dr. Sumanta Dutta**

Abstract :- In a setting of increased dependency on technical breakthroughs, organisations must prioritise cybersecurity as a method of protecting themselves against cyber assaults. As a result, the purpose of the investigation is to determine the the degree to which MSMEs in the West Bengal region have put in effective cybersecurity strategies; to determine the variables that impede the implementation of suitable cybersecurity measures among MSMEs in West Bengal; and to evaluate the the susceptibility of female-led MSMEs in Bengal to cyber attacks in contrast to their male counterparts. The study includes data from both primary as well as secondary sources. It was carried out in West Bengal from April 2023 to June 2023, with an emphasis on MSMEs. Using the Cochran approach a sample size of 228 was chosen. For the research, data was analysed using SPSS 29.0.1 software and numerous techniques such as pie charts, bar graphs, infographics, and the Chi-Square test. The research paper discovered hurdles in establishing efficient cyber safeguards amongst West Bengal's MSMEs and emphasised the region's MSMEs absence of sufficient cybersecurity precautions. Furthermore, the study revealed that female-led MSMEs are more vulnerable to cyber risks than their male-led counterparts in the region.

Keywords :- Cyber security; Micro, Small and Medium Enterprises (MSME); Cyber safeguards.

Introduction :- The digital world has promptly established into a fast evolving technology which penetrates every single facet of everyday lives in the modern period. Innovative breakthroughs are revolutionising the individual experiences in our digitally enhanced world. Advancements in digital technology have revolutionised organisations and procedures all around the world. Additionally, the move in the direction of digital technology usage is visible in emerging nations including India. Digital transformation in the country has been progressively developing, initially encompassing big metropolitan regions, then minor urban areas, and finally rural areas. As a result of the COVID-19 crisis, the transition to electronic technology and techniques has been greatly expedited. Individual's use of digital technology is increasing at a pace that is unprecedented across the country. The digital economy in India is anticipated to contribute 20% of GDP by 2024, indicating a tremendous development trajectory (Rai, 2019). Digital development in India is gaining momentum and will play a significant role in supporting India's perpetual prosperity narrative.

Yet, the introduction of revolutionary technologies and advancements in digital technology has left our ability to adequately preserve our personal data hopelessly insufficient, resulting in a never-ending rise in cyber criminality. Considering the present scenario whereby numerous organisations carryout activities from home, without the robust safety precautions that exists in a typical workstation, the demand for cybersecurity precautions is greatly heightened. The soaring prevalence of cybercrimes and cyber risks illustrate the critical requirement for comprehensive privacy and security actions, especially for susceptible firms such as micro, small, and medium-sized enterprises (MSMEs) that lack resilient systems protection as well as cognizance. The digital technology is supported by a framework known as cyberspace, which is a networked internet environment. The online environment, like offline settings, includes weaknesses and hazards known as cyber hazards. Individuals and businesses are affected by these weak spots and dangers, resulting in billions of dollars loss worldwide (CUTS International, 2019). As a result, cyber security has developed as a serious topic, involving not just security of information but also transcending other realms.

*** School of Business Management (MBA) Narsee Monjee Institute of Management Studies (NMIMS) Mumbai, India***

***** Assistant Professor, Post Graduate Department of Commerce, St. Xavier's College (Autonomous), Kolkata, India.***

Literature review :- Cartwright, Cartwright, & Edun (2023) enhancing a small business's digital safety is a critical issue. According to the the United Kingdom's Cyber Security Breaches Survey, IT organisations perform a critical function in propagating best practises. Yet, measures are required to solve IT businesses' problems and guarantee efficient information transmission. Organisations must be guided in selecting reputable IT providers, and IT firms that lack expertise in cyber security must be supported.

Bekkers *et al.* (2023) Leveraging an enhanced framework based on the Protection Motivation Theory (PMT), the authors investigates businesses' incentives for implementing ransomware safeguards. Statistics from 1,020 Dutch businesses were analysed, demonstrating major characteristics affecting their proclivity to take preventative actions. Magnitude, susceptibility, emotive reaction, personal standards, confidence in oneself, and reaction efficiency are among these variables. Contracting security measures for IT has a varying impact on these aspects. The research emphasises the complexities of motivating variables and their relationships to company features, giving recommendations for improving cyber preparedness and avoiding cybercrime victimisation amongst businesses.

Buil-Gil, Lord, & Barrett (2021) Private firms suffer large costs as a result of incidents involving cybersecurity and devote greater efforts to preventing such assaults. Still, the efficiency of cybersecurity preventive methods is still uncertain. Using the Routine Activity Theory paradigm, the research investigates the impact of firms' browsing habits and safety precautions on victimisation. The study found that putting money into internal cybersecurity personnel and enhancing staff members online defence via training on cybersecurity are more successful compared to depending exclusively on basic programmes safeguards and the password recommendations in minimising cyber assaults and their repercussions.

Alahmari and Duncan (2020) includes a comprehensive literary analysis on cybersecurity risk handling in small and midsize enterprises with the goal of understanding SME management's existing role in tackling risks associated with cybersecurity and identifying avenues for additional investigation. Utilising an effective procedure, the researchers examined bibliographical facts, methodology, and results in 15 pertinent studies among 50. The examination focuses on five critical aspects of cybersecurity risk mitigation in SMEs: hazards, behaviours, practises, consciousness, and making choices. This investigation emphasises the importance of empirical studies in this domain.

CUTS International (2019) focuses on the cybersecurity struggles that MSMEs in India encounter. The fast acceptance of digital technology and the move in the direction of remote work enhanced MSMEs' susceptibility to cyber assaults. The paper focuses on the many forms of cyber assaults that MSMEs experience. It additionally emphasises the growing frequency of cyber assaults in India and the monetary harm suffered by firms. MSMEs are vulnerable due to an absence of knowledge, insufficient financial investment for cybersecurity, and a paucity of experienced staff. The paper recommends cybersecurity recommended practises for small and medium-sized businesses (MSMEs). It wraps up by emphasising the importance of cybersecurity as a crucial business tactic for MSMEs and recommending training sessions to improve their cybersecurity knowledge and preparation. Paoli, Visschers, & Verstraete (2018) This article discusses the absence of agreement on how to define and measure cyberattacks and its effect on enterprises. It intends to create a complete theoretical structure and put it to the trial via an investigation of Belgian firms. The approach is technology-agnostic and legislation-compliant, analysing the effects of cyberattacks in the form of tangible expenses as well as damages to operational credibility, credibility, and security. According to the survey, although the majority of impacted organisations fail to report substantial expenses or loss, a considerable number assess the damage done caused to their the inner processes as severe, with cyber abduction being rated as among the most destructive sort of cyber criminality.

Thakur, Qiu, Gai, & Ali (2015) investigates the ways utilised to solve cyber security problems, such as the creation of concepts and paradigms. It delves into the structure's elements, work issues, and computer safety. The research assesses such models, discusses their shortcomings, and examines prior strategies used to reduce cyber dangers. Furthermore, the paper makes recommendations for further research in this sector. Pasqualetti, Dörfler, & Bullo (2013) provide a quantitative structure for computer networks, assaults, and monitoring. Authors investigate the tracking limits from both scheme-theoretic and a diagram-theoretic standpoint. They additionally recommend centralised and dispersed assault surveillance and recognition systems. The conclusions' reliability is shown by striking instances.

Qiu, Zhang, Ming, Chen, Qin, & Yang (2013) techniques for creating safeguards that optimise total safety effectiveness while satisfying actual time restrictions are proposed. To express programme safety needs and activity interactions, authors offer the Security-Aware Task (SEAT) network paradigm. Authors present an optimum approach, Integral Linear Programming for Security Optimisation (ILP-SOP), in addition to static programming techniques for certain network shapes, that utilise this concept. The outcomes of the study reveal that the suggested approaches are practical and efficient, with a median enhancement of 44.3% in defence capability.

Stone and Madigan (2006) goal is to provide a management paradigm for assessing the security of computers and networks. It emphasises the significance of assessing safety standards and the effects of safety initiatives. A preliminary research of private-sector organisations indicates a restricted perspective regarding safety practises, possibly creating an erroneous impression of safety, according to the proposed conceptual safety system, which comprises of six categories.

Research gap :- The research articles that were assessed were mostly concerned with cybersecurity and its consequences for small and medium-sized organisations (SMEs). Cartwright, Cartwright, and Edun (2023) highlight the critical issue of enhancing digital safety in small businesses. Bekkers et al. (2023) investigate the incentives for implementing ransomware safeguards among businesses. Buil-Gil, Lord, and Barrett (2021) explore the impact of browsing habits and safety precautions on victimization. Alahmari and Duncan (2020) analyze cybersecurity risk handling in SMEs. CUTS International (2019) discusses the cybersecurity struggles faced by MSMEs in India. Paoli, Visschers, and Verstraete (2018) examine the effects of cyberattacks on enterprises. Thakur et al. (2015) explore approaches to solving cybersecurity problems. Pasqualetti, Dörfler, and Bullo (2013) propose a quantitative framework for computer networks and monitoring. Qiu et al. (2013) propose techniques for optimizing security effectiveness. Stone and Madigan (2006) emphasize the significance of assessing safety standards. Yet, there are numerous research voids. For instance, there is a paucity of awareness about the effect of cyberattacks on MSMEs in West Bengal, necessitating specific to the area research. Furthermore, there's an imperative to research the susceptibility of MSMEs depending on gender possession, evaluating if female-run MSMEs are more vulnerable to cyber assaults than male-run MSMEs. Finally, the present degree of cybersecurity preparation among MSMEs has to be assessed, as previous research has not extensively studied this element. Our research fills these voids by advancing a complete knowledge of cyber hazards, facilitating personalised solutions, and improving the cybersecurity posture of the state of West Bengal's MSMEs.

Objectives

1. To investigate whether the micro, small and medium sized company in West Bengal region has adopted proper cyber security measures for their businesses.
2. To identify the factors impeding the deployment of appropriate cybersecurity safeguards amongst West Bengal's MSMEs.
3. To investigate whether female-led MSMEs are more vulnerable to cyber assaults than male-led MSMEs in Bengal.

Research methodology :-

Source of the data: The research includes primary data gained by means of an organised questionnaire, along with secondary data gathered from newspapers, publications, as well as earlier research articles.

Location and time period of the study: We picked West Bengal for our investigation because of the abundance of MSME groups (MSME, 2022). Considering MSMEs are regarded as the economic development engines, evaluating the cybersecurity conditions among this area's MSMEs has considerable importance and repercussions. The research was conducted between April 2023 to June 2023.

Sample size: In our research, we have focused on micro, small, and medium-sized businesses in West Bengal. We used the Cochran technique for known samples with an identified population size of 554 (MSME, 2022) to establish our sample size, which resulted in a sample size of 228.

Sampling method: We adopted a non-probability sampling strategy, especially the convenience sampling strategy, in our investigation. The uncertain sample frame and time restrictions drove the decision to use this approach. Convenience sampling enabled us to pick respondents according to their availability and readiness to engage within the window provided.

Statistical software and tool used for the research: SPSS 29.0.1, a statistical programme, was used for the research's analysis. To investigate the gender dimenssion in cybersecurity, we have used Chi-Square test. We also used visual tools like pie charts, bar graphs and infographics to properly convey and analyse the data.

Analysis and Interpritation

Awareness about the importance of cybersecurity among the MSMEs of Bengal

As shown in Figure 1, 60% (137 respondents) of the 228 surveyed MSMEs are oblivious of the necessity of cybersecurity for their businesses, whereas the other 40% (91 respondents) are conscious of the vitality of cybersecurity.

Figure 1: Awareness of the MSMEs about the importance of cybersecurity

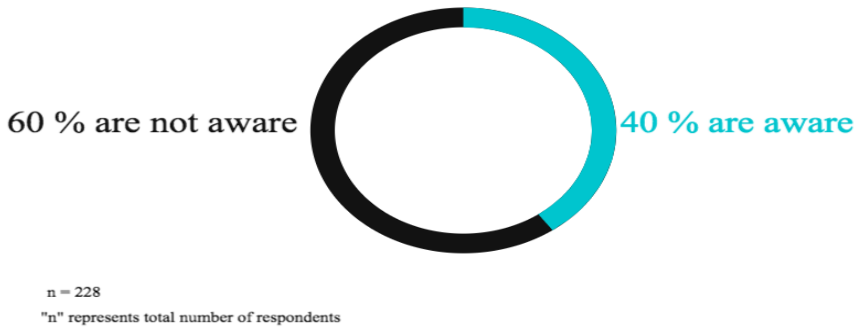

Source: Author's computation from the primary survey

Preparedness of MSMEs against Cyber attacks

Referring to Figure 2, 69 of the 228 surveyed MSMEs have implemented cybersecurity measures in their organisations, although the vast majority, 159 MSMEs, are yet to do so. Furthermore, the statistics indicates that just 69 MSMEs have set aside staff or resources for cybersecurity management, while 159 MSMEs do not have any committed personnel or resources for cybersecurity management.

Figure 2: Preparedness of MSMEs against Cyber attacks

Source: Author's computation from the primary survey

Figure 2 in addition illustrates that the vast majority of the surveyed MSMEs are unaware of possible cyber hazards they might encounter. Merely 47 of the 228 surveyed MSMEs are conscious of possible cyber hazards, while the remaining 181 are unaware of these risks.

Figure 3: Graphic visual representation of the widespread absence of readiness for cyber assaults among West Bengal's assessed MSMEs.

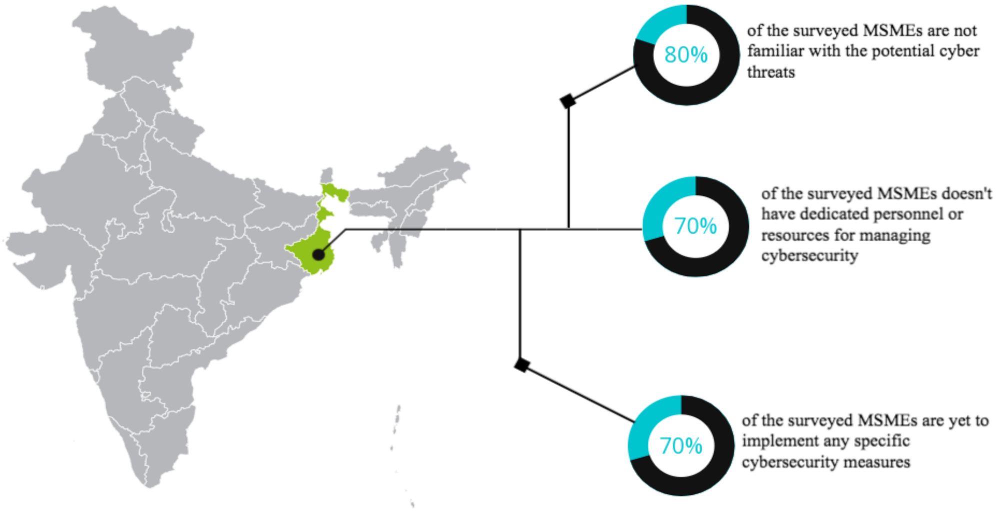

Source: Infographic generated by the authors based on the primary survey

Figure 4: How MSME owners perceive the level of cybersecurity readiness of their businesses

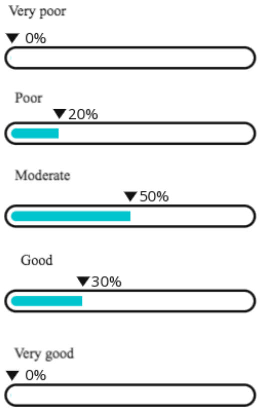

Source: Infographic generated by the authors based on the primary survey

Figure 4 indicates questioned MSME owners' assessments of their companies' degree of cybersecurity preparedness. Out of the total 228 questioned MSMEs, 20% indicated a poor degree of cybersecurity preparation, 50% a moderate level, and 30% a good level. It is worthwhile noting that a considerable proportion of owners voiced scepticism in response to this question. This scepticism may stem from worries regarding the possible detrimental influence on their company's reputation. Our results indicate that the vast majority of MSMEs have extremely low or poor cybersecurity capability. As a result, several owners might have opted to claim a moderate or good rating in order to avoid drawing attention to their company's shortcomings.

Factors Influencing the MSMEs in Implementation of cybersecurity measures :- Figure 5 demonstrates the variables influencing MSMEs to deploy cybersecurity solutions. Numerous major variables impacting the choice of assessed MSMEs that adopted cybersecurity precautions were discovered. Risk awareness, regulatory compliance, alignment with corporate principles, the possibility for long-term revenue growth, organisational culture, and external influences involving prominent security incidents, industry patterns, consumer expectations, and stakeholder desire are examples of

such elements. It is vital to highlight that the company's sector and industry were not identified as key variables influencing it. The question under consideration was addressed primarily at MSMEs that have already adopted necessary cybersecurity safeguards.

Figure 5: Determinants of Cybersecurity Implementation in MSMEs

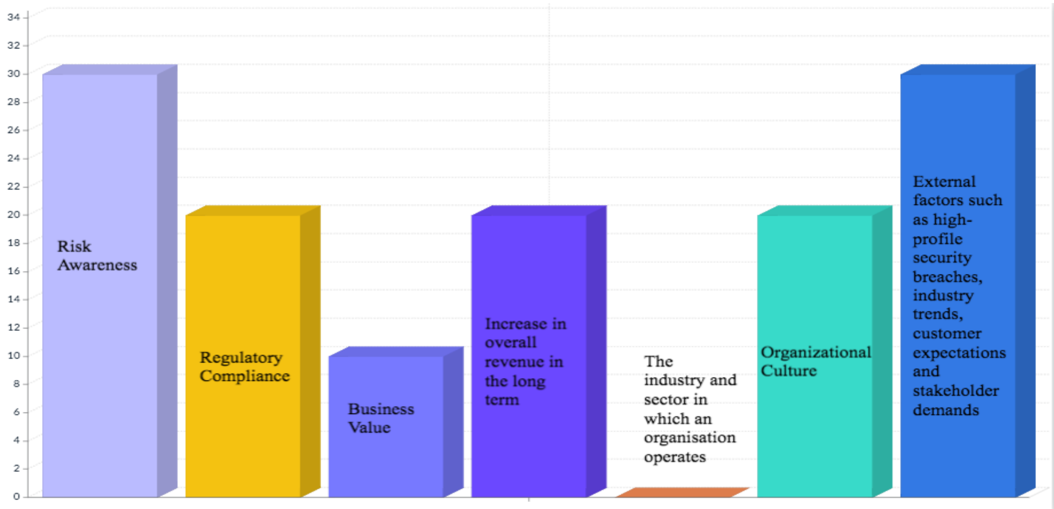

Source: Author's computation from the primary survey

According to the stakeholders, organisations who are cognizant of the possible hazards and implications of cyber attacks prioritise cybersecurity spending. This comprehension arises with the realisation of the possible consequences of an invasion of privacy on numerous areas of business activities, credibility, and monetary security. Adherence with industry-specific rules and data privacy requirements is increasingly emerging as a major motivator for cybersecurity efforts. These rules frequently require particular security procedures and practises, pushing organisations to devote funds to cybersecurity in order to steer clear of penalties or legal ramifications.

Furthermore, organisations that recognise the commercial benefit of investments in cybersecurity are more likely to prioritise them. They recognise that making investments in cybersecurity can secure their precious assets, encourage consumer faith, improve their brand, and create a market competitive edge. Organisations generally do a cost-benefit analysis in order to determine the possible yield on investments. The evaluation takes into account aspects like the possibility of monetary losses caused by breaches of security, the expenses of establishing security measures, and the possible advantages, which include minimising risks, enhanced productivity, raised confidence among consumers, and foreseeable revenue expansion. The organisational ethos and principles are also important factors in the process of making choices for cybersecurity measures. Organisations that prioritise a safe culture, workforce knowledge, and constant development are more likely to devote cybersecurity resources. Organisations may improve their entire cybersecurity stance and guarantee that workers appreciate the relevance of cybersecurity policies and practises by building a vigilant culture.

According to the stakeholders, the industry and sector in which an organisation works does not have a considerable effect on the choice of making investments in cybersecurity. Security investments are more important in industries that manage confidential consumer information, inventions, or vital infrastructure. The focus stems from an understanding of the increased possible hazards involved with the way they operate as well as the legal obligations that regulate their business.

Constraints impeding MSMEs' implementation of cybersecurity countermeasures :- Figure 5 depicts the barriers for MSMEs in setting up cybersecurity safeguards. The investigated MSMEs cited

restricted resources, a dearth of awareness, an absence of expertise, a high cost of investment, difficulties keeping up with shifting security practises, time limitations, and a shortage of government assistance as major barriers to cybersecurity defence deployment. Amongst these reasons, limited resources and a dearth of awareness appeared as the most significant barriers to MSMEs in implementing cybersecurity measures.

Figure 6: Obstacles of MSMEs in adopting cybersecurity measures

Source: Author's computation from the primary survey

As per the stakeholders, when it comes to implementing cybersecurity measures, MSMEs usually face obstacles due to inadequate human and financial supplies. They frequently confront cost limits with regard to effective safety measures and the employment of specialist cybersecurity professionals. In addition, there is additionally a significant shortage of awareness amongst MSMEs about the hazards of cyber attacks and importance of cybersecurity. As a result, MSMEs are prone to misjudge the serious effect of cyber attacks and are often uninformed of existing protection solutions.

MSMEs have additional challenges due to the quickly growing character of modern technology and the intricate nature of cybersecurity approaches. They fail to stay updated on security practises and find it difficult to build and administer advanced security solutions. Furthermore, MSMEs usually are lacking the requisite cybersecurity expertise and skills, lacking educated personnel or having access to outsourced specialists who may advise them in adopting appropriate safety precautions. As a consequence, companies frequently find it difficult to defend the expenses of making investments in cybersecurity, considering it to be an extra cost instead of an essential investment.

Furthermore, MSMEs work in a rapid setting with scarce resources along with time, rendering it difficult for them to devote enough time to learning about cybersecurity, security implementation, and remaining up to date on modern dangers. Likewise, our investigation suggest that MSMEs are underserved by the government with regards to cybersecurity education programmes, monetary subsidies, and regulatory advice. This makes it much more difficult for them to prioritise and devote funds to cybersecurity.

Susceptibility of MSMEs to cyber threats depending on gender possession :- We included an equal proportion of male and female MSME owners as participants of our survey in order to establish the gender component. We inquired 114 male MSME owners, who made up 50% of the entire pool of respondents (228), and an equivalent amount of female MSME owners, who made up 50% of the total respondents. This well-rounded strategy enabled us to gather ideas on cybersecurity in MSMEs from both male and female owners viewpoints.

Figure 7: Stakeholder Gender Distribution: An infographic representation of the percentage of male and female respondents

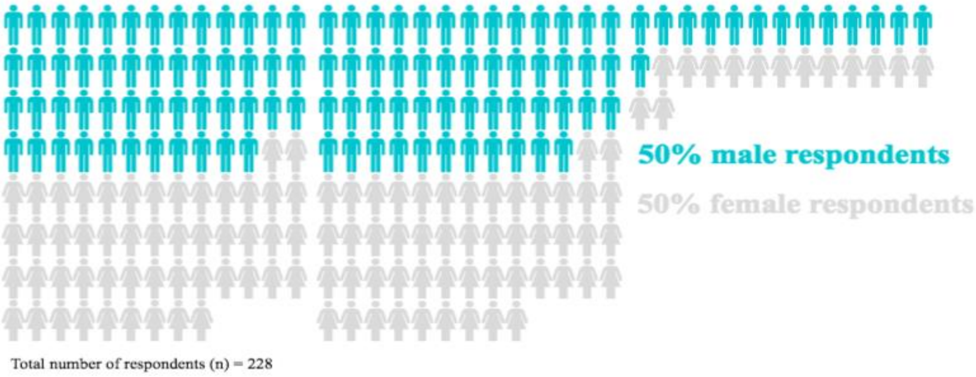

Source: Infographic generated by the authors based on the primary survey

Cyber Attack Vulnerability Among Women entrepreneur

H_1 : Female-led MSMEs exhibit a higher susceptibility to cyber threats when contrasted with male-led MSMEs

Table 1: Chi-Square Tests

	Value	df	Asymptotic Significance (2-sided)
Pearson Chi-Square	21.533a	1	<.001
N of Valid Cases	228		
a 0 cells (0.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is 54.50.			

Source: Authors computation

Table 1 demonstrates that Asymptotic Significance (2-sided) i.e. the p-value is <.001 which is less than 0.05. So, we will reject the Null Hypothesis and accept the Alternative Hypothesis (H_1). As a result, we may infer that female-led MSMEs are more vulnerable to cyber threats than male-led MSMEs.

The Asymptotic Significance (2-sided) or the p-value of the chi-square test is <.001, indicating a very significant outcome. According to such findings it can be concluded that female-led MSMEs are substantially more exposed to cyber hazards than male-led MSMEs. According to the chi-square test's findings, the results are not likely to be attributable to randomness entirely. In simple terms, the data supports the idea that female-led MSMEs are more vulnerable to cyber threats than male-led MSMEs. Yet, to offer details regarding the affiliation's quality. A further in-depth investigation has been conducted to back up our argument.

Gender based awareness about the importance of cbersecurity :- Table 1 demonstrates the awareness about the significance of cybersecurity among the surveyed MSME owners with respect to gender. There were 114 female MSME owners out of 228 those surveyed, with 91 uninformed of the necessity of cybersecurity in their organisations and only 23 cognizant. On the contrary, a great deal of male MSME owners were conscious of the significance of cybersecurity. Merely 46 of the 114 male business owners remained oblivious of the need of cybersecurity. The results indicate the presence of a gender-specific cybersecurity awareness disparity.

Table 2: Awareness about the importance of cybersecurity for a business on the basis of gender

		Awareness		Total
		Aware	Not aware	
Gender	Female	23	91	114
	Male	68	46	114
Total		91	137	228

Source: Authors computation

Figure 8: Gender-Based Segmentation of Cyber Attack Victims

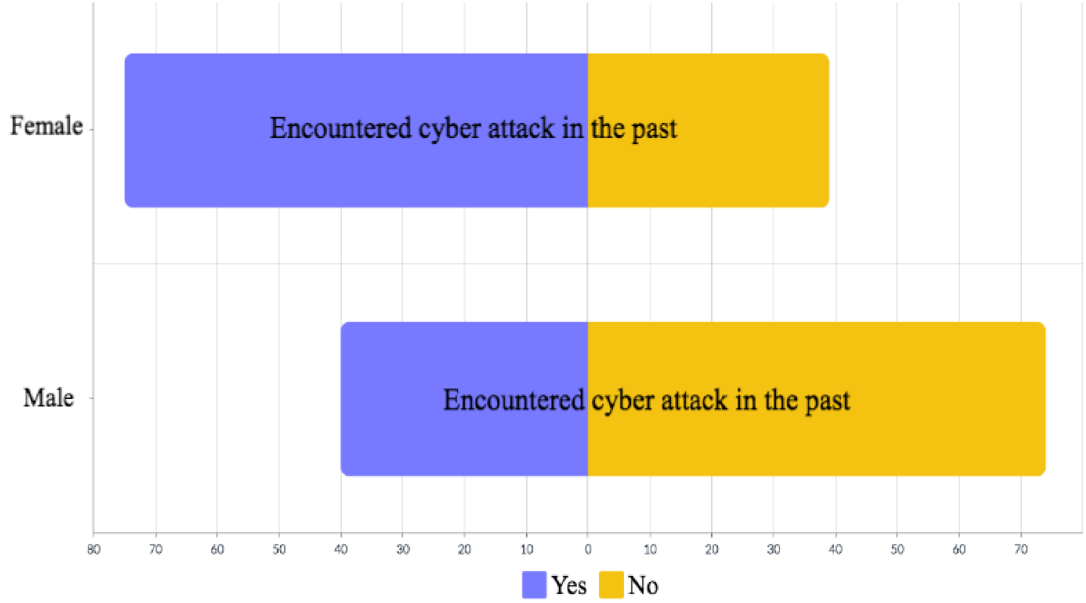

Source: Author's computation from the primary survey

Figure 8 indicates that female-owned MSMEs in West Bengal had a greater frequency of cyber assaults than male-owned MSMEs. As a consequence, it is possible to infer that female-owned MSMEs in West Bengal tend to be more vulnerable to cyber assaults compared to male owned MSMEs.

Table 3: Crosstabulation showing number of male and female MSME owners encountered cyber attack(s)

		Encountered cyber attack in the past		Total
		Yes	No	
Gender	Female	75	39	114
	Male	40	74	114
Total		115	113	228

Source: Authors computation

Table 2 presents a crosstabulation showing the number of cyber attack victims among male and female-owned MSMEs. The variation in cyber assault vulnerability among female- and male-owned MSMEs in West Bengal may be ascribed to a variety of variables, involving gender variations in cybersecurity awareness, inadequate resources, and other pertinent aspects.

Parameters enhancing the vulnerability of the Women-Owned MSMEs in Bengal to Cyber Attacks :- Due to a confluence of variables, women-owned MSMEs in Bengal are more vulnerable to cyber assaults. Restricted resources, dearth of awareness regarding cyber security and dangers of cyber attacks, inadequate training on dealing with cyber attacks as well as their repercussions, a scarcity of backing connections for women entrepreneurs, a shortage of government assistance especially for women entrepreneurs, along with an acute lack of specialists to address risks related to cyber security are among them as depicted in figure 9.

Restricted resources, dearth of awareness & training and scarcity of support networks for women entrepreneurs are the major factors due to which women owned MSMEs in Bengal are so much are vulnerable to cyber assaults.

Figure 9: Factors Leading to Women-Owned MSMEs' Greater Susceptibility to Cyber Attacks in Bengal

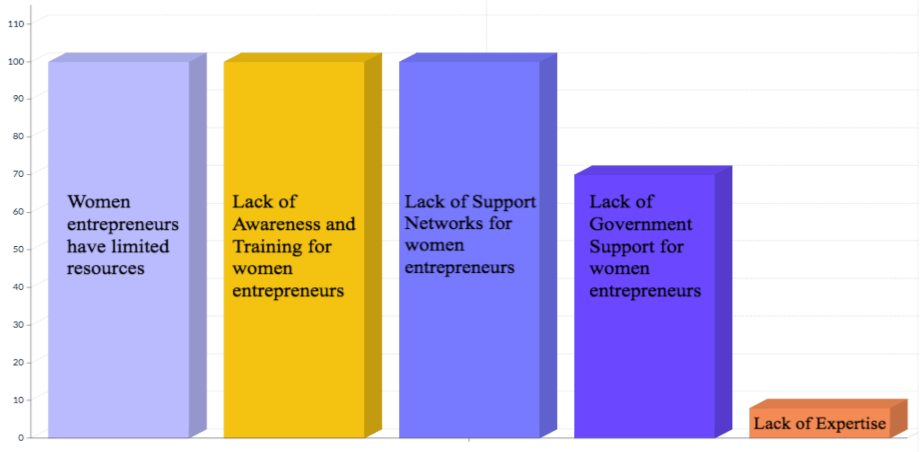

Source: Author's computation from the primary survey

Women MSMEs owners frequently face constraints regarding the availability of monetary resources, technical experience, and accessibility to cybersecurity technologies. These restrictions make it difficult for them to establish comprehensive cybersecurity safeguards, leaving them increasingly vulnerable to cyber assaults. Furthermore, women-owned MSMEs are less cognizant of cybersecurity dangers and preventative strategies than their male counterparts, owing to fewer access to cybersecurity training and education programmes. This information vacuum makes them even more vulnerable to assaults. Furthermore, women entrepreneurs experience difficulties in gaining accessibility to specific networks of assistance and cybersecurity tools. The absence of mentoring, peer assistance, or cybersecurity-specific professional organisations limit their capacity to successfully tackle cyber risks. In conjunction with resources and knowledge constraints, gender preconceptions and prejudices lead to cyber attackers pursuing women-run MSMEs. Women's perceived absence of technological abilities or cybersecurity understanding makes them appealing prey for the cyber attakers. Women entrepreneurs are susceptible to special sorts of cyber assaults due to their gender, including harassment on social media or reputational harm. Such hurts have the potential to have an enormous effect on their organisations and broader cybersecurity stance. Such aspects contributes to the increased vulnerability of women-owned MSMEs to cyber assaults, as stated by the female proprietors themselves.

MSMEs' Perspective on Government Intervention :- The proactive participation by government and regulatory organisations in developing cybersecurity consciousness amongst MSMEs is critical. They have to adequately enlighten MSME's proprietors and workers regarding cybersecurity dangers, recommended practises, as well as accessible assets via efforts including advertisements, conferences, and educational programmes. Authorities have to handle the special demands and issues encountered by MSMEs by creating robust cybersecurity rules and laws. Such regulations will have to provide standards for MSMEs to adhere to subjects such as safeguarding information confidentiality, handling incidents, and risk mitigation. To better assist MSMEs, supervisory organisations may guarantee that the industry's cybersecurity rules are implemented and followed. MSMEs might get monetary backing in the manner of subsidies, grants, or funds to ease the cost strain linked to establishing comprehensive cybersecurity systems. Such monetary assistance will enable MSMEs to prioritise cybersecurity as an essential component of their company processes.

Governments have to implement programmes aimed at improving MSMEs' cybersecurity competence. Education, coaching, and consulting assistance have to be provided as part of these programmes to assist MSMEs in developing and implementing efficient cybersecurity plans. Governments have to provide specialised assistance targeted to the particular requirements of MSMEs

through building collaborations with business professionals and organisations. A further important responsibility of government agencies is to facilitate cooperation and data exchange. The creation of venues for MSMEs, cybersecurity professionals, business groups, and various other parties to share effective practises, information on threats, and knowledge improves collaborative understanding and assistance. Inviting MSMEs to join cybersecurity alliances or clumps will foster an inclusive response to cybersecurity. As regarded by MSMEs, these initiatives highlight the critical responsibility of government and regulatory agencies in assisting MSMEs to improve their cybersecurity stance and secure their digital holdings.

As reported by multiple stakeholders, when victims in Bengal visit local police officials to register a complaint following a cyber assault, they are frequently met with obstacles and rejection. It has been stated that in several circumstances, local police agencies are likely to not hear such grievances and outright reject to file a complaint. Furthermore, female business proprietors have reported mistreatment from local police, which seems to be gender biased. According to the stakeholders, such circumstances emphasises the critical importance of government engagement in addressing these concerns. Authorities ought to take the appropriate measures to guarantee that local police officers are properly educated and properly trained to deal with cybercrime matters. This involves educating them on the particular issues that MSMEs encounter, as well as equipping them with the expertise and tools they need to assess and respond to cyber assaults. Establishing standards and regulations for dealing with cybercrime grievances, especially when involving female entrepreneurs, will aid in the prevention of discrimination based on gender and guarantee an equitable and welcoming atmosphere for all sufferers. Government agencies will perform a critical role in ensuring a secure and accessible setting for MSMEs, especially women-owned firms, to file complaints about cyber assaults without fear of harassment or prejudice by responding to such matter. These actions would not merely inspire numerous sufferers to step to the forefront and pursue justice, but will likewise convey an unambiguous signal that cybercrime, irrespective of gender, will always be treated severely and culprits will be punished.

Conclusion and recommendations :- MSMEs are vital to economic prosperity and job creation. Yet, with a rising dependence on technological advances, organisations must prioritise cybersecurity to defend themselves from cyber attacks. In accordance to our research, a vast proportion of MSMEs in Bengal are yet to put in place effective cybersecurity safeguards. The study illustrates the current cybersecurity preparation disparity amongst these organisations. Notwithstanding the growing frequency of cyber attacks and the serious hazards they entail, a significant proportion of MSMEs have failed to implement the essential precautions to protect their digital resources. MSMEs in Bengal face significant challenges in implementing cybersecurity strategies owing to restricted resources, dearth of awareness, an absence of expertise, a high cost of investment, difficulties keeping up with shifting security practises, time limitations, and a shortage of government assistance. Our investigation additionally demonstrates, women-led MSMEs in Bengal are more vulnerable to cyber assaults than their male counterparts. Numerous variables attribute to the heightened susceptibility of the region's women-owned MSMEs. Resource constraints, an absence of awareness about cybersecurity and the possible hazards that arise from cyber assaults, inadequate training regarding how to deal with and minimise such assaults, a dearth of support networks particularly geared for women entrepreneurs, barely enough government assistance aimed at women entrepreneurs, and an acute lack of cybersecurity professionals to tackle the hazards linked to cyber menaces are among such factors. The amalgamation of such factors generates a challenging backdrop for women-owned MSMEs, leaving them even more susceptible to cyber attacks.

Numerous MSMEs are unaware of the possible consequences of cyberattacks on company processes, credibility, and financial health. The ramifications associated with this cybersecurity deficit

are considerable for MSMEs. These organisations are particularly exposed to cyber risks like breaches of data, attacks involving ransomware, and unauthorised accessibility to confidential data if sufficient protection mechanisms are not in action. These mishaps can result in monetary damages, an erosion of consumer faith, legal obligations, and significant business interruption. To close this opening, a multidimensional strategy is required. With regard to the variables uncovered by our study, an integrated strategy is required, which includes encouraging gender parity, offering aimed cybersecurity training and education for women entrepreneurs, enhancing availability of resources as well as support groups, and tackling gender preconceptions and prejudices in the cybersecurity domain. It is feasible to lower the susceptibility of women-run MSMEs to cyber assaults and improve their cybersecurity resiliency by providing them with the required Information, Assets, and Assistance (IAA approach). Ultimately, government agencies and administrative organisations play an important role in fostering a setting that allows MSMEs to improve their cybersecurity skills. They may enable MSMEs to successfully reduce cyber hazards and defend their enterprises by offering assistance, assets, instructions, and regulatory structures, thus adding to a safer cyber space for MSMEs as well as the nation as a whole.

Recognising the roadblocks highlighted in our investigation can assist policy makers, professionals in the industry, and MSMEs in developing approaches to solve such issues and encourage the widespread implementation of cybersecurity countermeasures in the MSME sphere. Organisations may make educated judgements about their cybersecurity ventures, successfully mitigating hazards and safeguarding their resources and activities from cyber attacks by taking such essential elements into account.

References :-

1. Rai, G. (2019, October 31). Why cybersecurity should be India's foremost priority. The Economic Times. Retrieved May 30, 2023, from https://economictimes.indiatimes.com/tech/internet/why-cybersecurity-should-be-indias-foremost-priority/articleshow/71843562.cms
2. CUTS International. (2019). Cybersecurity Challenges for Indian MSMEs. In www.cuts-crc.org. Retrieved May 30, 2023, from https://cuts-crc.org/pdf/briefing-paper-cybersecurity-challenges-for-indian-msmes.pdf
3. Thakur, K., Qiu, M., Gai, K., & Ali, M. L. (2015). An Investigation on Cyber Security Threats and Security Models. In 2015 IEEE 2nd International Conference on Cyber Security and Cloud Computing, 307-311, doi: 10.1109/CSCloud.2015.71.
4. Alahmari, A., & Duncan, B. (2020). Cybersecurity Risk Management in Small and Medium-Sized Enterprises: A Systematic Review of Recent Evidence, 1-5, doi:10.1109/CyberSA49311.2020.9139638.
5. Bekkers, L., van 't Hoff-de Goede, S., Misana-ter Ellen, E., Van Ynze, Y., Spithoven, R., & Leukfeldt, E. (2023). Protecting Your Business against Ransomware Attacks? Explaining the Motivations of Entrepreneurs to Take Future Protective Measures against Cybercrimes Using an Extended Protection Motivation Theory Model. Computers & Security, 127, 103099. doi: 10.1016/j.cose.2023.103099.
6. Cartwright, A., Cartwright, E., Edun, E. S., (2023). Cascading information on best practice: Cyber security risk management in UK micro and small businesses and the role of IT companies. Computers & Security, 131, 103288. https://doi.org/10.1016/j.cose.2023.103288.
7. Buil-Gil, D., Lord, N., & Barrett, E. (2021). The Dynamics of Business, Cybersecurity and Cyber-Victimization: Foregrounding the Internal Guardian in Prevention. Victims & Offenders, 16(3), 286-315. DOI: 10.1080/15564886.2020.1814468.
8. Paoli, L., Visschers, J., & Verstraete, C. (2018). The impact of cybercrime on businesses: a novel conceptual framework and its application to Belgium. Crime Law Soc Change, 70(4), 397-420. doi: 10.1007/s10611-018-9774-y.
9. Stone, J., & Madigan, E. (2006). A Managerial Framework for Network Security.
10. Qiu, M., Zhang, L., Ming, Z., Chen, Z., Qin, X., & Yang, L. T. (2013). Security-aware optimization for ubiquitous computing systems with SEAT graph approach. Journal of Computer and System Sciences, 79(5), 518-529. https://doi.org/10.1016/j.jcss.2012.11.002.
11. Pasqualetti, F., Dörfler, F., & Bullo, F. (2013). Attack Detection and Identification in Cyber-Physical Systems. IEEE Transactions on Automatic Control, 58(11), 2715-2729. doi: 10.1109/TAC.2013.2266831
12. MSME. (2022, August 12). *West Bengal witnesses massive growth in the number of MSME Clusters, The Financial Express*. Retrieved April 19, 2023, from https://www.financialexpress.com/industry/sme/msme-eodb-west-bengal-witnesses-massive-growth-in-the-number-of-msme-clusters/2627735/#:~:text=Ease%20of%20Doing%20Business%20for,compared%20to%2049%20in%202011.&text=Out%20of%20the%20554%20clusters,the%20handloom%20and%20khadi%20segment

ꕤ★ꕤ

A Survey of Tazkiratush-Shuara : A Solitary codex of "Mukhlis"

Prof. Saulat Ali Khan*

This history of persian literature is inter-woven and inter-related to the history of India. It traces its origin with the advent of Muslim adventurers, caravans of traders and Muslim rulers. Long before Muhammad b. Qasim's conquest of Sindh in 412 A.D. the exchange of indigenous and foreign commodities through the persistent process of Arab travellers via Afghanistan and Persia, paved way for the origin, evaluation and encouragement of Arabic and Persian in India. Basic works, commentaries on holy Qur'an and treatises on holy traditions were propounded with commentaries, super commentaries and glosses. Thus Indo-Arabic and Indo-Persian literature was compiled and litterateurs and poets like Hasan Nizami, Amir Khusrau, Amir Sijzi, as- Saghani and others contributed a lot in the advancement and furtherance of Arabic and Persian in India.

The continuous conquests of Mahmud of Ghaznah and the advent of Muhammad Ghori and the establishment of Turkish Empire in India (Slave with capital 'S') accelerated the pace of popularization particularly of Persian. it continued to serve as the adminstrative language from 1206 to 1835 A.D. Innumerable codices, commentaries and treatises were composed. Masud Salman, Hasan Nizami, Badra Chach, Minhaj Siraj, Amir Khusrau, Hasan Sijzi, Siraj Afif, Abul Fazl, Faizi, Urfi, Chandra Bhan, Mirza Manohar Das Tausani, Lachchmi Narayan Shafique, Bhagwan Das etc. are only a few names among the illustrated galaxy of poets, scholars and litterateurs. Histories, autobiographies, biographies. literary masterpieces and collectanea and compendia were propounded to the enrichment of Indo-Persian Literature.

The first known Tazkirah Lubab ul-Albab' was basically compiled in India in 12th Cent. A.D. There is a long list of Tazkirahs of Persian poets which were prepared in India.

Among these Tazkirahs (bio-bibliographical works) Tazkirat ush- Shu'ara written by Anand Ram Mukhlis b. Raja Hirdi Ram Khatri Lahauri (d. 1164/1751), is ostensibly an autograph of the writer. It comprises 180 folios each of 33x13 cm. size comprising 15 lines. Its script is Nasta'liq with an impact of Shakasta. There are occasional marginal notes. corrections, collations and addenda and erreta also written somewhere in cursive hand. The manuscript is the only known transcript in the world. The manuscript, once adorned Maharajas Public Library, Jaipur, has been transferred to APRI, Tonk. Its accession No. is JPR 3319, S.No. 304. Its accession No. now stands as JPR 3297.1

Its author Anand Ram Mukhlis was the son of Raja Hirdi Ram Kayastha and was born at Sodhra Distt. Sialkot, Lahore.2 He had been a Wakil (Political Agent) to Itimad ud-Daulah the Minister of the Emperor Muhammad Shah. 3 He was also Wakil for Abus Samad Khan, Nazim Subah Lahore.4 in 1133 A.H./1720 A.D. he wass conferred upon an enviable title of Rai Rayan 6 Mukhlis has cultivated a great deal of knowledge in Persian literature and started composing poetry first the tutelage of Bedil and subsequently Siraj ud Din Khan Arzu a fast friend. He died in 1164/1751. His house in Delhi was frequented by many men of letters and poets. He left besides his Persian Diwan some Rekhta poetry: Mukhlis was towering and titanic figure of the age on account of his profound and seasoned knowledge of Persian Literature and discerning intellect and superb inguinity. He was universally applauded scholar of highest calibre, and was considered to be a patron of art and literature. Among his contemporaries, he was recognized as a light house. 7 Every Tazkira has lavishly eulogized

---

*** Principal, Government College, Tonk.**

and has placed him inflying colours. Sayyid Ghulam Ali Nasim called him "Sihpiri Sakhun war" (Fakhar-i, Urfi wa Anwari) and the crowning glory of 'Urfi and Anwari"1

(Argu has depicted him as one of the unrivalled personages of the age (Majmaun-Nafais P. 835 as referred to S. Abdulla) Walah Daghistani in his monumental work Nishtari Ishq has very ably eulogised (Nishtari Ishq Ms. preserved in Arabic Persian Research Instiute, Tonk) Similarly Ghulam ali Azad in his erudite Tazkira Khizani Amira, has contributed to him a lot (Khizani Amira P.425)

Mukhlis was not only an erudite padagauge and a masterly practised prose writer as well as a seasoned scholar of multifaceted faculties. No history of Persian Literature can even for a pause ignore his conspicuous contributing to the cultivation of Persian studies. He was not only a prominent poet but a prolific writer who authored in umerable works among them the following are extant :-

(i) Diwan-i Mukhlis, Comprises lyrical poems and verson.

(ii) Pari Khanah, An album of calligraphic specimens and drawings with an introduction on the fine art.

(iii) Ruqqat-i Mukhlis - a collection of his own letters redacted in 1149/1736 (see oriental college magzine Vol. 4, 1930.)

(iv) Kharitah-i Tawil - a detailed letter written by the royal order of Muhammad Shah to a Safawid King on his accessions.

(v) Chamanistan - written in 1159/1746- a collection of anecdotes, accounts of some contemporaries description of trees, flowers and fruits, admonitions, witty sayings and maxims etc. It was edited Lucknow 1877.

(vi) Hangamah-i Ishq, written in 1152/1739 - the romantic story of Kunwar Sundr Sen of Karnatak a Rani Chand Parbha (Ms. Bankipur, Patna) (Nastar-i Ishq vol.ii.532 quoted in lbif, Ghulam Ali Azad, khizanari amirap.425)

(vii) Karnamah-i Ishq, written in 1144/1731-2, - the love (story) of prince Gauhar of China and princess Mamlakat (illustrated) Bankipur, Patna.

(viii) Intikhab Tuhfah-i Sami, an abridgment of Sam Mirza's Tazkirah (Ms. India office, London 718)

(ix) Tazkirah-i Anand Ram, a history of the war of Muhammad Shah withNadir Shah, Aligarh (U.P.) (See Irvine Later Mughals II P. 380) 22 pages were translated by Lt. Perkins: Elliot and Dowson, History of India Vol. VIII.

(x) Safar Namah, An account of a journey from Delhi to Muktesar in 1150/1737 Ethe 2724, Rampur (See Nadhir Ahmad 61) Texicon

(xi) Mirat ul-Istilah - alfexicon) of poetical phrases and proverbial the sentenses. He has given incidentally, historical notices relating to the Delhi court and to, celebrated contempories (Completed in 1157/1744) (Rieu III pp 997 b.) It is a store house of the practices and administrative terminology in vogue which can not be found else where such as titles, kinds of Jagirs, Dastur, salary chak (called Brat), Dafteri, Tankhah captioned as Dafteri Tan, Balapaush Mir Tauzak Awwal, Mir Tauzak Duam, Sar- Nashin, Qafilah, Tannab Qauraq, Qarqawal, so were the social and cultural terms and matrimonial practices and terms.

Among his important works of eminence, Tazkirat ush-Shu'ara is the unique codex which has not been located elsewhere in the world even storey has not referred to this invaluable Tazkirah comprising the biographical notices of 402 Persian poets arranged alphabetically alongwith specimens of their poetical compositions. It has been composed and transcribed by the author himself who has referred to him as "In Mukhlis Hich Madan." While quoting his verses he has also referred himself "Raqim-i-Sutur Faqir Mukhlis." In dealing with poets in dealt with -Storey the category "Mim", he has also debt himself as, "Raqimi Sutur Faqir humble Mukhlis" meaning "the writer of these lines humble Mukhlis" while treating of his teacher Mirza Baidil. Sahibzadah Shaukat Ali Khan, Descriptive

Catalogue of Persian Manuscripts Vol.1, pp. 245-6) Story has mentioned only lasten works among them this important Tazkirah has not been referred to because of the fact that this autograph remained in- accessible having been the only unique work.

The manuscript being the solitary codex remained in oblivion being un escaped from the vigalent eyes of the and scholars and savants; and from have and ravage of time it reached under the patronage of Maharajas of Jaipur - the patrons of art, culture and literature. "From internal evidences, we can say with all probabilities." asserts, Sahibzada Shaukat Ali Khan in his valued catalogue," that it is an autograph (penned in by the author himself) as he has quoted himself at various places as "Raqimi-Sutur" (meaning the scribe of these lines) "Faqir Mukhlis" (meaning humble mukhlis) "Mukhlis Ilich Madan" (meaning humble mukhlis) and "Dakhil-i Tazkirah-i Khud Namud" (meaning entered in his own Tazkirah) (-Ibid-pp.246). There are some omissions and errors which were corrected in the foot-notes. A clear note, on the margin, appears to be penned in by the author himself, the fly-leaf of which bears the signatures of Anand Ram Mukhlis. Some mistakes and linguistic errors give hint that it might have been transcribed by some scriber but, internal evidences with external witnesses prove that this is the autograph of the author himself.

This unique work of eminence deals with some of those poets which were not found available in other Tazkirahs. Some of the internal evidences throw a flood of light on the Hindi proverbs, particular phrases of typical Persian interspersed with local dialects. The manuscript also treats of some contemporary poets, personages, philanthropists.

Sahibzada Shaukat Ali Khan, A Desriptive 1 Catalogue of Persian Manuscript V8: IP. 245-6 Ibid P. 246. 2ibid P.246

Padagogues and prince-pioneers. It is not only a store house of literary values and cultural heritage but also a historical document of socio- economic and historical trends during the last regime of Mughal India.

Considering the importance and significance of this Tazkirah (My Ph.D. thesis,) I have endeavoured to delve deep in the informatory mines of the text and thoroughly studied external and internal evidences by collaborating the informatory source material gathered form contemporary and modern works; manuscripts and codices and, critically edited it with annotations and foot-notes. The work has been divided into one introduction and two sections further sub divided alphabetically.

A. In the introduction I have tried my best to highlight the significance of Tazkirahs in the context of historiography tracing the origin, evolution and history of compilation of Tazkirahs. I have divided the Tazkirahs into four sections such as (1) Tazkirahs of poets (2) Tazkirahs of Sufis and saints (3) Tazkirahs of celebrated scholars and (4) historical biographies covering incidentally poets and scholars.

I have also dealt with critically important Tazkirahs while furnishing bibliographical survey of as many as one hundred Tazkirahs approximately. Efforts have been made to give biographical notices on the life, achievements and works of Anand Ram Mukhlis from various works of eminence detailed below:-

(1) His Life.
(2) His contribution to Persian Literature.
(3) An estimate of the author.
(4) His Persian knowledge.
(5) His style and diction.
(6) His poetry with specimen of his verses.
(7) His works.
(8) Tazkirat ush-Shu'ara and its significance evaluating its internal and external evidences.

(9) the significance of marginal notes and addenda attempting to present its critical edition.

B. In the first section I have aimed at presenting a critical account of the works of Mukhlis with a critical and comparative study in the light of other contemporary Tazkirahs.

C. The second section of the thesis covers the critical and textual edition with foot-notes. I have also attempted to furnish textually edited version by deciphering text in the foot-notes.

The present work is not immune from errors and omissions. The names of places, persons and poets are often written wrong which may probably be by the slip of pen. A careful textual study of the Tazkirah has clearly pointed out the errors committed by the author with additional notes in the foot-notes.

Annotations on the important personages ranking in the Tazkirah had been authentically furnished in the foot-notes. Some of the insignificant and anonymous poets still remained un-attempted which are very few. At the end of the work I have appended a bibliography of manuscripts consulted and printed works used for the study of this thesis. An index of poets having been alphabetically arranged has been furnished at the beginning of the edited work.

This of my work has, therefore, been divided along with the introduction into the following:-

Introduction

(I) Contribution of India to Persian Literature.

(II) The importance of Tazkirahs. (a) Literary heritage as gleaned from Tazkirahs.

(b) Historical and cultural glimpses gathered from the Tazkirahs.

(c) Life and works of the author.

(d) Importance and evaluation of the Tazkirah to be edited.

(III) Comparative study of the Tazkirahs. (a) Literary and cultural value. (b) Historical perspective. (c) Contemporary information pertaining to socio-economic and literary conditions of the age.

(IV) A critical and textual edition of the Tazkirah with annotations and foot-notes.

(V) Bibliography.

Editing of Tazkirahs is a very tedious, time consuming and important job. There are many Tazkirahs in Persian literature which are yet to be edited among them, I have selected Tazkirat us-Shu'ara of Anand Ram Mukhlis which is unique as well as significant. By editing the Tazkirat ush-Shu'ara I have discovered an un-deciphered and un- identified manuscript of eminence and preserved it with critical and textual edition to the scholarly commonwealth which will prove a rich asset to the Indo-Persian Literature.

Refrences :-

1. ADescriptive Catalogue of Persian Manuscripts (history -volume1(Arabic Persian research Institute, Tonk) by Sbz. Shaukat Ali Khan.
2. CA. Storey P.612.
3. Ibid p. 612.
4. Ibid p.612.
5. Ricu Vol. II p. 997.
6. Ethe Volf 1707 p.926.
7. S.Abdullah, Adabiyat-i Farsi main Hinduun ka Hissa p. 151.
8. Nashtar-i Ishq Vol. II, 532 quoted in Ibid.

पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के Kruti Dev 10 में और अंग्रेजी के Times New Roman Font में) की वर्ड एवं पी.डी. एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि, कार्यालय** के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख / आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख / आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों / आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों / आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

Essential conditions for publication of research articles in the journal

1. The research article sent by you should be original, quality, worthy of publication and unpublished, and the **Author's Declaration Form** issued by **Aalochan Drishti** must be filled.
2. To send CD or DVD of your research articles Word & PDF File, with hard copy (Hindi & Sanskrit in **Kruti Dev 10 Font** and English in **Times New Roman Font**) at the address of **Aalochan Drishti**. If you want the Acceptation Letter of your dissertation/article, then write your name, address with pin code in an envelope, to affixing required speed post postage stamp and No unnecessary call for 3-4 months from any officer/ Member of Aalochan Drshiti. If there is a need to talk to any Officer/Member, then contact between 6.00-8.00 in the evening.
3. Mobile number, e-mail and address should be mentioned in the research paper/article.
4. The research-articles will be examined by the **Editorial Board** and **Aalochan Drishti -Family**, only after that the research articles/articles will be published, in which the decision of the **Editorial Board** will be final and binding.
5. Research articles should be as per **UGC standard** and in the **Bibliography** the name of the book, the name of the author, the name of the publication, the edition-year and page number and for the reference of the journal, its issue, year, page number etc.- fixed must be clearly marked. Otherwise, the **Bibliography** of the article will be considered misleading.
6. Subscription may also be required from writers, readers and critics for the publication of the magazine, because the magazine is not receiving any grant or contribution.
7. Preference will be given to conceptual research articles/articles in the journal rather than survey.

आलोचन दृष्टि
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : **aalochan.p@gmail.com**